

# श्रीकान्त



सुलभ साहित्य-माला

# शरत्-साहित्य

श्रीकान्त

( प्रथम पर्व )



अनुवादकर्ता

हेमचन्द्र मोदी

---

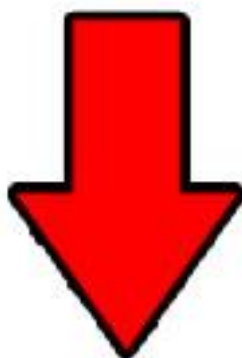
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

**Collect more e-books**



A lot collection of Hindi e-books

Please click the link below-



**[www.ebookspdf.in](http://www.ebookspdf.in)**

---

# निवेदन

( प्रथमावृत्तिसे )

शरत्-साहित्यका चौथा भाग पाठकोंके सम्मुख उपस्थित है और पाँचवाँ भी । इन दो भागोंमें शरत् बाबूके अतिशय प्रसिद्ध और श्रेष्ठ उपन्यास 'श्रीकान्त'के दो पर्व प्रकाशित हो रहे हैं ।

अबसे कोई २० वर्ष पहले बंगलाके सुप्रसिद्ध मासिकपत्र 'भारतवर्ष'में यह 'श्रीकान्तेर भ्रमण-काहिनी'के नामसे धारावाहिकरूपमें प्रकाशित हुआ था और उसी समय मैंने इसे पढ़ा था । बिल्कुल अपूर्व चीज थी, पढ़कर मुग्ध हो गया और विचार किया कि हिन्दी पाठकोंको भी इसका रसास्वाद कराना चाहिए, परन्तु उस समय वह विचार इच्छा रहते हुए भी अनेक कारणोंसे कार्यमें परिणत न हो सका । आज मुझे बड़ा सन्तोष हो रहा है कि इतने लम्बे समयके बाद भी मेरे उस इच्छाकी पूर्ति हो रही है ।

शरद् बाबूकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंमें इसकी गणना है और उपन्यास-साहित्यमें तो यह अपने ढंगका अकेला ही है । विदेशों तक इसकी ख्याति पहुँच गई है और यूरोपकी दो प्रधान भाषाओं,—अंग्रेजी और फ्रेंचमें, इसके अनुवाद हो चुके हैं जिनका खूब सम्मान हुआ है और शरद् बाबूकी गणना ससारके श्रेष्ठ उपन्यास-लेखकोंमें की जाने लगी है ।

यह अनुवाद मेरे आयुष्मान् पुत्र हेमचन्द्रने किया है । यह कैसा हुआ है, इसका निर्णय तो सहृदय पाठक ही करेंगे, मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि इसके लिए काफी परिश्रम किया गया है और मूलके भावोंकी रक्षामे पूरी सावधानी रक्खी गई है । फिर भी यदि कुछ त्रुटियाँ रह गई हों, तो उसका यह पहला प्रयत्न समझकर पाठक दर गुजर करेंगे, ऐसी आशा है ।

सुलभ-साहित्य-मालाके प्रचारके सम्बन्धमे हमने जो आशा कर रखी थी, अभीतक तो उसके पूर्ण होनेके कोई लक्षण नहीं दिखलाई दिये, हम चाहते थे कि इसके इतने स्थायी ग्राहक हो जावें कि विक्रीकी कोई चिन्ता न रहे, केवल अच्छे प्रकाशनकी ओर ही हम अपनी सारी शक्ति लगा सके। फिर भी अभी हम सर्वथा निराश नहीं हुए हैं और कम्से कम छह महीना और भी प्रतीक्षा करेंगे।

अन्तमे इस पुस्तक-मालाके सस्तेपनके विषयमें पाठकोको यह सूचित कर देना आवश्यक है कि मूल बंगलामे 'श्रीकान्त'के प्रत्येक पर्वका मूल्य डेढ़ रुपया है। इसी प्रकार 'श्रीकान्त'के दो पर्वोंका अभी जो गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुआ है, उसका मूल्य भी तीन रुपया है जब कि हमारे पाठक उक्त दो पर्वोंको केवल एक रुपयामें, अर्थात् एक तिहाई मूल्यमें, घर बैठे प्राप्त कर सकेंगे। भला, इससे अधिक सस्तापन और क्या हो सकता है ?

पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इस मालाके प्रचारमें हमारा हाथ बँटावे और हिन्दीके भाण्डारको समृद्ध करनेकी इस योजनाको विफल न होने दें।

१०-११-३६

}

नाथूराम प्रेमी

## द्वितीयावृत्तिकी सूचना

हम अपने पाठकोके बहुत ही कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारी इस योजनाको विफल नहीं होने दिया। यद्यपि स्थायी ग्राहकोके सन्तोषप्रद होनेकी आशा नहीं रही, परन्तु फुटकर विक्री एक तरहसे ठीक हुई जिसके फलस्वरूप लगभग ढाई वर्षमें हम यह दूसरी आवृत्ति निकाल रहे हैं।

अब तक इस मालाके पन्द्रह पुष्प निकले हैं, जिनमेंसे शुरूके चार पुष्प दूसरी बार प्रकाशित हो चुके हैं और जान पड़ता है कि आगेके पुष्प भी इसी क्रममे दुबारा प्रकाशित करने होंगे।

# अनुवादकर्ताका वक्तव्य

बंगलासे अनुवाद करनेका मेरे लिए यह पहला ही मौका है। इसके पहले मैंने एक छोटी-सी कहानीका\* अनुवाद अवश्य किया था।

हिन्दीमें जिसे ' टकसाली भाषा ' कहते हैं, उससे मुझे एक तरहकी चिढ़-सी है। मेरी समझमें वह नपी-तुली, एक खास चौखेटमें बैठी हुई, निष्प्राण भाषा है जो हृदयकी भाषा नहीं हो सकती, उसमें लेखकका व्यक्तित्व अप्रकट ही रह जाता है।

वर्तमान समयमें सभी भाषाओंकी शैलियोंका विकास हो रहा है, परन्तु हिन्दी इस विषयमें बहुत पिछड़ी हुई है। अभी तक इसमें उसी नपी-तुली भाषाका ही, यद्यपि कुछ समयसे कुछ विद्रोही भी दिखाई देने लगे हैं, बोलबाला है।

भाषाको भावों, रसों, विचारोंकी अनुगामिनी होना चाहिए, भावोंके आवेगमें जब बहुत-से विचार आकर हृदयमें उथल-पुथल मचाते हैं तब भाषाके लिए यह सभव नहीं कि वह शान्त अविच्छिन्न प्रवाहमें किसी बंधे हुए तरीकसे ही बाहर निकले। जब हमारा मन गहरे दार्शनिक ' मूड ' में होता है तब भाषा भी गभीर और बड़े बड़े मिश्रित वाक्योंवाली निकलती है। इसके सिवाय साधारण बोल-चालमें भी हम उस भाषाका उपयोग नहीं करते जिसका उपयोग टकसाली भाषाके हिमायती लिखनेमें करते हैं।

शरद् बाबूकी भाषा और शैली हमेशा प्रसगके अनुसार बदलती रहती है। जब वे किसी गहरी मनोविज्ञानिक या दार्शनिक चर्चामें पड़ते हैं या किसी गहरे भावको प्रकट करते हैं तब उनकी शैली भी उसी परिमाणमें गभीर हो जाती है। उनकी लेखनी बड़ी ही स्वाभाविकतासे, एक एक वाक्यमें अनेक भाव भरती हुई, लगातार लम्बे लम्बे वाक्य उगलती हुई चली जाती है। इसी तरह जब वे कोई चुभती हुई बात कहते हैं तब दो-दो तीन-तीन शब्दोंके वाक्योंकी झड़ी-सी लगा देते हैं। हिमालयके शिखरों और चट्टानोंपर जोर-शोरसे प्रवाहित होनेवाली गगा मानो समतल-भूमिपर आकर मन्थर गतिसे बहने लगती है।

\* यह छोटी कहानी तसवीर ( छवि ) शरत्साहित्यके तीसरे भागमें प्रकाशित हुई है।

अनुवाद-कर्त्ताओंमें बहुत कम ऐसे हैं जो मूल लेखकोंकी शैलीको अक्षुण्ण रखनेका प्रयत्न करते हैं। वे मूलके साधारणसे साधारण वाक्योंको तोड़कर दो-दो तीन-तीन वाक्य बना देते हैं और जगह जगह अपनी ओरसे बिल्कुल ही नये वाक्य और शब्द भर देते हैं और-इस तरह मूलकी अपेक्षा अनुवादको सजाया कर देते हैं। बीच बीचमें जहाँ भाव कुछ गभीर होते हैं वहाँ वे अपनी तरफसे उनकी टीका या भाग्य करनेसे भी नहीं चूकते। उदाहरणार्थ, साधारण बातचीतमें हम लोग 'अर्थात्' 'यानी' 'या' आदि शब्दोंकी सहायतासे अपनी बातको अधिक स्पष्ट करनेकी कोशिश नहीं करते, बल्कि पहलेसे ही सरल वाक्य या शब्दोंका उपयोग करते हैं, परतु अनुवादकर्त्ता इसकी परवा नहीं करते और निरकुश होकर अपनी टीकाको अनुवादमें शामिल कर देते हैं। मानों मूल लेखकको अपना भाव स्पष्ट करनेकी कुछ फिक्र ही न हो।

मेरे इस अनुवादमें और चाहे जितनी त्रुटियाँ हो, परन्तु, भाषा, भाव और शैलीमें मैंने शक्ति-भर मूलका पूरा पूरा अनुकरण किया है और मेरा विश्वास है कि, शरद् बाबू यदि कल हिन्दी सीखकर हिन्दीमें लिखने लगे तो उनकी लेखन-शैली इस अनुवादकी शैलीसे अधिक भिन्न न होगी। आप इस अनुवादमें मूलसे असम्मत वाक्योंका प्रयोग अथवा मूलके वाक्यों, भावों और अलंकारोंका लोप न पायेंगे।

परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हिन्दीमें अप्रचलित संस्कृत शब्दोंको जैसाका तैसा उठाकर, बङ्गलाकी विभक्तियोंके बदले हिन्दी विभक्तियाँ डालकर, बङ्गलाको हिन्दी बनानेकी कोशिश की गई है अथवा वाक्यशः अनुवाद करनेकी धुनमें मूलका प्रसाद गुण नष्ट हो जाने दिया है। मैंने इन दोषोंसे अपने अनुवादको अछूता रखनेकी भरसक कोशिश की है। साधारण बङ्गला-भाषा-भाषियोंके लिए मूल बङ्गला समझना जितना सरल या कठिन है, हिन्दी-भाषियोंके लिए उसका यह हिन्दी अनुवाद समझना भी उतना ही सरल या कठिन होगा। मैंने उसकी सरलता या कठिनतामें न्यूनाधिक्य करनेकी कोशिश नहीं की है। इसे मैं एक तरहसे अनधिकार चेष्टा समझता हूँ।

शरद् बाबू जगह जगहपर साहित्यिक प्रतीकवाद ( Symbolism ) के

गभीर अलकारोंका प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार अपने मूलोविज्ञानको भाषा-द्वारा, घटनाओंके द्वारा, शब्दोंके हेर-फेरसे, प्रकट करते हैं। विशिष्ट शब्दको विशिष्ट स्थानमें विशिष्ट तरहसे उपयोग करनेमें उनका कोई न कोई गूढ उद्देश्य रहता है। मैंने इस ओर भी पूरा ध्यान दिया है और उनकी उक्त विशिष्टताको सुरक्षित रखनेके कोशिश की है।

हिन्दीमें विराम-चिह्नोंके उपयोगके सम्बन्धमें काफी अराजकता फैली हुई है। एक ही वाक्यमें एक साथ अनेक विचार और भावोंका जहाँ प्रवेश होता है वहाँ उन्हें सुलझाकर स्पष्ट करनेके लिए, तथा लिखित भाषामें बोल-चालकी स्वाभाविकताकी पुट देनेके लिए, विराम-चिह्नोंका उपयोग होना चाहिए। इस अनुवादमें मैंने विराम-चिह्नोंका उपयोग बहुत अशोमे अमेरिकन विराम-पद्धतिके अनुसार किया है।

अनुवाद-कार्यकी ओर मेरी रुचि नहीं है, परन्तु, एक तो पिताजीका इसके लिए बहुत आग्रह हुआ, और दूसरे मैं बगला भाषाका विशेष ज्ञान भी प्राप्त करना चाहता था जिसके लिए अनुवाद-कार्य बहुत ही उपयुक्त है, इसलिए मुझे इस उद्योगमें प्रवृत्त होना पड़ा। मात्रम नहीं, इसमें कहीं तक सफल हुआ हूँ। मैं केवल यही कह सकता हूँ कि परिश्रम करनेमें मैंने कोई त्रुटि नहीं की है।

—अनुवादकर्ता



श्री  
लाला दीनदयाल घमंडीलाल मेरठवाले  
हाल खडकी ( पूना ) द्वारा  
श्री महावीर वाचनालय को  
मं. १९९८ भेंट.

# श्रीकान्त

१

मेरी सारी जिन्दगी घूमनेमे ही ब्राती है। इस घुमक्कड़ जीवनके तीसरे पहरमे खडे होकर, उसके एक अध्यायको सुनाते हुए, आज मुझे न जाने कितनी बातें याद आ रही हैं।

यों घूमते फिरते ही तो मैं बच्चेसे बूढा हुआ हूँ। अपने-पराये सभीके मुँहसे अपने सम्बन्धमे केवल 'छि: छि:' सुनते सुनते मैं अपनी जिन्दगीको एक बड़ी भारी 'छि: छि:' के सिवाय और कुछ भी नहीं सोच सका। किन्तु, बहुत कालके बाद, जब आज मैं उस कुछ याद और कुछ भूली हुई कहानीकी माला रूथने बैठा हूँ और सोचता हूँ कि जीवनके उस प्रभातमें ही क्यों उस सुदीर्घ 'छि: छि:' की भूमिका अङ्कित हो गई थी तब हठात् यह सन्देह होने लगता है कि सब लोग इस 'छि: छि:' को जितनी बढी करके देखते थे उतनी बढी शायद वह नहीं थी। जान पड़ता है, शायद, भगवान् जिसे अपनी सृष्टिके ठीक बीचमें जबरन धकेल देते हैं उसे भला लड़का कहलाकर एग्जामिन पास करनेकी सुविधा नहीं देने और न वे उसे गाडी-घोडे-पालकीपर लाव-लश्करके साथ भ्रमण करके 'कहानी' नाम देकर छपानेकी ही अभिच्छि देते हैं। उसे बुद्धि तो शायद वे कुछ दे देते हैं, परतु दुनियादार लोग उसे 'सु-बुद्धि' नहीं कहते। इसी कारण उसकी प्रशस्ति ऐसी असगत, ऐसी निराली होती है, और उसके देखनेकी चीजें, और जाननेकी तृष्णा, स्वभावतः ऐसी बेजोड होती है कि, यदि उसका

वर्णन किया जाय तो, शायद, 'सुबुद्धि' वाले लोग हँसते हँसते मर जायँ। उसके बाद वह मन्द बालक, न जाने किस तरह, अनादर और अवहेलाके कारण, बुरोके आकर्षणसे और भी बुरा होकर, धक्के और टोकरे खाता हुआ, अज्ञातरूपसे अंतमे किसी दिन अपयशकी झोली कंधेपर रखकर, कहीं चल देता है, और बहुत समयतक उसका कोई पता ही नहीं लगता।

अतएव इन सब बातोंको रहने देता हूँ। जो कुछ कहने बैठा हूँ वही कहता हूँ। परतु कहनेसे ही तो कहना हो नहीं जाता। भ्रमण करना एक बात है और उसका वर्णन करना दूसरी बात। जिसके भी दो पैर हैं, वह भ्रमण कर सकता है किन्तु दो हाथ होनेसे ही तो किसीसे लिखा नहीं जा सकता। लिखना तो बड़ा कठिन है। सिवाय इसके, बड़ी भारी मुश्किल यह है कि, भगवानने मेरे भीतर कल्पना-कवित्वकी एक बूँद भी नहीं डाली। इन अभागिनी आँखोंसे जो कुछ दीखता है, ठीक वही देखता हूँ। वृक्षको ठीक वृक्ष ही देखता हूँ और पहाड़-पर्वतको पहाड़-पर्वत। जलकी ओर देखनेसे वह जलके सिवाय और कुछ नहीं जान पड़ता। आकाशमे बादलोंकी तरफ आँख फाड़कर देखते देखते मेरी गर्दन अवश्य दुखने लगी है, पर बादल बादल ही नजर आये हैं, उनमे किसीकी निविड केश-नाशि तो क्या दीखेगी, बालका टुकड़ा भी खोजे नहीं मिला। चन्द्रमाकी ओर देखते देखते आँखे पथरा गईं हैं परतु उसमें भी कभी किसीका मुख-उख नजर न आया। इस प्रकार भगवानने ही जिसकी विडम्बना की हो उसके द्वारा कवित्व-सृष्टि कैसे हो सकती है ? यदि हो सकती है तो केवल यही कि वह सच सच बात सीधी तरहसे कह दे। इसलिए मैं यही करूँगा।

किन्तु मैं धुमककड़ क्यों हो गया, यह बतानेके पहले उस व्यक्तिका कुछ परिचय देना आवश्यक है जिसने जीवनके प्रभातमे ही सुझे इस नशेमे मत्त कर दिया था। उसका नाम था इन्द्रनाथ। हम दोनोका प्रथम परिचय एक फूटबाल-मैचमे हुआ। जानता नहीं कि वह आज जीवित है या नहीं। क्योंकि, बरसो पहले एक दिन वह बड़े सुबह उठकर, घर-बार जमीन-जायदाद और अपने कुटुम्बको छोड़कर केवल एक धोती लेकर चला गया और फिर लौटकर नहीं आया। ओह, वह दिन आज किस तरह याद है !

स्कूलके मैदानमे बगाली और मुसलमान छात्रोंमे फूटबाल-मैच था। सध्या

हो रही थी। मगन होकर देख रहा था। आनन्दकी सीमा न थी। हठात्,— अरे, यह क्या ! तडातड़ तडातड़ शब्द और ‘मारो सालेको, पकडो सालेको’ की पुकार मच गई। मैं विह्वल-सा हो गया। दो-तीन मिनट,—बस इतनेमें कहाँ कौन गायब हो गया, निश्चय ही न कर पाया। ठीक तौरसे पता लगा तब, जब कि मेरी पीठपर आकर एक छतरीका पूरा बेंट तडाकसे टूट गया तथा और भी दो-तीन बेट सिर और पीठपर पडनेको उद्यत दीखे। देखा, पाँच-सात मुसलमान छोकरोँने मेरे चारों ओर व्यूह-रचना कर ली है और भाग जानेको जरा-सा भी रास्ता नहीं छोडा है।

और भी एक बेट,—और भी एक। ठीक इसी समय जो मनुष्य बिजलीके वेगसे उस व्यूहको भेदता हुआ मेरे आगे आकर खड़ा हो गया, वही था इन्द्रनाथ।

रग उसका काला था। नाक वशीके समान, कपाल प्रशस्त और सुडौल, मुखमे दो-चार चेचकके दाग। ऊँचाई मेरे बराबर ही थी किन्तु उम्र मुझसे कुछ अधिक थी। कहने लगा, “कोई डर नहीं है, तुम मेरे पीछे पीछे बाहर निकल आओ।”

उस लड़केकी छातीमें जो साहस और कसणा थी, वह दुर्लभ होते हुए भी शायद असाधारण नहीं थी। परतु इसमें जरा भी सदेह नहीं कि उसके दोनों हाथ असाधारण थे। यही नहीं कि वे बहुत बलिष्ठ थे, वरन् लम्बाईमें भी घुटनों तक पहुँचते थे। सिवाय इसके, उसे एक सुविधा यह भी थी कि जो उसे जानता नहीं था उसके मनमें यह आशका भी न हो सकती थी कि विवादके समय यह भला आदमी अकस्मात् अपना तीन हाथ लम्बा हाथ बाहर निकालकर मेरी नाकपर एकाएक इस अन्दाजका घूँसा मार सकेगा। वह घूँसा क्या था, उसे बाधका पजा कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

दो ही मिनटके भीतर मैं उसकी पीठसे सटा हुआ बाहर आ गया, और तब, इन्द्रने बिना किसी आडम्बरके कहा, “भागो।”

भागना शुरू करके मैंने पूछा, “और तुम ?” उसने रुखाईसे जवाब दिया, “अरे तू तो भाग—गधे कहींके।”

गधा होऊँ—या चाहे जो होऊँ, मुझे खून याद है, मैंने हठात् लौटकर और खड़े होकर कहा, “नहीं, मैं नहीं भागूँगा।”

बचपनमें मार-पीट किसने न की होगी ? किन्तु, मैं था गाँवका लडका—दो-तीन महीने पहले ही लिखने-पढ़नेके लिए शहरमें बुआजीके यहाँ आया था ।—इसके पहले, इस प्रकार दल बँधकर, न तो मैंने मार-पीट ही की थी, और न किसी दिन इस तरह दो पूरे छतरीके बेटे ही मेरी पीठके ऊपर दूटे थे । फिर भी मैं अकेला भाग न सका । इन्द्रने एक बार मेरे मुँहकी ओर देखकर कहा, “ नहीं भागेगा, तो क्या खड़े खड़े मार खायगा ? देख, उस तरफसे वे लोग आ रहे हैं—अच्छा, तो चल, खूब कसकर दौड़े । ”

यह काम तो मैं खूब कर सकता था । दौड़ते दौड़ते जब हम लोग बड़ी सड़कपर पहुँचे, तब शाम हो गई थी । दूकानोंमें रोगनी हो गई थी और रास्तेपर म्युनिसिपलके कैरॉसिनके लेम्प, लोहेके खम्भोंपर, एक यहाँ और दूसरा वहाँ, जल रहे थे । । आँखोंमें जोर होनेपर, ऐसा नहीं है कि एकके पास खड़े होनेपर दूसरा दिखाई न पडता । आततायियोकी अब कोई आशका नहीं थी । इन्द्र अत्यन्त स्वाभाविक सहज स्वरसे बात कर रहा था । मेरा गला सूख रहा था, परंतु आश्चर्य है कि इन्द्र रत्ती-भर भी नहीं हाँफा था । मानो कुछ हुआ ही न हो—न मारा हो, न मार खाई हो और न दौड़ा ही हो । जैसे कुछ हुआ ही न हो, ऐसे भावसे उसने पूछा, “ तेरा नाम क्या है रे ? ”

“ श्री—का—न्त । ”

“ श्रीकान्त ? अच्छा, ” कहकर उसने अपने जेबसे मुठी भर सूखी पत्ती बाहर निकाली । उसमेंसे कुछ तो उसने खा ली और कुछ मेरे हाथमें देकर कहा, “ आज खूब ठोका सालोको, ले खा । ”

“ क्या है यह ? ”

“ बूटी । ”

मैंने अन्यन्त विस्मित होकर कहा, “ भौं ? यह तो मैं नहीं खाता । ”

उसने मुझसे भी अधिक विस्मित होकर कहा, “ खाता नहीं ? कहींका गधा है रे ! खूब नशा होगा—खा, चबाकर लील जा । ”

नशेकी चीजका मजा उस समय तक जात नहीं था, इसलिए सिर हिलाकर मैंने उसे वापस कर दिया । वह उसे भी चबाकर निगल गया ।

“ अच्छा, तो फिर सिगरेट पी, ” यह कहकर उसने जेबसे दो सिगरेट और दियासलाई बाहर निकाली । एक तो उसने मेरे हाथमें दे दी और दूसरी

अपने हाथमें रखी। इसके बाद, वह अपनी दोनों हथेलियोंको एक विचित्र प्रकारसे जुटाकर, उस सिगरेटको चिलम बनाकर जोरसे खींचने लगा। बापरे,—कैसे जोरसे उसने दम खींचा कि एक ही दममें सिगरेटकी आग सिरेसे चलकर नीचे उतर आई। लोग चारों तरफ खड़े थे—मैं बहुत ही डर गया। मैंने डरते हुए पूछा, “ पीते हुए यदि कोई देख ले तो ? ”

“ देख ले तो क्या ? सभी जानते हैं । ” यह कहकर स्वच्छन्दतासे सिगरेट पीता हुआ वह चौराहेपर मुड़ा और भेरे मनपर एक गहरी छाप लगाकर, एक ओरको चल दिया।

आज उस दिनकी बहुत-सी बातें याद आती हैं। सिर्फ इतना ही याद नहीं आता, कि उस अद्भुत बालकके प्रति, उस दिन मुझे प्रेम उत्पन्न हुआ था, अथवा यों खुले आम भोग और तमाखू पीनेके कारण, मन ही मन घृणा!

इस घटनाके बाद करीब एक महीना बीत गया। एक दिन रात्रि जितनी उष्ण थी उतनी ही अँधेरी भी थी। कहीं वृक्षकी एक पत्ती तक न हिलती थी। सब छतपर सोये हुए थे। १२ बज चुके थे, परन्तु किसीकी भी आँखोंमें नींदका नाम न था। एकाएक बॉसुरीका बहुत मधुर स्वर कानोंमें आने लगा। साधारण ‘ रामप्रसादी ’ सुर था। कितनी ही दफे तो सुन चुका था, किंतु बॉसुरी इस प्रकार मुग्ध कर सकती है, यह मैं न जानता था। हमारे मकानके दक्षिण-पूर्वके कोनेमें एक बड़ा भारी आम और कटहलका बाग था। कई हिस्से-दारोकी सम्पत्ति होनेके कारण कोई उसकी खोज-खबर नहीं लेता था, इस लिए पूरा बाग निषिद्ध जगलके रूपमें परिणत हो गया था। गाय-बैलेंके आने-जानेसे उस बागके बीचमेंसे केवल एक पतली सी पगडडी बन गई थी। ऐसा मालूम हुआ कि मानो उसी वन-पथसे बॉसुरीका सुर क्रमशः निकटवर्ती होता हुआ आ रहा है। बुआ उठकर बैठ गई और अपने बड़े लडकेको उद्देश कर बोलीं, “ हॉ रे नवीन, यह बॉसुरी राय-परिवारका इन्द्र ही बजा रहा है न ? ” तब मैंने समझा कि इस वशीधारीको ये सभी चीन्हते हैं। बड़े भइयाने कहा, “ उस हतभागोको छोड़कर ऐसी वगी दूसरा कौन बजायगा और, उस जगलमें, ऐसा कौन है जो ढूँकेगा ? ”

“ बोलता क्या है रे ? वह क्या गुसाईंके बगीचेमेंसे आ रहा है ? ”

बड़े भइया बोले, “ हॉ । ”

ऐसे भयंकर अधिकारमें उस अदूर्वतीं गहरे जगलका खयाल करके बुआ मन ही मन मानो सिहर उठीं और डर-भरे कण्ठसे प्रश्न कर उठीं, “अच्छा उसकी माँ भी क्या उसे नहीं रोकती ? गुसार्ईके बागमे तो न जाने कितने लोग सॉपके काटनेसे मर गये हैं—उस जगलमें इतनी रातको वह लडका आया ही क्यों ?”

बड़े भइया कुछ हँसकर बोले, “इसलिए कि उस मुहल्लेसे इस मुहल्लेतक आनेका वही सीधा रास्ता है। जिसे भय नहीं है, प्राणोंकी पर्वाह नहीं है, वह क्यों बड़े रास्तेसे चक्कर काटकर आवेगा माँ ? उसे तो जल्दी आनेसे मतलब। फिर चाहे उस रास्तेमे नदी-नाले हों,—चाहे सॉप-बिच्छू और बाघ-भालू हो !”

“धन्य है रे लडके, तुझे !” कहकर बुआ एक निःश्वास डालकर चुप हो रहीं। वंशीकी ध्वनि क्रमशः सुस्पष्ट होती गई और फिर धीरे धीरे अस्पष्ट होती हुई दूर जाकर विलीन हो गई।

यही था वह इन्द्रनाथ। उस दिन तो मैं यह सोचता रहा था कि क्या ही अच्छा होता, यदि इतना अधिक बल मुझमे भी होता और मैं भी इसी तरह मार-पीट कर सकता और आज रात्रिको जबतक सो न गया तबतक यह कामना करता रहा कि यदि किसी तरह ऐसी वशी बजा सकता।

परन्तु उससे सद्भाव किस तरह पैदा करूँ ? वह तो मुझसे बहुत ऊँचेपर है। उस समय वह स्कूलमे भी न पढता था। सुना था कि, हैडमास्टर साहबने अन्याय करके उसके सिरपर ज्यो ही गधेकी टोपी लगानेका आयोजन किया, त्यों ही, वह मर्माहत हो, अकस्मात् हैडमास्टरकी पीठपर एक धौल जमाकर, घृणा-भावसे स्कूलके रेलिंग फौदता हुआ घर भाग आया और फिर गया ही नहीं। बहुत दिनो बाद उसीके मुँहसे सुना था कि वह एक न-कुछ अपराध था। हिन्दुस्तानी पंडितजीको क्लासके समयमे ही नींद आने लगती थी, सो एक बार जब वे नींद ले रहे थे तब, उनकी गाँठ-बँधी चोटीको उसने कैचीसे काटकर जरा छोटा-भर कर दिया था। और इससे उनकी विशेष कुछ हानि भी नहीं हुई, क्यों कि पंडितजी जब घर पहुँचे तब उनको अपनी चोटी अपनी चपकनकी जेबमें ही पढी हुई मिल गई। वह कहीं खेई नहीं गई, फिर भी पंडितजीका गुस्सा गान्त क्यों न हुआ और क्यों वे हैडमास्टर साहबके पास नालिश करने गये—यह बात आजतक भी इन्द्रकी समझमे नहीं आई। परन्तु फिर भी, यह बात वह ठीक

समझ गया था कि स्कूलसे रेलिंग फाँदकर घर आनेका रास्ता तैयार हो जानेपर फिर फाटकमेंसे वापिस लौटकर जानेका रास्ता प्रायः खुला नहीं रह जाता । और फाटकका रास्ता खुला रहा या नहीं रहा, यह देखनेकी उत्सुकता भी उसे त्रिविकुल नहीं हुई । यहाँ तक कि सिरपर १०-२० अभिभावकोंके होनेपर भी, उनमेंसे कोई भी, उसका मुँह किसी भी तरह फिर विद्यालयकी ओर नहीं फेर सका ।

इन्द्रने कलम फेंककर नावका डॉड हाथमें ले लिया । तबसे वह सारे दिन गगामें नावके ऊपर रहने लगा । उसकी अपनी एक छोटी-सी डोंगी थी । चाहे आँधी हो चाहे पानी, चाहे दिन हो चाहे रात, वह अकेला उसीपर बना रहता । कभी कभी एकाएक ऐसा होता कि वह पश्चिमकी गगाके इकतरफा बहावमें अपनी डोंगीको छोड देता, डॉड पकडे चुपचाप बैठा रहता और दस-दस पद्रह-पद्रह दिनतक फिर उसका कुछ भी पता न लगता ।

एक दिन इसी प्रकार जब वह बिना किसी उद्देश्यके अपनी डोंगी बहाये जा रहा था, तब उसके साथ मिलनकी गॉठको सुदृढ़ करनेका मुझे मौका मिला । उस समय मेरी यही एक मात्र कामना थी कि उससे किसी न किसी प्रकार मित्रताका सम्बन्ध दृढ़ किया जाय, और यही बतलानेके लिए मैंने इतना कहा है ।

किन्तु जो लोग मुझे जानते हैं वे तो कहेंगे कि यह तो तुम्हें नहीं सोहता भैया ! तुम ठहरे गरीबके लडके और फिर लिखना-पढ़ना सीखनेके लिए अपना गाँव छोडकर पराये घर आकर रहे हो, फिर तुम उससे मिले ही क्यों और मिलनेके लिए इतने व्याकुल ही क्यों हुए ? यदि ऐसा न किया होता, तो आज तुम—

ठहरो, ठहरो, अधिक कहनेकी जरूरत नहीं है । यह बात हजारों लोगोंने लाखों ही बार मुझसे कही है, स्वयं खुद मैंने भी यह प्रश्न अपने आपसे करोड़ों बार पूछा है, परंतु सब व्यर्थ । वह कौन था ?—इसका जवाब तुममेसे कोई भी नहीं दे सकता और फिर, ' यदि ऐसा न हुआ होता तो मैं क्या हो जाता, ' इस प्रश्नका समाधान भी तुममेंसे कोई कैसे कर सकता है ? जो सब कुछ जानते हैं, केवल वे ( भगवान् ) ही बताने सकते हैं कि क्यों इतने आदमियोंको छोडकर एकमात्र उसी हतभागके प्रति मेरा सारा हृदय आकृष्ट हुआ और क्यों उस मन्दसे मिलनेके लिए मेरे शरीरका प्रत्येक कण उन्मुख हो उठा ।

वह दिन मुझे खूब याद है । सारे दिन लगातार गिरते रहनेपर भी मेह बन्द



नहीं हुआ था। सावनका आकाश घने बादलोसे घिरा हुआ था। शाम होते-न-होते चारो ओर अधकार छा गया था। जल्दी जल्दी खाकर, हम कई भाई रोजकी तरह बाहर बैठकरखानेमे बिछे हुए विस्तरपर रेडीके तेलका दीपक जला कर, पुस्तक खोलकर, बैठ गये थे। बाहरके बरामदेमें एक तरफ फूफाजी केवासकी खाटपर लेटे हुए अपनी साथ्य तन्द्राका उपभोग कर रहे थे और दूसरी ओर बूढ़े रामकमल भट्टाचार्य अफीम खाकर अधकारमें आँखें मीचे हुए हुक्का गुड़-गुड़ा रहे थे। ड्यौढीपर हिन्दुस्तानी दरवानका 'तुलसीदासी' स्वर सुन पड रहा था और भीतर हम तीनों भाई मँझले भइयाकी कड़ी देख-रेखमे चुपचाप विद्या-न्यास कर रहे थे। छोटे भइया जतीन और मैं तीसरी और चौथी कक्षामें पढते थे और गम्भीर-स्वभावके मझले भइया दो दफे एण्ट्रेन्स फेल होकर तीसरी दफेकी तैयारी कर रहे थे। उनके प्रचण्ड शासनमे किसीको एक मिनट भी नष्ट करनेका साहस न होता था। हम लोगोका पढनेका समय था ७॥ से ९ बजे तक। उस समय बात-चीत करके हम उनकी 'पास हेने' की पढाईमें विघ्न न डाल सके, इसके लिए वे रोज कैचीसे काटकर कागजके २५-३० टिकट जैसे टुकडे रख छोडते। उनमेंसे किसीमे लिखा होता 'बाहर जाना है', किसीमे 'थूकना है', किसीमे 'नाक साफ करना है', किसीमे 'पानी पीना है' आदि। जतीन भइयाने एक नाक साफ करनेका टिकट मँझले भइयाके सामने पेश किया। मँझले भइयाने उसपर अपने हाथसे लिख दिया '८ बजकर ३३ मिनटसे लेकर ८ बजकर ३३॥ मिनट तक।' अर्थात् इतने समयके लिए वह नाक साफ करने जा सकते हैं। छुट्टी पाकर जतीन भइया टिकट हाथमे लेकर गये ही थे कि छोटे भइयाने थूकने जानेका टिकट पेग कर दिया। मझले भइयाने उसपर 'नहीं' लिख दिया। इसपर दो मिनट तक छोटे भइया मुँह फुलाये बैठे रहे और उसके बाद उन्होंने पानी पीनेकी अर्जी दाखिल कर दी। इस बार वह मजूर हो गई। मझले भइयाने इसके लिए लिख दिया, "हाँ, ८ बजकर ४१ मिनटसे लेकर ८ बजकर ४७ मिनट तक।" परवाना लेकर छोटे भइया हँसते हुए ज्यो ही बाहर गये त्यो ही जतीन भइयाने लौटकर हाथका टिकट वापस दे दिया। मझले भइयाने घडी देखकर और समय मिलाकर एक रजिस्टर बाहर निकाला और उसमे वह टिकट गोदसे चिपका दिया। यह सब सामान उनकी हाथकी पहुँचके

भीतर ही रखवा रहता था। सप्ताह समाप्त होनेपर इन सब टिकटोंको सामने रखकर कैफियत तलब की जाती थी कि क्यों अमुक दिन तुमने इजाजतसे अधिक समय लगा दिया।

इस प्रकार मझले भइयाकी अत्यन्त सतर्कता और श्रुखलाबद्धतासे,—हमारा और उनका खुदका,—किसीका जरा-सा भी समय नष्ट न होने पाता था। इस तरह प्रति दिन, डेढ घण्टा, खूब पढ लेनेके उपरान्त, जब हम लोग रातके नौ बजे घरमें सोनेको आते थे तब निश्चय ही माता सरस्वती हमें घरकी चौखटतक पहुँचा जाती थीं, और दूसरे दिन स्कूलकी कक्षासे जो सब सम्मान—सौभाग्य प्राप्त करके हम घर लौटते थे वह तो आप समझ ही गये होंगे। परन्तु मझले भइयाका दुर्भाग्य कि उनके बेवकूफ परीक्षक उन्हें कभी चीन्ह न सके। वे निजकी तथा पराई शिक्षा-दीक्षाके प्रति इतना प्रबल अनुराग तथा समयके मूल्यके सम्बन्धमें अपने उत्तरदायित्वका इतना सूक्ष्म खयाल रखते थे, फिर भी, वे उन्हें बराबर फेल ही करते गये। इसे ही कहते हैं अदृष्टका अन्ध न्याय-विचार। खैर, जाने दो—अब उसके लिए दुखी होनेसे क्या लाभ ?

उस रात्रिको भी घरके बाहर वही घना अधकार, बरामदेमें तन्द्राभिभूत वे ही दोनों बुड़्डे और भीतर दीपकके मन्द प्रकाशके सम्मुख गभीर अध्ययनमें लगे हुए हम चारो प्राणी थे।

छोटे भइयाके लौट आते ही प्यासके मारे मेरी छाती एक वारगी फटने लगी। इसीलिए टिकट पेग करके मैं हुक्मकी राह देखने लगा। मझले भइया उसी टिकटोंवाले रजिस्टरके ऊपर झुककर परीक्षा करने लगे कि मेरा पानी पीनेके लिए जाना नियम-संगत है या नहीं,—अर्थात् कल परसों किस परिमाणमें मैंने पानी पिया था।

अकस्मात् मेरे ठीक पीछेसे एक 'हुम्' शब्द और साथ ही साथ छोटे भइया और जतीन भइयाका आर्तकण्ठसे निकला हुआ 'अरे ब्रापरे! मार डालारे' का गगनमेदी चीत्कार सुन पडा। उन्हें किसने मार डाला, सिर घुमाकर यह देखनेके पहले ही, मझले भइयाने मुख उठाकर विकट शब्द किया और विजलीकी तेजीसे सामने पैर फैला दिये जिससे दीवट उलट गया। तब उस अंधकारमें 'दक्ष-यज्ञ' मच गया। मझले भइयाको थी मिर्गीकी बीमारी, इस लिए वे 'ओ ओ' करके दीवट उलटाकर जो चित् गिरे कि फिर न उठे।

ठेलठाल करके मैं बाहर निकला तो देखा कि फूफाजी अपने दोनो लड़कोको बगलमें दबाये हुए, उनसे भी अधिक तीव्र स्वरमें, चिल्लाकर छपर फाड़े डाल रहे हैं। ऐसा लगता था मानो उन तीनों बाप-बेटोंमें इस बातकी होड़ लगी हुई है कि कौन कितना गला फाड़ सकता है।

इसी अवसरपर एक चोर जी छोड़कर भागा जा रहा था और ड्यौड़ीके सेपाहियोंने उसे पकड़ लिया था। फूफाजी प्रचण्ड चीत्कार करके हुक्म दे रहे थे, “और मारो,—सालेको मार डालो” इत्यादि।

दम-भरमें रोशनी हो गई, नौकर-चाकरो और पास-पड़ोसियोंसे आंगन लचाखच भर गया। दरवानोंने चोरको मारते मारते अधमरा कर दिया और, मकाशके सम्मुख खींच लाकर, धक्का देकर गिरा दिया। चोरका मुँह देखकर घर-रके लोगोका मुँह सूख गया—अरे, ये तो भट्टाचार्य महाशय हैं।

तब कोई तो जल ले आया, कोई पखेसे हवा करने लगा, और कोई उनकी आँखो और मुँहपर हाथ फेरने लगा। उधर घरके भीतर मझले भइयाके साथ भी यही हो रहा था।

पखेकी हवा और जलके छींटे खाकर रामकमल होगमें आकर लगे फफक फफक कर रोने। सभी लोग पूछने लगे, “आप इस तरह भागे क्यों जा रहे थे ?” भट्टाचार्य महाशय रोते रोते बोले, “बाबा, बाघ नहीं, वह एक तगडा भालू था—छल्लोग मारकर बैठकखानेमेंसे बाहर आ गया।”

छोटे भइया और जतीन भइया बारबार कहने लगे, “भालू नहीं बाबा, एक भड्डिया था, पूँछ समेटे पायन्दाजके ऊपर बैठा गुर्रा रहा था।”

मझले भइया, होगमें आते ही अधमिची आँखोसे दीर्घ निश्वास छोड़ते हुए श्वेपमें बोले, “दी रायल बेगाल टाइगर।”

परन्तु वह है कहीं ? चाहे मझले भइयाका ‘दी रायल बेगाल’ हो, चाहे राम-कमलका ‘तगडा भालू’ हो, परन्तु वह यहाँ आया ही किस तरह और चला गे कहीं गया ? जब इतने लोगोंने उसे देखा है तब वह होगा तो कुछ न कुछ अवश्य ही।

तब किसीने विश्वास किया और किसीने नहीं किया। किन्तु सभी भय-चकित आँखोंसे लालटैन लेकर चारोतरफ खोजने लगे।

अकस्मात् पहलवान् किशोरीसिंह ‘वह बैठा है’ कहकर एक छल्लोगमें बराम-

देके ऊपर चढ़ गया। उसके बाद वहाँ भी ठेलोठेली मच गई। उतने सब लोग एक साथ बरामदेपर चढ़ना चाहते थे, किसीसे भी क्षण-भरकी देर न सही जाती थी। आँगनके एक तरफ अनारका दरख्त था। मालूम पडा कि उसीकी घनी डालियोमे एक बडा जानवर बैठा है। वह बाघके समान ही मालूम होता था। पलक मारते न मारते सारा बरामदा खाली हो गया और बैठकरखाना खचाखच भर गया। बरामदेमें एक भी आदमी न रहा। घरकी उस भीड़मेंसे फूफाजीका उत्तेजित कण्ठस्वर सुन पडने लगा, “ बरछी लाओ—बन्दूक लाओ—” हमारे मकानके पासके मकानमे गगन बाबूके यहाँ एक मुगरी बन्दूक थी। उनका लक्ष्य उसी अस्त्रपर था।

‘लाओ’ तो ठीक, किंतु लाए कौन? अनारका झाड था दरवाजेके ही निकट और फिर उसपर बैठा था भोडिया। हिन्दुस्तानी सिटपटाये तक नहीं और जो लोग तमाशा देखने आये थे वे भी सनाका खींचकर रह गये।

ऐसी विपत्तिके समय न जाने कहाँसे इन्द्र आकर उपस्थित हो गया। शायद वह सामनेके रास्तेसे कहीं जा रहा था और गोर-गुल सुनकर अन्दर घुस आया था। पल-भरमे सौ कण्ठ एक साथ चीत्कार कर उठे, “ओ रे, बाघ है बाघ! भाग जा रे लडके, भाग जा।”

पहले तो वह हडबडाकर भीतर दौड आया किन्तु पल-भर बाद ही, सब हाल सुनकर निर्भय हो, आँगनमे उतरकर लालटैन उठाकर देखने लगा।

दुमजिलेकी खिड़कियोमेंसे औरतें साँस रोककर इस साहसी लडकेकी ओर देख देखकर ‘दुर्गा’ नाम जपने लगीं। नीचे भीड़में खडे हुए हिन्दुस्तानी सिपाही उसे हिम्मत बंधाने लगे और आभास देने लगे कि एकाध हाथियार मिलनेपर वे भी वहाँ आनेको तैयार हैं।

अच्छी तरह देखकर इन्द्रने कहा, “द्वारिका बाबू, यह तो बाघ नहीं मालूम होता।” उसकी बात समाप्त होते न होते वह ‘रायल बेगाल टाइगर’ दोनों हाथ जोडकर मनुष्यके स्वरमें रो पडा और बोला, “नहीं, बाबूजी, नहीं, मैं बाघ-भालू नहीं, श्रिनाथ बहुरूपियो हूँ।” इन्द्र ठठाकर हँस पडा। भट्टाचार्य-महाशय खडाऊँ हाथमें लिये सबसे आगे दौड पड़े,—“हरामजादे, तुझे डरानेके लिए और कोई जगह नहीं मिली?” फूफाजीने म्हाक्रोधसे हुक्म दिया, “सालेको कान पकडकर लाओ।”

किशोरीसिंहने उसे सबसे पहले देखा था, इसलिए उसका दावा सबसे प्रबल था। वह गया और उसके कान पकड़कर घसीटता हुआ ले आया। भट्टाचार्य महाशय उसकी पीठपर जोर जोरसे खड़ाऊँ मारने लगे और गुस्तेके मारे दनादन हिन्दी बोलने लगे,—

“ इसी हरामजादे बदजातके कारण मेरी हड्डी-पसली चूरा हो गई हैं। साले पछहियोने घूसे मार मारकर कचूमर निकाल दिया। ”

श्रीनाथका मकान बारासतमें था। वह हरवर्ष इसी समय एकवार रोजगार करने आता था। कल भी वह इस घरमे नारद बनकर गाना सुना गया था।

वह कभी भट्टाचार्य महाशयके और कभी फूफाजीके पैर पडने लगा। बोला, “ लडकोने इतना अधिक भयभीत होकर, और दीवट लुडकाकर, ऐसा भीषण काण्ड मचा दिया कि मैं स्वयं भी मारे डरके उस वृक्षकी आड़मे जाकर छिप गया। सोचता था कि कुछ शान्ति होनेपर, बाहर आकर, अपना स्वाँग दिखाकर चला जाऊँगा। किंतु मामला उत्तरोत्तर ऐसा होता गया कि मेरी फिर हिम्मत ही नहीं हुई। ”

श्रीनाथ आरजू-मिन्नत करने लगा, किंतु फूफाजीका क्रोध कम हुआ ही नहीं। बुआजी स्वयं ऊपरसे बोलीं, “ तुम्हारे भाग्य भले थे जो सचमुचका घाघ-भाल् नहीं निकला, नहीं तो जैसे बहादुर तुम और तुम्हारे दरबान हैं,— छोड दो वेचारेको, और दूर कर दो ड्यौदीके इन पछहियाँ दरबानोको। एक जरासे लडकेमे जो साहस है उतना घर-भरके सब आदमियोमे मिलकर भी नहीं है। ” फूफाजीने कोई बात ही न सुनी, वरन् उन्होंने बुआजीके इस अभियोगपर आँखे घुमाकर ऐसा भाव धारण किया कि मानो इच्छा करते ही वे इन सब बातोंका काफी और ठीक ठीक जवाब दे सकते हैं, परन्तु चूँकि औरतोंकी बातोंका उत्तर देनेकी कोशिश करना भी पुरुष जातिके लिए अपमानकर है इसलिए, और भी गरम होकर हुक्म दिया ‘ इसकी पूँछ काट डालो। ’ तब उसकी रगिन कपड़ेसे लिपटी हुई घासकी बनी लम्बी पूँछ काट डाली गई, और उसे भगा दिया गया। बुआजी ऊपरसे गुस्तेमे बोलीं, “ पूँछको रख छोडो, किसी समय काम आयगी। ”

इन्द्रने मेरी ओर देखकर कहा, “ मालूम पडता है, तुम इसी मकानमें रहते हो, श्रीकान्त ? ”

मैंने कहा, “ हॉ, तुम इतनी रातको कहाँ जाते थे ? ”

इन्द्र हँसकर बोला, “ रात कहाँ है रे, अभी तो संध्या हुई है। मैं जातछ हूँ अपनी डोंगीपर मछली पकडने, चलता है ? ”

मैंने डरकर पूछा, “ इतने अघकारमे डोंगीपर चढोगे ? ”

वह फिर हँसा। बोला, “ डर क्या है रे ! इसीमें तो मजा है। सिवा इसके क्या अँधेरा हुए वगैर मछलियों पाई जा सकती हैं ? तैरना जानता है ? ”

“ खूब जानता हूँ । ”

“ तो फिर चल भाई । ” यह कहकर उसने मेरा एक हाथ पकड लिया । कहा, “ मैं अकेला इतने ब्रह्मवमे उस तरफको नाव नहीं ले जा सकता,— ऐसे ही किसीकी खोजमे था जो डरे नहीं । ”

मैंने फिर कुछ न कहा। उसका हाथ पकडे हुए चुपचाप रास्तेपर आ पहुँचा। पहले तो मानो मुझे अपने आपपर ही विश्वास न हुआ कि सचमुच ही उस रात्रिको मैं नाव चलाने जा रहा हूँ, क्योंकि जिस आह्वानके आकर्षणसे उस स्तब्ध निबिड निगामें, घरके समस्त शासन-पाशको तुच्छ समझकर, अकेला बाहर चला आया था वह कितना बडा आकर्षण था, यह उस समय विचारकर देख सकना मेरे लिए साध्य ही नहीं था। अधिक समय बीतनेके पूर्व ही गोसाई-वागके उस भयङ्कर वन-पथके सामने आ उपस्थित हुआ और इन्द्रका अनुसरण करता हुआ स्वप्नाविष्ट पुरुषकी भौंति उसे पारकर गंगाके किनारे जा पहुँचा।

ककड पत्थरोंका खड़ा किनारा है। सिरके ऊपर एक बहुत प्राचीन बरगदका वृक्ष मूर्तिमान अन्धकारके समान चुपचाप खड़ा है और उसीके करीब तीस हाथ नीचे सूची-भेद्य अघकारके तलमें, पूरी बरसातका गभीर जल-स्रोत चट्टानोसे टकराकर, भँवरोकी रचना करता हुआ, उद्दाम वेगसे दौड़ रहा है। देखा कि, उसी स्थानपर इन्द्रकी छोटी-सी नाव बँधी हुई है। ऊपरसे देखनेपर ऐसा मालूम हुआ मानों उस खूब तेज जल-धाराके मुखपर केलेके फूलका एक छोटा-सा छिलका लगातार टकराकर मर रहा है।

मैं स्वय भी विलकुल डरपोक नहीं था। किन्तु जब इन्द्रने ऊपरसे नीचे तक लटकती हुई एक रस्ती दिखलाकर कहा, “ डोंगीकी इस रस्तीको पकड़कर चुपचाप नीचे उतर जा, सावधानीसे उतरना, फिसल गया तो फिर खोजनेसे भी तेरा पता नहीं लगेगा । ” तब दर असल मेरी छाती धडक उठी। जान

'पडा कि यह असम्भव है, फिर भी मेरे लिए तो रस्तीका सहारा है—“ किन्तु तुम क्या करोगे ? ”

उसने कहा, “ तेरे नीचे जाते ही मैं रस्ती खोल दूँगा और फिर नीचे उतरूँगा । डरकी बात नहीं है, मेरे नीचे उतरनेके लिए बहुत-सी घासकी जड़ें झूल रही हैं । ”

और कुछ न कहकर मैं रस्तीके सहारे बड़ी सावधानीसे बमुश्किल नीचे उतर कर नावपर बैठ गया । इसके बाद उसने रस्ती खोल दी और वह झूल गया । वह किस चीज़के सहारे नीचे उतरने लगा सो मैं आज भी नहीं जानता हूँ । डरके मारे मेरी छाती द्रतने जोरसे धडकने लगी थी कि उसकी ओर मैं देख भी न सका । दो तीन भिनटतक विपुल जल-धाराके उन्मत्त गर्जनके सिवाय कहींसे कोई शब्द भी नहीं सुनाई दिया । एकाएक एक हलकी-सी हँसीके शब्दसे चौक कर मुँह फिराया तो देखता हूँ कि इन्द्रेने दोनो हाथोंसे डोंगीको जोरसे धक्का देकर ठेल दिया है और आप कूदकर उसपर चढ़ बैठा है । क्षुद्र तरी एक चक्कर-सा खाकर नक्षत्र वेगसे बहने लगी ।

## २

कुछ ही देरमें सामने और पीछे सधन अन्धकारसे लिप-पुतकर एकाकार हो गया । रह गई दाहिनी और बाई ओर दोनों सीमाओतक फैली हुई विपुल उद्दाम जलकी धारा, और उसके ऊपर खूब तेजीसे चलनेवाली यह छोटी-सी तरणी और उसपर किशोर वयवाले दो बालक । यद्यपि प्रकृति देवीके उस अपरिमेय गभीर रूपको समझनेकी उम्र वह नहीं थी, किन्तु उसे मैं आज भी नहीं भूल सका हूँ । वायुहीन, निष्कम्प, निस्तब्ध, निसःग निशीथिनीकी मानो वह एक विराट् काली मूर्ति थी । उसके निबिड काले बालोंसे आकाश और पृथ्वी ढँक गई थी और उस सूची-भेद्य अन्धकारको विदीर्ण करके, कराल दाढ़ोंकी रेखाके समान, उस दिगन्त-विस्तृत तीव्र जल-धारासे मानो एक तरहकी अद्भुत निश्चल युति, निष्ठुर दबी हुई हँसीके समान, बिखर रही थी । आसपास और सामने, कहीं तो जलकी उन्मत्त धारा तलदेशमें जाकर तथा ऊपरको उठकर फट पडती थी, कहीं परस्परके प्रतिकूल गति-सघातसे आवृत्तोंकी रचना करती हुई चक्कर खाती थी, और कहीं अप्रतिहत जलप्रवाह पागलकी तरह दौड़ा जा रहा था ।

हमारी डोंगी एक कोनेसे दूसरे कोनेकी ओर जा रही है, बस इतना ही मालूम हो रहा था। किन्तु उसपारके उस दुर्भेद्य अन्धकारमें, किस जगह लक्ष्य स्थिर करके, इन्द्र हालको पकड़े चुपचाप बैठा है, यह मैं कुछ न जानता था। इस उम्रमें वह कितना पक्का माझी बन गया था, इसकी मुझे उस समय कल्पना भी न थी। एकाएक वह बोला—

“क्यो रे श्रीकान्त, डर लगता है क्या ?”

मैं बोला, “नहीं।”

इन्द्र खुश होकर बोला, “यही तो चाहिए। जब तैरना आता है तब फिर डर किस बातका ?” प्रत्युत्तरमें मैंने एक छोटेसे निःश्वासको दबा दिया कि कहीं वह सुन न ले। किन्तु, ऐसी गहरी अंधेरी रातमें, ऐसी जल-रागि और ऐसे दुर्जय प्रवाहमें, तैरना जानने और न जाननेमें क्या अन्तर है, सो मेरी समझमें न आ सका। उसने भी और कोई बात नहीं कही। बहुत देरतक इसी तरह चलते रहनेके बाद कहींसे कुछ आवाज़-सी आई, जो कि अस्फुट और क्षीण थी, किन्तु नौका जैसे जैसे अग्रसर होने लगी वैसे ही वैसे वह आवाज़ भी स्पष्ट और प्रबल होने लगी।—मानों लोगोका बहुत दूरसे आता हुआ क्रुद्ध आह्वान हो—मानो कितने ही बाधा-विघ्नोका लोँघकर, हटाकर, वह आह्वान हमारे कानोतक आ पहुँचा हो।—वह आह्वान थका हुआ-सा था फिर भी न उसमें विराम था और न विच्छेद ही,—मानो उनका क्रोध न कम ही होता था न बढ़ता ही था और न थमना ही चाहता था। बीच बीचमें एकाध दफा ‘झप्-झप्’ शब्द भी होता था। मैंने पूछा, “इन्द्र यह काहेकी आवाज़ सुन पडती है ?” उसने नौकाका मुँह कुछ और सीधा करके कहा, “जलके प्रवाहसे उस पारके कगारें टूट-टूटकर गिर रहे हैं, उसीका यह शब्द है।” मैंने पूछा, “कितने बड़े कगारें हैं ? और कैसा प्रवाह है ?”

“बड़ा भयानक प्रवाह है। ओः तभी तो—कल पानी बरस गया है,—आज उसके तलेसे न गया जायगा। कहीं एक भी कगारा गिर पडा तो नाव और हम सभी पिस जायँगे। अच्छा, तू तो डाँड़ चला सकता है न ?”

“चला सकता हूँ।”

“तो चला।”

मैंने डाँड़ चलाना शुरू कर दिया। इन्द्रने कहा, “वही,—वही जो बाईं ओर



काल काला दीख पड़ता है, वह चढ़ा \* है। उसके बीचसे एक नहर-सी गई है, उसीसे होकर निकल जाना होगा—परन्तु बहुत आहिस्ते। अगर कहीं धीवरोको जरा भी पता लग गया, तो फिर लौटना न हो सकेगा। वे लगीकी मारसे सिर फोड़कर इसी कीचड़में गाड़ देंगे।”

यह क्या ? मैंने डरते हुए कहा, “ तो फिर उस नहरमें होकर मत चलो। ” इन्द्रने शायद कुछ हँसकर कहा, “ और तो कोई रास्ता ही नहीं है। उसके भीतर होकर तो जाना ही होगा। द्वीपके बाईं ओरकी रेहको ठेलकर तो जहाज भी नहीं जा सकता—फिर हम कैसे जायेंगे ? लौटतीमे वापिस आ सकते हैं किन्तु जा नहीं सकते। ”

“ तो फिर मछलियोंके चुरानेकी जरूरत नहीं हैं भइया, ” कहकर मैंने डॉड ऊपर उठा लिया। पलक मारते ही नाव चक्कर खाकर लौट चली। इन्द्र खीझ उठा। उसने आहिस्तेसे झिड़कते हुए कहा, “ तो फिर आया क्यों ? चल,—तुझे वापिस पहुँचा आऊँ। कायर कहींका ! ” उस समय मैंने चौदह पूरे करके पन्द्रहवेंमें पैर रक्खा था—मैं कायर ?—झटसे डॉडको पानीमें फेककर प्राणप्रणसे खेने लगा। इन्द्र खुश होकर बोला, “ यही तो चाहिए, किन्तु भाई, धीरे धीरे चलाओ,—साले बहुत पाजी हैं। मैं झाऊके वनके पाससे, मकईके खेतोके भीतर होकर, इस तरह बचाकर ले चलूँगा कि सालोको जरा भी पता न पड़ेगा। ” फिर कुछ हँसकर बोला, “ और यदि सालोंको पता लग भी गया तो क्या ? पकड़ लेना क्या इतना सहज है ? देख श्रीकान्त, कुछ भी डर नहीं है—यह ठीक है कि उन सालोंकी चार नावें हैं—किन्तु, यदि देखना कि घिर ही गये हैं, और भाग जानेकी कोई जुगत नहीं है, तो चटसे कूदकर डुबकी लगा जाना और जितनी दूर तक हो सके उतनी दूर जाकर निकलना, बस काम बन जायगा। इस अन्धकारमें देख सकनेका तो कोई उपाय ही नहीं है—उसके बाद मजेसे सनूयाके टीलेपर चढ़कर भोरके समय तैरकर इस पार आ जायेंगे और गंगाके किनारे किनारे घर पहुँच जायेंगे,—बस, फिर क्या करोगे साले हमारा ? ”

यह नाम मैंने सुना था, कहा, “ सनूयाका टीला तो ‘घोर’ नालेके है, वह तो बहुत दूर है ? ”

इन्द्रने उपेक्षाके भावसे कहा, “ कहाँ, बहुत दूर है ? छः आठवर्षकी

\* नदीमें मैले जलकी मिट्टी जमकर जो द्वीप जैसे बन जाते हैं—

तो न होगा !—तैरते तैरते यदि हाथ मर आवें तो चित होकर सुस्ता लेना,— इसके सिवाय, मुर्दे जलानेके काम आये हुए बहुत-से बड़े बड़े लकड़ भी तो बहते मिल जायेंगे ।”

आत्म-रक्षाका जो सरल रास्ता था सो उसने दिखा दिया, उसमें प्रतिवाद करनेकी कोई गुजाइश नहीं थी । उस अँधेरी रातमें, जिसमें दिशाओंका कोई चिह्न नजर न आता था, और उस तेज जल-प्रवाहमें, जिसमें जगह जगह भयानक आवर्त्त पड़ रहे थे, सात कोस तक तैरते जाना और फिर मोर होनेकी प्रतीक्षा करते रहना ! सबसेसे पहले इस तरफके किनारेपर चढनेका कोई उपाय नहीं । दस-पन्द्रह हाथ ऊँचा खड़ा हुआ बालका कगारा है, जो टूटकर सिरपर आ सकता है,—और इसी तरफ गंगाका प्रवाह भीषण टकरें लेता हुआ अर्द्ध-वृत्ताकार दौड़ा जा रहा है ।

वस्तु-स्थितिका अस्पष्ट आभास पाकर ही मेरा विस्तृत वीर-हृदय सिकुड़कर बिन्दु जैसा रह गया । कुछ देर तक डॉड चलाकर मैं बोला, “ किन्तु फिर हमारी नावका क्या होगा ? ”

इन्द्र बोला, “ उस दिन भी मैं ठीक इसी तरह भागा था, और उसके दूसरे ही दिन आकर नाव निकाल ले गया था ।—कह दिया था कि घाटपरसे डोंगी चोरी करके और कोई ले आया होगा—मैं नहीं लाया । ”

तो यह सब इसकी कल्पना ही नहीं है,—बिल्कुल परीक्षा किया हुआ प्रत्यक्ष सत्य है ! क्रमशः नौका खाड़ीके सामने आ पहुँची । देख पड़ा कि मछुओंकी नावे कतार बाँधकर खाड़ीके मुहानेपर खड़ी हैं और उनमें दीए भी टिमटिमा रहे हैं । दो टीलोंके बीचका वह जल-प्रवाह नहरकी तरह मालूम होता था । घूमकर हम लोग उस नहरके दूसरे किनारेपर जाकर उपस्थित हो गये । उस जगह जलके वेगसे अनेक मुहानेसे बन गये हैं और जगली झाऊके पेड़ोंने परस्पर एक दूसरेको ओटभे कर रक्खा है । उनमेंसे एकके भीतर होकर कुछ दूर जानेसे ही हम नहरके भीतर जा पहुँचे । धीवरोंकी नावें वहाँसे दूरपर खड़ी हुई काली काली झाड़ियोंकी तरह दिखाई पड़ती थीं । और भी कुछ दूर जानेपर हम उद्दिष्ट स्थानपर पहुँच गये ।

धीवर देवताओने, नहरका सिंहद्वार सुरक्षित है,—यह समझकर इस स्थानपर पहरा नहीं रखवा था । इसे ‘ माया-जाल ’ कहते हैं । नहरमें जत्र पानी नहीं

रहता तब इस किनारेसे लेकर उस किनारेतक ऊँचे ऊँचे लट्ट मजबूतीसे गाड़ दिये जाते हैं और उनके बाहरी ओर जाल टाँग दिया जाता है। बादमे वर्षाके समय, जब जलके प्रवाहमें बड़े बड़े रोहू, कातला आदि मच्छ बहकर आते हैं, तब इन लट्टोंसे बाधा पाकर वे कूदकर इस बाजू आ जाना चाहते हैं और डोरीके जालमें फँस जाते हैं।

दस-पन्द्रह-बीस सेरके पाँच-छह रोहू-कातला मच्छ दम-भरमे पकड़कर इन्द्रने नावपर रख लिये। विराट्काय मच्छराज अपनी पूछोंकी फटकारसे हमारी उस छोटी-सी नौकाको चूर्ण विचूर्ण करनेका उपक्रम करने लगे और उसका शब्द भी कुछ कम नहीं हुआ।

“इतनी मछलियोंका क्या होगा, भाई ?”

“जरूरत है। बस, अब और नहीं, चलो भाग चलें।” कहकर उसने जाल छोड़ दिया। अब डाँड़ चलानेकी जरूरत नहीं रही। मैं चुपचाप बैठ रहा। उसी प्रकार छिपे छिपे उसी रास्तेसे बाहर होना था। अनुकूल बहावमें दो-तीन मिनट प्रखर गतिसे बहनेके उपरान्त, एकाएक एक स्थानपर मानो जरा धक्का खाकर, हमारी वह छोटी-सी डोगी पासके मकईके खेतमें प्रवेश कर गई। उसके इस आकस्मिक गति-परिवर्तनसे मैंने चकित होकर पूछा, “क्यों ? क्या हुआ ?”

इन्द्रने एक और धक्का देकर, उसे कुछ और भी अन्दर ले जाते हुए कहा, “चुप, सालोंको मालूम हो गया है,—चार नावोंको खोलकर साले यहीं आ रहे हैं,—वह देखो।” इन्द्र ठीक कह रहा था। जोरके साथ जलको काटतीं और ‘छप्-छप्’ शब्द करतीं हुईं तीन नौकाएँ हमें निगल जानेके लिए कृष्णकाय दैत्योंके समान दौबी आ रही थीं। उस तरफ तो जालसे रास्ता बन्द था, और इस तरफसे ये लोग आ रहे थे,—भागकर छुटकारा पानेका जरा-सा भी अवकाश नहीं था। इस मकईके खेतके बीच अपने आपको छिपाया जा सकेगा, यह भी मुझे संभव नहीं जान पडा।

“क्या क्या होगा भाई ?” कहते कहते ही अदम्य बाष्पोच्छ्वाससे भेरा कण्ठ रुद्ध हो गया। इस अन्धकारमें, इस पिंजरेके भीतर, अगर ये लोग हमारा खून करके भी इस खेतमें गाड़ दें, तो इन्हे कौन रोकेगा ?

इसके पहले पाँच छह बार इन्द्र ‘चोरीकी विद्या बड़ी विद्या है’ इस बातको सप्रमाण सिद्ध करके निर्विघ्न निकल गया था, इतने दिन, पीछा किये जानेपर भी

हाथ नहीं आया था, किन्तु आज ?

उसने मुखसे तो कहा कि, “ डरकी कोई बात नहीं है ” किन्तु मानो गला उसका काँप गया। किन्तु वह रुका नहीं, प्राण-पणसे लगी ठेलकर धीरे धीरे भीतर छिपनेकी चेष्टा करने लगा। समस्त टीला जलमय हो गया था। उसके ऊपर आठ-आठ दस-दस हाथ लम्बे मकई और ज्वारके पेड़ थे और भीतर हम दोनों चोर। कहीं तो पानी छातीतक था, कहीं कमरतक और कहीं घुटनोंसे अधिक नहीं। ऊपर निबिड़ अन्धकार और आगे-पीछे दाँ-बाँ दुर्भेद्य जगल। लगी कीचड़में घँसने लगी और डोंगी अब एक हाथ भी आगे नहीं बढ़ती। पीछेसे शीवरोकी अस्पष्ट बातचीत कानोंमें आने लगी। इस बातमें अब जरा भी संशय नहीं रहा कि कुछ सदेह करके ही वे लोग चले हैं और अब भी खोजते फिर रहे हैं।

सहसा डोंगी एक ओर कुछ झुककर सीधी हो गई। आँख उठाकर देखा कि, मैं अकेला ही रह गया हूँ, दूसरा व्यक्ति नहीं है। डरते हुए मैंने आवाज़ दी, “ इन्द्र ! ” पाँच छः हाथ दूर वनके बीचसे आवाज आई, “मै नीचे हूँ। ”

“ नीचे क्यों ? ”

“ डोंगी खींचकर निकालनी होगी। मेरी कमरसे रस्सी बँधी है। ”

“ खींचकर कहाँ ले जाओगे ? ”

“ उस गगामें। थोड़ी ही दूर ले-जानेपर बड़ी धारा मिल जायगी। ”

सुनकर मैं चुप हो गया और क्रम-क्रमसे धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा। अकस्मात् कुछ दूरपर वनके बीच कनस्तर पीटने और फटे बाँसोंके फटाफट शब्दसे मैं चौंक उठा। डरते हुए मैंने पूछा, “ वह क्या है भाई ? ” उसने उत्तर दिया, “ खेतिहर लोग मचानपर बैठे हुए जगली सुअरोंको भगा रहे हैं। ”

“ जगली सुअर ! कहाँ हैं वे ? ” इन्द्र नाव खींचते खींचते लापर्वाहीसे बोला, “ मुझे क्या दीख पड़ते हैं जो बताऊँ ? होंगे यहीं कहीं। ” जवाब सुनकर मैं स्तब्ध हो रहा। सोचा, किसका मुँह देखा था आज सुबह ! सरेशाम ही तो आज घरके भीतर बाघके हाथ पड़ गया था, तब यदि इस जंगलमें बनैले सुअरोंके हाथ पड़ जाऊँ, तो इसमें विचित्र ही क्या है ?—फिर भी मैं तो नावमें बैठा हूँ, किन्तु, यह आदमी, छाती तक कीचड़ और जलमें, इस जंगलके भीतर खड़ा है ! एक कदम हिलने-डुलनेका उपाय भी तो इसके पास नहीं है ! कोई पन्द्रह

मिनट इसी तरह सोच-विचारमें निकल गये । और भी एक वस्तुपर मैं ध्यान दे रहा था । अक्सर देखता था कि पास ही किसी न किसी ज्वार या मकईके पेड़का अगला हिस्सा एकाएक हिलने लगता था और ' छप-छप ' शब्द होता था । एक दफे तो मेरे हाथके पास ही हरकत हुई । सशङ्क होकर उस तरफ मैंने इन्द्रका ध्यान आकर्षित किया कि " बड़ा सुअर न सही, कोई बच्चा-कच्चा तो नहीं है ? "

इन्द्रने अत्यन्त सहज भावसे उत्तर दिया, " वह, कुछ नहीं,—सॉप लिपट्टे हैं; आहट पाकर जलमे कूद पडते हैं । "

' कुछ नहीं,—सॉप । ' कॉपकर मैं नावके बीच सिकुडकर बैठ गया । अस्फुट स्वरमे पूछा, " कैसे सॉप भाई ? "

इन्द्रने कहा, " सब किस्मके सॉप हैं ।—टोंडा, बोंडा, कौडियाल, काले आदि । पानीमे बहते बहते आये और झाड़ोंमें लिपट रहे,—कहीं भी तो सूखी जमीन नहीं है, देखते नहीं हो ? "

" सो तो देखता हूँ । " भयके मारे मेरे तो पैरोंके नखसे लेकर सिरके बाल तक खडे हो गये । परन्तु उस भले मानुसने भ्रूक्षेप तक न किया, अपना काम करते करते ही वह कहने लगा, " किन्तु ये काटते नहीं हैं । ये खुद ही बेचारे डरके मारे मेरे जा रहे हैं,—दो-तीन तो मेरे हो शरीरको छूते हुए भाग गये हैं । कई एक तो खूब मोटे हैं,—मालूम पड़ता है कि वे टोंडा बोडा होंगे । और यदि कदाचित् काट ही खायें, तो क्या किया जाय, मरना तो एक दिन होगा ही भाई । " इसी प्रकार वह और भी कुछ अपने मृदु स्वाभाविक कण्ठसे बोलता रहा, मेरे कानोंतक कुछ तो पहुँचा और कुछ नहीं पहुँचा । मैं निर्वाक निष्पन्द काठके समान जड होकर एक ही स्थानपर एक ही भावसे बैठा रहा । श्वास छोडनेमे भी मानो भय मालूम होने लगा ।—' छप ' से कहीं कोई मेरी नावमें ही न आ गिरे ।

और चाहे जो हो, किन्तु वह क्या आदमी है ?—मनुष्य, देवता, पिशाच, —वह क्या है ? किसके साथ मैं इस जगलमे घूम रहा हूँ ? यदि मनुष्य है तो क्या वह नहीं जानता कि इस विश्व-ससारमे भय नामकी भी कोई चीज होती है ? हृदय क्या उसका पत्थरसे बना है ? क्या वह हमारी ही तरह सिकुडता-फैलता नहीं है ? तो फिर उस दिन, खेलके मैदानमें, सबके भाग जानेपर, बिलकुल अपरिचित होते हुए भी, मुझ अकेलेको निर्विघ्न बाहर निकाल देनेके लिए जो वह शत्रुओंके मध्यमे

घुस आया था, सो क्या वह दया माया भी इस पत्थरमें ही विनिहित थी ? और आज विपत्तिका सब हाल राई-राई, तिल-तिल, जानते सुनते हुए भी चुपचाप अकुण्ठित चित्तसे वह इस भयावह और अति भीषण मृत्युके मुखमें उतरकर खड़ा है ! एक बार मुँहसे यह भी नहीं कहता कि 'श्रीकान्त भाई, एक बार तू नीचे उतर आ ।' वह तो मुझे जबरन् नीचे उतारकर नौका खिंचवा सकता था ! यह केवल खेल तो है नहीं ! जीवन और मृत्युके आमने-सामने खड़े होकर, इस उम्रमें, ऐसा स्वार्थ-त्याग कितने आदमियोंने किया है ? बिना आडम्बरके कितने सहज भावसे उसने कह दिया कि, 'मरना तो एक दिन होगा ही भाई !' ऐसी सच बात कहते कितने लोग दिखाई देते हैं ? यह सच है कि इस विपत्तिमें वही मुझे खींच लाया है, फिर भी, उसके इतने बड़े स्वार्थ-त्यागको मनुष्यकी देह धारण करते हुए मैं किस तरह भूल जाऊँ भला ? किस तरह भूँ उसे, —जिसके हृदयके भीतरसे इतना बड़ा अयाचित दान इतनी सरलतासे बाहर आ गया ?—उस हृदयको किसने किस चीजसे गढ़ा होगा ?—उसके बाद कितने काल और कितने सुख-दुखोंमेंसे होकर मैं आज इस बुढ़ापेको प्राप्त हुआ हूँ ।—कितने देग, कितने प्रान्त, कितने नद-नदी, पहाड़-पर्वत, वन-जगल, घूमा फिरा हूँ,—कितने प्रकारके मनुष्य इन दो आँखोंके सामनेसे गुजर गये हैं,—किन्तु इतना बड़ा महाप्राण व्यक्ति तो और कभी देखनेको नहीं मिला ! परन्तु वह अब नहीं रहा, अकस्मात् एक दिन मानो बुदबुदकी तरह शून्यमें मिल गया । आज उसकी याद आते ही ये दोनों सूखी आँखे जलसे भर आती हैं,—केवल एक निष्फल अभिमान हृदयके तल-देशको अग्लोठित करके ऊपरकी ओर फेनके माफिक तैर आता है । हे सृष्टिकर्ता ! क्यों तूने उस अद्भुत, अपार्थिव वस्तुको सृष्ट करके भेजा था, और इस प्रकार व्यर्थ करके क्यों उसे वापिस बुला लिया ? बड़ी ही व्यथासे मेरा यह असहिष्णु मन आज वारं-वार यही प्रश्न करता है—भगवन् ! तुम्हें रुपया-पैसा, धन-दौलत, विद्या-बुद्धि तो अपने अखूट भाडारसे ढेरकी ढेर देते हुए देखता हूँ, किन्तु इतने बड़े महाप्राण व्यक्ति आज तक तुम कितने दे सके हो ? खैर, जाने दो इस बातको । घोर जल-कल्लोल क्रमशः पासमें आता-जाता है इस बातको मैं जान रहा था, इस लिए और कोई सवाल किये वगैरे मैंने समझ लिया कि इस जगलके ब्रीचमे ही वह भीषण प्रवाह प्रधावित हो रहा है, जिसको स्टीमर भी पार नहीं कर पाते ।

मैं खूब अनुभव कर रहा था कि पानीका वेग बढ़ रहा है और धूसर वर्णका फेन-पुञ्ज विस्तृत रेत-राशिका भ्रम उत्पन्न कर रहा है। इन्द्र नौकापर चढ़ आया और डॉडको हाथमें लेकर सामनेके उद्दाम स्रोतका सामना करनेको तैयार हो बैठा। वह बोला, “ अब कोई डर नहीं है, हम बड़ी गगामे आ पहुँचे हैं। ” मैंने मन ही मन कहा—अब, डर नहीं है तो अच्छा है। किन्तु डर तुम्हें काहेका है सो तो मैं समझा ही नहीं। क्षण-भर बाद ही नौका एक बार मानों सिरसे पैर तक कॉप उठी और पलक मारनेके पहले ही मैंने देखा कि वह बड़ी गंगाके स्रोतमे पडकर उल्काके वेगसे दौबी जा रही है।

उस समय छिन्न बादलोंकी आड़मे मालूम हुआ, मानों चन्द्रमा उदय हो रहा है। क्योंकि जैसे अंधकारमें हम अभी तक यात्रा करते आ रहे थे वैसा अन्धकार अब नहीं रहा था। अब बहुत दूरतक, चाहे साफ साफ भले ही न हो, दिखाई देने लगा था। मैंने देखा, जंगली झाऊ और मकई-जुआरवाला टीला दाहिनी ओर छोडकर हमारी नाव सीधी चली जा रही है।

## ३

“बहुत ज़ोरसे नौद आ रही है इन्द्र, अब घर न लौट चलो भाई।” इन्द्रने कुछ हँसकर ठीक स्त्री-मुलभ स्नेहार्द्र कोमल स्वरमें कहा, “ नौद आनेकी तो बात ही है भइया, पर क्या किया जाय, श्रीकान्त ! आज तो कुछ देर होगी ही,—अभी बहुत-सा काम पड़ा है। अच्छा एक काम करो न, इसी जगह थोड़ा-सा लेट लो। ”

दुबारा अनुरोधकी ज़रूरत ही नहीं हुई, मैं गुडमुड होकर उसी स्थानपर लेट गया। परन्तु नौद नहीं आई। अधमुँदी आँखोंसे मैं चुपचाप आकाशमे बादलो और चाँदकी आँख-मिचौनी देखने लगा। यह डूबा, वह निकला, फिर डूबा, फिर हँसा। और कानमें आने लगी जल-प्रवाहकी वही सतत हुङ्कार। यह एक ही बात प्रायः मेरे मनमें आया करती है कि, मैं उस दिन, इस प्रकार सब-कुछ भूल-भालकर बादलो और चन्द्रमाके बीच कैसे डूब गया था ? तन्मय होकर चाँद देखनेकी अवस्था तो मेरी उस समय थी नहीं। किन्तु बड़े-बड़े लोग पृथिवीके अनेक व्यापार देख-सुनकर कहा करते हैं कि यह बाहरी चाँद कुछ नहीं

हैं, बादल भी कुछ नहीं हैं—सब माया है, मिथ्या है, दर असल कुछ चीज़ है तो यह अपना मन है। वह जब जिसे जो दिखाता है बिभोर होकर तब वह केवल वही देखता है। मेरी भी यही दशा थी। इतने प्रकारकी भयङ्कर घटनाओंमेंसे, इस प्रकार सही-सलामत बाहर निकल आनेके उपरान्त, मेरा निर्जीव मन, उस समय, शायद, ऐसी ही किसी एक शान्त तसवीरके भीतर विश्राम लेना चाहता था।

इतनेमें घण्टे-दो-घण्टे निकल गये, जिनकी मुझे खबर ही नहीं हुई। एकाएक मुझे मालूम हुआ कि मानों चाँद बादलोंके बीच एक लम्बी डुबकी लगा गया है, और एकाएक दाहिनी ओरसे बाईं ओर जाकर अपना मुँह बाहर निकाल रहा है। गर्दन कुछ ऊपर उठाकर देखा, नौका अब उसपार जानेकी तैयारीमें है। प्रश्न करने अथवा कुछ कहनेका उद्यम भी, शायद, उस समय मुझमें शेष नहीं था, इसलिए मैं फिर उसी तरह लेट गया। फिर वही आँखें भरकर चन्द्रमाका खेल और कान-भरकर प्रवाहका गर्जन-तर्जन देखने-सुनने लगा। शायद इस तरह एक घण्टा और भी बीत गया।

खस्-खस्-रेतके टीलेपर नौका टकराई। व्यस्त होकर मैं उठकर बैठ गया। अरे, यह तो इसपार आ पहुँचे! परंतु यह जगह कौन-सी है? घर मेरा कितनी दूर है? रेतके ढेरके सिवाय और तो कहीं कुछ दिख ही नहीं रहा है?—सवाल करनेके पहले ही एकाएक कहीं पास ही कुत्तोंका भोंकना सुनकर मैं और भी सीधा होकर बैठ गया। निश्चय ही कहीं पासमें बस्ती है।

इन्द्र बोला, “तनिक ठहर, श्रीकान्त, मैं थोड़ा सा घूमकर अभी लौट आऊँगा—तुझे अब कुछ डर नहीं है। इस कगारेके उसपार ही धीवरोंके मकान है।”

साहसकी इतनी परीक्षाएँ पास करनेके उपरान्त अन्तमें यहाँ आकर फेल हो जानेकी मेरी बिलकुल इच्छा नहीं थी, और खास करके मनुष्यकी इस किशोरावस्थामें, जिसके समान महा-विस्मयकारी वस्तु संसारमें शायद और कोई नहीं है। एक तो वैसे ही मनुष्यकी मानसिक गति-विधि बहुत ही दुर्ज्ञेय होती है, और फिर किशोर-किशोरीके मनका भाव तो, मैं समझता हूँ, बिलकुल ही अज्ञेय है। इसीलिए शायद, श्रीवृन्दावनके उन किशोर-किशोरीकी किशोर-लीला चिरकालसे ऐसे रहस्यसे आच्छादित चली आती है। बुद्धिके द्वारा ग्राह्य न कर सकनेके कारण



किसीने उसे कहा 'अच्छी', किसीने कहा 'बुरी,'—किसीने 'नीति' की दुहाई दी, किसीने 'रुचि' की और किसीने कोई भी बात न सुनी,—वे तर्क-वितर्कके समस्त घेरोका उल्लघनकर बाहर हो गये। जो बाहर हो गये वे झूब गये, पागल हो गये, और नाचकर, रोकर, गाकर,—सब एकाकार करके ससारको उन्होने मानो एक पागल-खाना बना छोड़ा। तब, जिन लोगोंने 'बुरी' कह कर गालियाँ दी थीं उन्होने भी कहा कि,—और चाहे जो हो किन्तु, ऐसा रसका झरना और कहीं नहीं है। जिनकी 'रुचि' के साथ इस लीलाका मेल नहीं मिलता था उन्होंने भी स्वीकार किया,—इस पागलोंके दलको छोड़कर हमने ऐसा गान और कहीं नहीं सुना। किन्तु यह घटना जिस आश्रयको लेकर घटित हुई, जो सदा पुरातन है, और साथ चिर-नूतन भी—वृन्दावनके वन-वनमे होनेवाली किशोर-किशोरीकी उस सुन्दरतम लीलाका अन्त किसने कब खोज पाया है, जिसके निकट वेदात तुच्छ है और मुक्ति-फल जिसकी तुलनामें वारीशके आगे वारि-बिन्दुके समान क्षुद्र है ? न किसीने पाया है और न कोई कभी खोज पायगा। इसीलिए तो मैंने कहा कि उस समय मेरी वही किशोर अवस्था थी। भले ही उस समय यौवनका तेज और दृढता न आई हो, परन्तु फिर भी उसका दम्भ तो आकर हाजिर हो गया था। आत्म-सम्मानकी आकाक्षा तो हृदयमे सजग हो गई थी। उस समय अपने सखाके निकट अपनेको कौन डरपोक सिद्ध करना चाहेगा ? इसलिए मैंने उसी दम जवाब दिया, "मैं डरूंगा क्यों ? अच्छा तो है, जाओ।" इन्द्रने और दूसरा वाक्य खर्च न किया और वह जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ अदृश्य हो गया।

ऊपर सिरपर अंधकार-प्रकाशकी वह आँख-मिचौनी हो रही थी, पीछे बहुत दूर तक अविश्रान्त सतत गर्जन-तर्जन हो रहा था और सामने वही रेतीका किनारा था। यह कौन स्थान है, सोच ही रहा था कि इन्द्र दौड़ता हुआ आकर खड़ा हो गया। बोला, "श्रीकान्त, तुझसे एक बात कहनेको लौट आया हूँ। यदि कोई मच्छ मॉंगने आवे तो खबरदार, देना नहीं,—कहे देता हूँ, खबरदार, हरगिज़ न देना। ठीक मेरे समान रूप बनाकर यदि कोई आवे, तो भी मत देना।—कहना,—तेरे मुँहपर धूल, इच्छा हो तो तू खुद ही उठा ले जा, खबरदार, हाथसे किसीको उठाकर न देना, भले ही मैं ही क्यों न होऊँ,—खबरदार।"

"क्यों भाई ?"

“लौटनेपर बताऊँगा,—किन्तु खबरदार—” यह कहते कहते वह जैसे आया था वैसे ही दौड़ता हुआ चला गया ।

इस दफे नखसे सिखतक मेरे सब रोगटे खड़े हो गये । जान पड़ा कि मानो शरीरकी प्रत्येक शिरा उपशिरामेसे बरफका गला हुआ पानी वह चला है । मैं बिल्कुल बचा तो था नहीं, जो उसके इशारेका मतलब बिल्कुल न भौंप सकता । मेरे जीवनमें ऐसी अनेक घटनाएँ घट चुकी हैं जिनकी तुलनामे यह घटना समुद्रके आगे गौके खुरके गढेंमें भरे हुए पानीके समान थी । किन्तु फिर भी इस रात्रिकी यात्रामें जो भय मैंने अनुभव किया, उसे भाषामे व्यक्त नहीं किया जा सकता । मालूम होता था कि भयके मोर होश-हवास गुम करनेकी अन्तिम मीढ़ीपर आकर ही मैंने पैर रख दिया है । प्रतिक्षण जान पड़ता था कि कगारके उस तरफसे मानो कोई झॉक झॉककर देख रहा है । जैसे ही मैं तिरछी दृष्टिसे देखता हूँ, वैसे ही मानो वह सिर नीचा करके छिप जाता है ।

समय कटता नहीं था । मानो इन्द्र न जाने कितने युग हुए चला गया है,—और लौट नहीं रहा है ।

ऐसा मालूम हुआ मानों किसी मनुष्यकी आवाज सुनी हो । जनेऊको अँगूठेमें सैकड़ों बार लपेटकर, मुख नीचा करके, कान खड़े करके सुनने लगा । गलेकी आवाज क्रमशः अधिक साफ होने लगी, अच्छी तरह मालूम पड़ने लगा कि दो-तीन आदमी बातचीत करते हुए इसी तरफ आ रहे हैं । उनमेंसे एक तो इन्द्र है और बाकी दो हिन्दुस्तानी । वे हों चाहे जो, किन्तु उनके मुखकी ओर देखनेके पूर्व मैंने यह अच्छी तरह देख लिया कि चोंदनीमें उनकी छाया जमीनपर पड़ी है या नहीं ! क्योंकि इस अविस्वादी सत्यको मैं छुटपनसे ही अच्छी तरह जानता था कि, ‘उन लोगों’ (भूतों) की छाया नहीं पड़ती ।’

आः, यह तो छाया है ! न सही साफ, फिर भी छाया है ! ससारमें उस दिन किसी भी आदमीने, और किसी भी वस्तुको देखकर, क्या मेरे जैसी तृप्ति पाई होगी ! पाई हो या न पाई हो, परन्तु यह बात तो मैं बाजी लगाकर कह सकता हूँ कि दृष्टिका चरम आनन्द जिसे कहते हैं, वह यही था । जो लोग आये उन्होंने असाधारण तेजीसे उन बड़े बड़े मच्छोंको नावमेंसे उठाकर एक जाल जैसे वस्त्रके टुकड़ेमें बाँध लिया, और उसके बदलेमे उन्होंने इन्द्रकी मुट्टीमें जो कुछ थमा दिया उसने ‘खन्’ से एक मृदु-मधुर शब्द करके अपना परिचय भी मेरे आगे

पूर्णतः गुप्त न रहने दिया ।

इन्द्रने नाव खोल दी परन्तु बहावमे नहीं छोड़ी । धारके पास पास, प्रवाहके प्रतिकूल, लग्गीसे ठेलते हुए वह धीरे धीरे अग्रसर होने लगा ।

मैंने कोई बात नहीं कही, क्योंकि मेरा मन उस समय उसके विरुद्ध घृणाके भावसे और एक प्रकारके क्षोभसे लबालब भर गया था । किन्तु यह क्या ! अभी अभी ही तो उसे मैं चन्द्रमाके प्रकाशमें छाया डालते हुए, लौटते देखकर अधीर आनन्दसे दौडकर छातीसे लगा लेनेके लिए उन्मुख हो उठा था !

हॉ, सो मनुष्यका स्वभाव ही ऐसा है । तनिक-सा दोष देखते ही, कुछ क्षण पूर्वकी सभी बातें भूलते उसे कितनी-सी देर लगती है ? राम ! राम ! उसने इस तरह रुपये प्राप्त किये ! अब तक मछली चुरानेका यह व्यापार, मेरे मनमें, बहुत स्पष्ट तौरसे, चोरीके रूपमें गायद स्थान न पा सका था । क्योंकि लडकपनसे ही, रुपये-पैसेकी चोरी ही मानो वास्तविक चोरी है—और सब, अनीति भले ही हो किन्तु, न जाने क्यों ठीक ठीक चोरी नहीं है,—इस तरहकी अद्भुत धारणा प्रायः सभी लडकोकी होती है । मेरी भी यही धारणा थी । ऐसा न होता तो इस ‘खन्’ शब्दके कानमें जाते ही इतने समयका इतना वीरत्व, इतना पौरुष, सब कुछ क्षण-भरमें इस प्रकार शुष्क तृणके समान न झड जाता । यदि उन मच्छोको गगामे फेंक दिया जाता,—अथवा और कुछ किया जाता,—केवल रुपयोंके साथ उनका ससर्ग घटित न होता, फिर भी हमारी उस मत्स्य-संग्रह-यात्राको कोई ‘चोरी’ कहकर पुकारता, तो शायद गुस्सेमें आकर मैं उसका सिर फोड देता और समझता कि उसने वास्तवमें जो सजा मिलनी चाहिए वही पाई है ।—किंतु राम ! राम ! यह क्या ! यह काम तो जेल-खानेके कैदी किया करते हैं !

इन्द्रने बात शुरू की,—पूछा, “तुझे जरा भी डर न लगा, क्यों रे श्रीकान्त ?”

मैंने संक्षेपमें जवाब दिया “नहीं ।”

इन्द्र बोला, “किन्तु तेरे सिवाय वहाँ और कोई बैठा न रह सकता, यह जानता है तू ? तुझे मैं खूब प्यार करता हूँ—मेरा ऐसा दोस्त और कोई नहीं है । मैं अब जब आऊँगा, सिर्फ तुझे ही लाऊँगा । क्यों ?”

मैंने जवाब नहीं दिया । किन्तु इसी समय उसके मुँहपर तुरतके मेघमुक्त चन्द्रमाका जो प्रकाश पड़ा, उससे उसके मुखपर जो कुछ दिखाई दिया, उससे एकाएक मैं अपना इतनी देरका सब क्रोध-क्षोभ भूल गया । मैंने पूछा, “अच्छा

इन्द्र, तुमने कभी 'उन सब\*' को देखा है ?”

“किन सबको ?”

“वही जो मच्छ माँगने आते हैं ?”

“नहीं भाई, देखा तो नहीं है, लेकिन लोग जो कहते हैं वह सुना है।”\*

“अच्छा तुम यहाँ अकेले आ सकते हो ?”

इन्द्र हँसा, बोला, “मैं तो अकेला ही आया करता हूँ।”

“डर नहीं लगता ?”

“नहीं, रामका नाम लेता हूँ, फिर वे किसी तरह नहीं आ सकते।”

कुछ देर रुककर फिर कहना शुरू किया, “राम-नाम क्या कोई साधारण चीज़ है रे ? यदि तू रामका नाम लेते लेते साँपके मुँहमें भी चला जाय, तो तेरा कुछ न बिगड़ेगा। देखेगा, कि मारे डरके सभी रास्ता छोड़कर भाग गये हैं। किन्तु डरनेसे काम नहीं चलता। तब तो वे जान जाते हैं कि यह सिर्फ चालाकी कर रहा है,—वे सब अन्तर्यामी जो हैं।”

रेतीका किनारा खत्म होते ही कंकड़ोंका किनारा शुरू हो गया। उसपारकी अपेक्षा इस पार पानीका बहाव बहुत कम था। बल्कि यहाँ तो मालूम हुआ कि मानों बहाव उलटी तरफ जा रहा है। इन्द्रने लगी उठाकर कर्ण (पतवार) हाथमें लेते हुए कहा, “वह जो सामने वन सरीखा दीख पढता है, उसीमेंसे होकर हमें जाना है। यहाँ जरा मैं उतरूँगा। जाऊँगा और आ जाऊँगा। देर न लगेगी। क्यों उतर जाऊँ ?”

इच्छा न रहते भी मैंने कहा, ‘अच्छा’ क्योंकि ‘नहीं’ कहनेका रास्ता तो मैं एक प्रकारसे आप ही बन्द कर चुका था। और अब इन्द्र भी मेरी निर्भीकताके सम्बन्धमें शायद निश्चिन्त हो गया था। परतु बात मुझे अच्छी न लगी। यहाँसे वह जगह ऐसी जगल सरीखी अँधेरी दीख पढती थी कि, अभी अभी राम-नामका असाधारण माहात्म्य श्रवण करके भी, उस अधकारमें, प्राचीन वट-वृक्षके नीचे, डोंगीके ऊपर अकेले बैठे रहकर, इतनी रातको राम-नामका शक्ति-सामर्थ्य जाँच करनेकी मेरी जरा भी प्रवृत्ति नहीं हुई और शरीरमें कँपकँपी उठने लगी। यह ठीक है कि मछलियाँ और नहीं थीं, इसलिए मछली लेनेवालोंका शुभागमन न

\* ‘उन सब’ से तात्पर्य भूतोंका है। वगालमें प्रवाद है कि अकेलेमें भूत मछली माँगने आते हैं।

हो सकेगा, किन्तु उन सबका लोभ मछलियोंके ऊपर ही है, यह भी कौन कह सकता है ? मनुष्यकी गर्दन मरोड़कर गुनगुना रक्त पीने और मास खानेका इतिहास भी तो सुना गया है ।

बहावकी अनुकूलता और डॉडकी ताडनासे डोगी सर्राटेसे आगे बढ़ने लगी । और भी कुछ दूर जाते ही, दाहिनी बाजूका गर्दनतक डूबा हुआ, जगली झाऊ और कॉसका वन माथा उठाकर हम दोनो असम-साहसी मानव-शिशुओंकी तरफ विस्मयसे स्तब्ध हो देखता रहा और उसमेंसे कोई कोई झाड़ तो सिर हिलाकर मानो अपना निषेध जताने लगा । बाईं ओर भी उन्हींके आत्मीय परिजन खूब ऊँचे ककरीले किनारोपर फैले हुए थे, वे भी उसी भावसे देखते रहे और उसी तरह मना करने लगे । मैं अगर अकेला होता तो निश्चयसे उनका यह संकेत अमान्य नहीं करता । परंतु मेरा कर्णधार जो था, उसके निकट ऐसा मालूम हुआ कि मानो एक राम-नामके जोरसे उनके समस्त आवेदन निवेदन एक बार ही व्यर्थ हो गये । उसने किसी तरफ भौहतेक न फिराई । दाहिनी ओरके टीलेके अधिक विस्तारके कारण यह जगह एक छोटी-मोटी झीलके समान हो गई थी,—सिर्फ उत्तरकी ओरका मुँह खुला हुआ था । मैंने पूछा, “अच्छा, नावको बाँधकर ऊपर जानेका घाट तो है नहीं, तुम जाओगे किस तरह ?”

इन्द्र बोला, “यह जो बड़का वृक्ष है, उसके पासमे ही एक छोटा सा घाट है ।”

कुछ देरसे न जाने कैसी दुर्गन्ध बीच बीचमे हवाके साथ नाकतक आ रही थी । एकाएक एक हवाके झोकेके साथ वह दुर्गन्ध इतनी निकट होकर नाकमें लगी कि असह्य हो गई । जितना ही आगे बढ़ते थे, उतनी ही वह बढ़ती थी । नाकपर कपड़ा दबाते हुए मैं बोला,—“निश्चयसे कुछ सब गया है, इन्द्र ।”

इन्द्र बोला, “मुर्दे सब गये हैं । आजकल भयानक कालेरा जो हो रहा है । सभी तो लाशोको जला पाते नहीं, मुँहपर जरा अग्नि छुआकर छोड़कर चले जाते हैं । सियार और कुत्ते उन्हें खाते हैं,—और वे सबती हैं । उन्हींकी तो यह इतनी गंध है ।”

“लाशोको किस जगह फेंक जाते हैं, भइया ?”

“वहाँसे लेकर यहाँतक—सब ही तो श्मशान है । जहाँ चाहे फेंक देते हैं और इस बड़के नीचेके घाटपर स्नान करके घर चले जाते हैं—अरे दूर ! डर

क्या है रे ! वे सियांर-सियार आपसमे लड़ रहे हैं ।—अच्छा, आ, आ, मेरे पास आकर बैठ । ”

मेरे गलेसे आवाज न निकलती थी,—किसी तरह मैं घिसटकर उसकी गोदके निकट जाकर बैठ गया । पल-भरके लिए मुझे स्पर्श करके और हँसकर वह बोला, “ डर क्या है श्रीकान्त ! कितनी ही दफे रातको मैं इस रास्ते आया-गया हूँ । तीन दफे रामका नाम लेनेसे फिर किसकी ताकत है जो पासमें फटके ? ”

उसे स्पर्श करके मानो मेरी देहमे जरा चेतना आई । मैंने अस्फुट स्वरमें कहा, “ नहीं भाई, तुम्हारे दोनो पैर पडता हूँ, यहाँपर कहीं मत उतरो—सीधे ही चले चलो । ”

उसने फिर मेरे कंधेपर हाथ रखकर कहा, “ नहीं श्रीकान्त, एक दफे जाना ही पड़ेगा । यह रुपये दिये बिना काम न चलेगा,—वे बैठे राह देख रहे होंगे,—मैं तीन दिनसे नहीं आ पाया । ”

“ रुपये कल न दे देना, भाई । ”

‘ नहीं भाई, ऐसी बात न कर । मेरे साथ तू भी चल,—किन्तु किसीसे यह बात कहना मत । ’

मैं धीरेसे ‘ ना ’ कहकर उसे उसी तरह स्पर्श किये हुए, पत्थरकी नाई बैठा रहा । गला सूखकर काठ हो गया था । किन्तु हाथ बढ़ाकर पानी पी लूँ या हिलने-डोलनेकी कोई चेष्टा करूँ, यह शक्ति ही नहीं रही थी ।

पेड़ोंकी छायाके बीचमें आ पड़नेसे पास ही वह घाट दीख पड़ा । जहाँ हमें नीचे उतरना था वह स्थान, ऊपर पेड़ वगैरह न होनेसे, म्लान ज्योत्स्नाके प्रकाशमे भी खूब प्रकाशमान् हो रहा था—यह देखकर इतने दुखमे भी मुझे आराम मिला । घाटके ककड़ोंमें जाकर डोंगी धक्का न खा जाय, इसलिए इन्द्र पहलेसे ही उतरनेके लिए प्रस्तुत होकर डोंगीके मुँहके पास तक खिसक आया था । किनारे लगते न लगते वह उसपरसे फौद पडा, पर फौदते ही भयभीत स्वरसे ‘ उफू ’ कर उठा । मैं उसके पीछे ही था, इसलिए दोनोंकी नजर उस वस्तुपर प्रायः एक ही साथ पड़ी । उस समय वह नीचे था और मैं नौकाके ऊपर ।

शायद मेरे जीवनमे ‘ अकाल मृत्यु ’ कभी उतने करुण रूपमें नजर नहीं आई थी । वह कितनी बड़ी व्यथाका कारण होती है, यह बात, उस तरह न देखी जाय तो, शायद, और तरहसे जानी ही नहीं जा सकती । गभीर रात्रिमें चारों

दिशाएँ निबिड़ स्तब्धतासे परिपूर्ण थीं। सिर्फ बीच बीचमें झाड़-झखाड़ोंमेंसे कहीं झमझानचारी सियारोका क्षुधार्त कलह-चीत्कार, कहीं वृक्षोपर सेते हुए अर्धसुप्त चूहत्काय पक्षियोंके पंखोंकी फड़फड़ाहट और बहुत दूरसे आया हुआ तीव्र जल-प्रवाहका 'हू-हू' आर्त्तनाद सुन पडता था। हम दोनों, इन सबके बीच, निर्वाक् निस्तब्ध होकर उस महाकरुण दृश्यकी ओर देखते रहे। एक छह सात वर्षका गौरवर्ण हृष्टपुष्ट बालक पडा हुआ दिखाई दिया जिसका सर्वाङ्ग पानीमे डूबा हुआ था और सिर्फ सिर धाटके ऊपर था। शायद शृगाल हालमे ही उसे पानीसे बाहर निकाल रहे थे और, केवल हमारे आकस्मिक आगमनके कारण, कहीं पास ही खडे हुए हमारे जानेकी राह देख रहे थे। बहुत करके उसे मरे हुए तीन चार घण्टेसे अधिक नहीं हुए थे। मानो वह बेचारा विसूचिका ( हैजा ) की दारुण यातना भोगकर माता गगाकी गोदमे-ही-सो गया था, और माँ मानो बड़ी सावधानीसे उसकी सुकुमार सुन्दर देहको अभी अभी अपनी गोदसे उतारकर बिछौनेपर सुला रही थीं। इस तरह कुछ जल और कुछ स्थलपर पडी हुई उस सोते हुए शिशुकी देहपर हमारी आँखें जा पडीं।

मुँह ऊपर उठाया तो देखा कि इन्द्रकी दोनों आँखोंसे अश्रुके बड़े बड़े बिन्दु झर रहे हैं। वह बोला, "तू जरा हटकर खड़ा हो जा श्रीकान्त, मैं इस बेचारेको, नौकामे रखकर, टीलेके उस झाऊ-वनके भीतर रखे आता हूँ।"

यह सत्य है कि उसकी आँखोंमे आँसू देखते ही भेरी आँखोंमें भी आँसू आ गये, किन्तु इस छूने-ऊनेके प्रस्तावसे मैं एक बारगी सकुचित हो उठा। इस बातको मैं अस्वीकार नहीं करता कि दूसरेके दुःखमें दुःखी होकर आँखोंसे आँसू बहाना सहज नहीं है, किन्तु, इसी कारण, उस दुःखके बीच अपने दोनो हाथ बढाकर जुट जाना—यह बहुत अधिक कठिन काम है। उस समय छोटी बड़ी न जाने कितनी जगहोंसे खिंचाव पडता है। अब्बल तो मैं इस पृथ्वीके शिरोभूत हिन्दू-धरमे वशिष्ठ इत्यादिके पवित्र पूज्य रक्तका वंशधर होकर जनमा, इसलिए, जन्मगत संस्कारोंके वश, मैंने सीख रक्खा था कि मृतदेहको स्पर्श करना भी एक भीषण कठिन व्यापार है। दूसरे इसमे न जाने कितने शास्त्रीय विधि-निषेधोंकी बाधाएँ हैं और कितने तरह तरहके कर्म-काण्डोंका घटाटोप है। इसके सिवाय यह किस रोगसे मरा है, किसका लड़का है, किस जातिका है—आदि कुछ न जानते हुए, और मरनेके बाद यह ठीक तौरसे प्रायश्चित्त करके घरसे बाहर हुआ था या

नहीं, इसका पता लगाये बिना ही इसे स्पर्श किस तरह किया जा सकता है ?

कुण्ठित होकर जैसे ही मैंने पूछा, “ किस जातिका मुर्दा है और क्या तुम इसे छुओगे ? ” कि इन्द्रने आगे बढ़कर एक हाथ उसकी गर्दनके नीचे और दूसरा हाथ घुटनोंके नीचे देकर उसे सूखे तिनकोंके ससान उठा लिया और कहा, “नहीं तो बेचारेको स्यार नौच नौचकर न खा जायेंगे ? अहा, इसके मुँहसे तो अभी तक ओपधियोंकी गन्ध आ रही है रे । ” यह कहते कहते उसने नौकाके उसी तख्तेपर, जिसपर कि पहले मैं सोया था, उसे सुला दिया और नावको ठेलकर स्वयं भी चढ़ गया । बोला, “ मुर्देकी क्या जात होती है रे ? ”

मैंने तर्क किया, “ क्यों नहीं होती ? ”

इन्द्र बोला, “ अरे यह तो मुर्दा है ! मरे हुएकी जात क्या ? यह तो वैसा ही है जैसे हमारी यह डोंगी—इसकी भला क्या जात है ? आम या जामुन, जिस किसी भी काठकी यह बनी हो,—अब तो इसे ‘ डोंगी ’ छोड़, कोई भी नहीं कहेगा कि यह आम है या जामुन ?—समझा कि नहीं ? यह भी उसी तरह है । ”

अब मालूम होता है कि यह दृष्टान्त निरे बच्चोंका-सा था,—किन्तु अन्तरमे यह भी तो अस्वीकार करते नहीं बनता कि यहीं कहीं, इसीके बीच, एक अति तीक्ष्ण सत्य अपने आपको छुपाये हुए बैठा है । बीच बीचमें ऐसी ही खरी बातें वह कह जाया करता था । इसीलिए, मैंने अनेक दफे सोचा है कि, इस उम्रमें, किसीके पास कुछ भी शिक्षा पाये वगैर, बल्कि प्रचलित शिक्षा-संस्कारोंको अतिक्रम करके,—इन सब तत्त्वोंको उसने पाया कहाँ ? किन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि उम्र बढ़नेके साथ साथ मानों मैंने इसका उत्तर भी पा लिया है । कपट तो मानों इन्द्रमें था ही नहीं । उद्देश्यको गुप्त रखकर तो वह कोई काम करना जानता ही न था । इसीलिए मैं समझता हूँ, उसके हृदयका वह व्यक्तिगत विच्छिन्न सत्य किसी अज्ञात नियमके वशवर्ती होकर, उस विश्वव्यापी अविच्छिन्न निखिल सत्यका साक्षात् करके, अनायास ही, बहुत ही सहजमे, उसे अपने आपमे आकर्षित कर आत्मसात् कर सकता था । उसकी शुद्ध सरल बुद्धि, पक्के उस्तादकी उम्मेदवारी किये वगैर ही, समस्त व्यापारको ठीक ठीक अच्छी तरह जान लेती थी । वास्तविक, अकपट सहज बुद्धि ही तो संसारमें परम और चरम बुद्धि है । इसके ऊपर और कुछ भी नहीं है । अच्छी तरहसे देखनेपर ‘ मिथ्या ’ नामकी किसी भी वस्तुका अस्तित्व इस विश्व ब्रह्माण्डमें नजर नहीं पड़ता । ‘ मिथ्या ’ तो



सिर्फ मनुष्यके माननेका और मनानेका फलमात्र है। सोनेको पीतल मानना मिथ्या है और मनाना भी,—यह मैं जानता हूँ। परतु इससे सोनेका और पीतलका क्या आता जाता है ? तुम्हारी जो इच्छा हो सो उसे मानो, वह तो कुछ है, सो ही रहेगा। सोना समझकर उसे सन्दूकमें बन्द करके रखनेसे उसका वास्तुविक मूल्यमें वृद्धि नहीं होती, और पीतल कहकर बाहर फेंक देनेसे उसका मूल्य नहीं घटता। उस दिन भी वह पीतल था और आज भी पीतल है। तुम्हारे 'मिथ्या' के लिए तुम्हें छोड़कर न और कोई उत्तरदायी है, और न उसपर कोई भ्रूक्षेप ही करता है। इस विश्व-ब्रह्माण्डका समस्त ही परिपूर्ण सत्य है। 'मिथ्या' का अस्तित्व यदि कहीं है तो वह मनुष्यके मनको छोड़कर और कहीं नहीं है। इसलिए इन्द्रने इस असत्यको, अपने अन्तरमें जाने या अनजानेमें, किसी दिन जब स्थान नहीं दिया तब यदि उसकी विशुद्ध बुद्धि मगल और सत्यको ही प्राप्त करती है, तो इसमें विचित्र ही क्या हुआ ?

किन्तु यह बात उसके लिए विचित्र न होनेपर भी, मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि, किसीके लिए भी विचित्र नहीं है। ठीक इसी बहाने, मैंने अपने जीवनमें ही जो इसका प्रमाण पाया है, उसे कह देनेका लोभ मैं यहाँ संवरण नहीं कर सकता।

उक्त घटनाके १०-१२ वर्ष बाद एकाएक एक दिन शामके वक्त यह सवाद मिला कि एक वृद्धा ब्राह्मणी उस मुहल्लेमें सुबहसे मरी पडी है,—किसी तरह भी उसके क्रिया-कर्मके लिए लोग नहीं जुटते। न जुटनेका हेतु यह कि वह काशी-यात्रासे लौटते समय रास्तेमें रोग-ग्रस्त हो गई, और उस शहरमें, रेलपरसे उतरकर, सामान्य परिचयके सहारे जिनके घर आकर उसने आश्रय ग्रहण किया, और दो रात रहकर आज सुबह प्राण-त्याग किया, वे महाशय विलायतसे लौटे हुए थे और बिरादरीसे अलग थे। वृद्धाका यही अपराध था कि उसे नितान्त निरुपाय अवस्थामें इस 'बिरादरीसे खारिज' घरमें मरना पडा।

खैर, अग्नि-संस्कार करके दूसरे दिन सुबह वापस आकर मैंने देखा कि हरएक घरके क्निवाड बन्द हो गये हैं। सुननेमें आया कि गत रात्रिको, ग्यारह बजे तक, हरीकेन लालटेन हाथमें लिये हुए, पञ्च लोगोंने घर-घर फिर कर स्थिर कर दिया है कि इस अत्यन्त शास्त्र-विरुद्ध अपकर्म्म (दाह) करनेके कारण इन कुलाङ्गारोको सिर मुडाना होगा, अपराध स्वीकार करना होगा और एक ऐसी वस्तु (गोबर) खानी पड़ेगी जो कि सुपवित्र होते हुए भी खाय नहीं है। उन्होने घर घर जाकर

शब्दोंमें कह दिया कि इसमें उनका कोई भी हाथ नहीं है, क्योंकि, अपने जी, वे समाजमें किसी भी तरह यह अशास्त्रीय काम नहीं होने दे सकते। वे लोग, और कोई उपाय न रहनेपर, डाक्टर साहबके शरणमें गये। वे ही उस शहरमें सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक थे और बिना दक्षिणाके ही बगालियोंकी चिकित्सा करते थे। हमारी कहानी सुनकर डाक्टर महाशय क्रोधसे सुलग उठे और बोले, “जो लोग इस तरह लोगोंको सताते हैं, उनके घरोंमें यदि कोई भेरी आँखोंके सामने बिना चिकित्साके भी मरता होगा तो मैं उस ओर आँख उठाकर नहीं देखूँगा।” न मालूम, किसने यह बात पचोके कानोतक पहुँचा दी। बस, शाम होते न होते मैंने सुना कि सिर मुडानेकी ज़रूरत नहीं है, सिर्फ अपराध स्वीकार करके उस सुपवित्र पदार्थको खा लेने मात्रसे काम चल जायगा। हमारे स्वीकार न करनेपर दूसरे दिन सुबह सुना गया, अपराध स्वीकार कर लेनेसे ही काम हो जायगा,— वह पदार्थ न खाना हो तो न सही। इसे भी न स्वीकार करनेपर सुना गया कि, चूँकि यह हम लोगोंका प्रथम अपराध है इसलिए, उन्होंने उसे यों ही माफ कर दिया है,—प्रायश्चित्तकी कोई ज़रूरत नहीं है। किन्तु, डाक्टर साहब बोले, “ठीक है कि प्रायश्चित्तकी कोई ज़रूरत नहीं परन्तु दो दिनतक इन्हें जो क्लेश दिया गया है, उसके लिए यदि प्रत्येक आदमी आकर क्षमा प्रार्थना न करेगा, तो फिर, जैसा कि वे पहले कह चुके हैं, वैसा ही करेंगे, अर्थात् किसीके भी घर न जायेंगे।” इसके बाद, उसी दिन संध्याके समयसे डाक्टर साहबके घर एक एक करके सभी वृद्ध पचोका शुभागमन होना शुरू हो गया। आशीर्वाद दे देकर उन्होंने क्या क्या कहा उसे तो अवश्य ही मैं नहीं सुन पाया, किन्तु दूसरे दिन देखा कि डाक्टर साहबका क्रोध ठंडा हो गया है और हम लोगोंको भी प्रायश्चित्त करनेकी ज़रूरत नहीं रही है।

जाने दो, क्या कह रहा था और क्या बात बीचमें आ पड़ी। किन्तु, वह चाहे जो हो, मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि जो लोग जानते हैं वे, इस नाम-धाम-हीन विवरणसे, पूरा सत्य प्राप्त कर लेंगे। मेरे कहनेका मूल विषय यह है कि इन्द्रने इस उम्रमें अपने अतरके मध्यमें जिस सत्यका साक्षात् कर लिया था, इतने बड़े बड़े पंच सरदार, इतनी बड़ी उम्र तक भी, उसका कोई तत्त्व न पा सके थे, और डाक्टर साहब यदि उस दिन इस प्रकार उनका शास्त्र-ज्ञानकी चिकित्सा न कर देते तो, कभी उनकी यह व्याधि अच्छी होती या नहीं, सो जगदीश्वर ही जाने।

टीलेपर आकर, आधे डूबे हुए जगली झाऊके अधकारमे, जलके ऊपर उस अपरिचित शिशुकी देहको इन्द्रने, जब अपूर्व ममताके साथ, रख दिया तब रात्रि अधिक नहीं थी। कुछ देर तक वह उस शवकी ओर माथा झुकाए रहा और अन्तमे जब उसने मुँह उठाकर देखा, तब धुँधली चाँदनीमे उसका मुख जितना कुछ दिखाई दिया वह मलिन था और उसके सूखे मुँहपर ठीक वैसा ही भाव प्रकट हो रहा था जैसे कि कोई कान उठाकर किसीकी राह देख रहा हो।

मैं बोला, “ इन्द्र, अब चलो। ”

इन्द्र अन्यमनस्क भावसे बोला, “ कहाँ ? ”

“ अभी जहाँ चलनेके लिए तुमने कहा था। ”

“ रहने दो, आज नहीं जाऊँगा। ”

मैं खुश होकर होकर बोला, “ ठीक, यही अच्छा है भाई,—चलो, घर चलें। ”

प्रत्युत्तरमें इन्द्र मेरे मुँहकी ओर देखकर बोला, “ हॉ रे श्रीकान्त, मरनेपर मनुष्यका क्या होता है, जानता है ? ”

मैंने तुरन्त ही जवाब दिया, “ नहीं, भाई, नहीं जानता, अब तो तुम घर चलो।—वे सब स्वर्ग चले जाते हैं, भइया। तुम्हारे पैरों पडता हूँ, तुम मुझे मेरे घर पहुँचा आओ। ”

इन्द्रने मानो सुना ही नहीं, और कहा, “सभी लोग तो स्वर्ग जा नहीं सकते। इसके सिवाय, कुछ समय तक तो सभीको यहाँ रहना पडता है। देखो, मैंने जब उसको जलके ऊपर सुला दिया था, तब उसने धीरेसे साफ साफ कहा था, ‘ भइया ’। ” मैं काँपते हुए स्वरसे रोते हुए बोल उठा, “ क्यो मुझे डराते हो, भाई, मैं बेहोश हो जाऊँगा। ” इन्द्रने न तो कुछ कहा और न अभय दिया।—धीरेसे डोंडको हाथमे लेकर उसने नावको झाऊ-बनर्भसे बाहर कर लिया और फिर सीधा चलाने लगा। मिनट-दो-मिनट चुप रहकर उसने गभीर मृदु स्वरसे कहा, “श्रीकान्त, मन ही मन ‘राम’का नाम ले, ‘वह’ नौका छोडकर नहीं गया है,—हमारे पीछे ही बैठा है ! ”

उसके बाद मैं उसी जगह मुँह ढँककर औधा हो गया था। फिर मुझे कुछ खबर नहीं रही। जब आँखें खोलीं तब अन्धकार नहीं था,—नाव किनारे लगी हुई थी। इन्द्र मेरे पैरोंके पास बैठा था, बोला, “ अब थोडा चलना होगा, श्रीकान्त, उठ बैठ। ”



पैर उठते ही न थे, फिर भी किसी तरह गगाके किनारे किनारे चलकर सेबरे लाल आँखें और अत्यन्त सूखा म्लान मुँह लेकर घर पहुँचा। मानो एक समारोह-सा हो उठा। “यह आया ! यह आया !” कहकर सबके सब एक साथ एक स्वरमे इस तरह अभ्यर्थना कर उठे कि मेरा हृत्पिण्ड थम जानेकी तैयारी करने लगा।

जतीन करीब करीब मेरी ही उम्रका था। इसलिए आनन्द भी उसका सबसे प्रचण्ड था। वह कहींसे दौड़ता हुआ आया और “आ गया श्रीकान्त,—यह आ गया, मझले भइया।” इस प्रकारके उन्मत्त चीत्कारसे घरको फाड़ता हुआ मेरे आनेकी बात घोषित करने लगा और, मुहूर्त-भरका भी विलम्ब किये वगैर, उसने परम आदरसे मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए मुझे बैठक-खानेके पायदाजपर ला खड़ा किया।

वहाँपर मझले भइया गहरा मन लगाए परीक्षा पास करनेका पाठ पढ़ रहे थे। मुँह उठाकर थोड़ी-सी देर मेरे मुँहकी ओर देखकर उन्होंने फिर पढ़नेमें अपना मन लगा दिया। अर्थात् बाघ, शिकारको अपने अधिकारमें कर लेनेके उपरान्त, निरापद स्थानमें बैठकर, जिस तरह दूसरी तरफ अवहेलाभरी दृष्टिसे देखता है, ठीक उसी तरह उनका भाव था। दण्ड देनेका इतना बड़ा मोहन्द्रयोग उनके भाम्यमें पहले और कभी जुटा था या नहीं, इसमें सन्देह है।

मिनट-भर वे चुप रहे। सारी रात बाहर बितानेके कारण दोनों कानो और दोनों गालोंपर जो घटना घटेगी सो मैं जानता था। किन्तु, अब और अधिक देर खड़ा भी न रह सकता था और उधर ‘कर्म-कर्ता’ को भी तो फुरसत नहीं थी। वे भी तो परीक्षा पास करनेकी तैयारीमें लगे थे।

हमारे इन मझले भइयाको आप शायद इतने जल्दी भूले न होंगे। ये वही हैं जिनकी कठोर देख रेखमें कल शामको हम सब पाठाभ्यास कर रहे थे और क्षण-भर बाद ही, जिनके सुगभीर ‘ओं—ओं’ शब्द और चिराग-दान उलटा देनेकी चोटसे गत रात्रिको उस ‘दि रॉयल बेंगल’ को भी दिग्भ्रमित होकर एक दफे अनारके वृक्षका आश्रय लेना पड़ा था।

“पचाग तो देख रे सतीश, आज इस बेला बेंगन खाना अच्छा है या

नहीं—” कहती हुई पासके द्वारको खोलकर बुआजीने जैसे ही घरमे पैर रक्खा जैसे ही मुझे देखकर वे अवाक् हो गईं।—“कब आया रे ? कहाँ चला गया था ? घन्य है लडके तुझे,—सारी रात नींद नहीं आई,—सोच सोचकर मर गई,—उस इन्द्रके साथ चुपकेसे जो बाहर गया, सो फिर दिखाई ही नहीं दिया । न खाना, न पीना, कहाँ था, बोल तो रे अभागे ? मुख स्याह हो गया है, आँखें लाल छलछला रही हैं—कहती हूँ, ज्वर तो नहीं चढ आया है ? जरा पासमे तो आ, देखूँ तो आँग—” एक साथ इतने बहुतसे प्रश्न करनेके उपरान्त बुआ, स्वयं ही आगे बढ़कर, मेरे सिरपर हाथ देकर बोल उठी, “ जो सोचा था आखिर वही हुआ न ! आँग खूब गरम है । ऐसे लड़कोंके तो हाथ-पैर बँधकर जल-बिछुआ लगा दिया जाय, तभी जी शान्त हो ! तुझे घरसे बिल्कुल बिदा करके ही अब और कुछ करूँगी । चल, भीतर चलकर सो जा,—पाजी ! ” वे बैंगन-खानेके प्रश्नको बिल्कुल ही भूल गईं । उन्होने हाथ पकडकर मुझे अपनी गोदमे खींच लिया ।

मझले भइयाने बादलेके समान गम्भीर कण्ठसे सक्षेपमें कहा, “ अभी वह न जा सकेगा । ”

“ क्यों, यहाँ क्या करेगा ? नहीं, नहीं, इस समय, अब इसका पढना-लिखना न होगा । पहले दो कौर खाकर थोड़ा सो ले । आ मेरे साथ—” कहकर बुआजी मुझको लेकर चलने लगीं ।

किन्तु शिकार जो हाथसे निकला जाता था ! मझले भइया स्थान-काल भूल गये, जोरसे चिल्ला उठे और धमकाकर बोले, “ खबरदार, कहता हूँ, यहाँसे मत जा, श्रीकान्त ! ” बुआ तब कुछ चौंक उठी । इसके बाद मुँह फेर मँझले भइयाकी ओर देखकर केवल इतना ही बोलीं, “ सतीSS ! ”

बुआजी गम्भीर प्रकृतिकी औरत थीं । सारा घर उनसे डरता था । मझले भइया तो बस उस एक तीखी नजरसे ही भयके मारे सिटपिटा गये । और फिर, पासहीके कमरेमें बडे भाई भी बैठे थे । बात कहीं उनके कान तक गई तो फिर खैर नहीं थी ।

बुआजीका एक स्वभाव हम लोग हमेशासे देखते आ रहे थे । कभी किसी भी कारण वे शोर-गुल करके लोगोंको इकट्ठा करना पसंद नहीं करती थीं । हजार गुस्सा होनेपर भी वे कभी जोरसे नहीं बोलती थीं । वे बोलीं, “ जान पड़ता है, तेरे ही डरसे यह यहाँ खड़ा है । देख सतीश, जब-तब सुना करती हूँ कि तू बच्चोको

मारता-पीटता हैं। आजसे यदि कभी किसीके हाथ भी लगाया, और मुझे मालूम हो गया, तो इसी खम्भेसे बंधवाकर नौकरके हाथ तुझे बेत लगवाऊँगी। बेहया खुद तो हरसाल फैल हुआ करता है,—और फिर दूसरोंपर रुआब गॉठता है! कोई पढ़े चाहे न पढ़े, आगेसे तू किसीसे भी कुछ पूछ न सकेगा।”

इतना कहकर, जिस रास्ते आई थीं उसी रास्ते, मुझे लेकर, वे चली गईं। मझले भइया अपना-सा मुँह लिये बंटे रहे। यह बात मझले भइया भली भाँति जानते थे कि इस आदेशकी अवहेलना करना किसीके वगकी बात नहीं है।

मुझे अपने साथ ले बुआ अपने कमरेमें आई, मेरे कपड़े बदलवाये, पेट भरकर गरम गरम जलेबियों खिलाई, बिस्तरपर सुला दिया और यह बात अच्छी तरह जताकर, बाहरसे सकल लगाकर, चली गई कि मैं मर जाऊँ तो उनके हाड जुड़ा जावें !

पाँचेक मिनटके बाद खुट-से साँकल खोलकर छोटा भाई हॉफता हॉफता आया और मेरे बिछौनेपर आकर पट पड़ गया। आनन्दके अतिरेकसे पहले तो वह बात भी न कर सका, फिर थोड़ा ‘दम’ लेकर फुसफुसाकर बोला, “मझले भइयाको मॉने क्या हुक्म दिया है, जानते हो? हम लोगोंके किसी भी काममें पड़नेकी उन्हें अब जरूरत नहीं है। अब तुम और मैं दोनों एक कमरेमें पढ़ेंगे,—मझले भइयाकी हम जरा भी ‘केयर’ (पर्वाह) न करेंगे।” इतना कहकर उसने अपने दोनों हाथोंके अँगूठे एकत्र करके जोरसे नचा दिये।

जतीन भी पीछे पीछे आकर हाजिर हो गया। यह अपनी कारगुजारीकी उत्तेजनार्थे एकत्रारगी अधीर हो रहा था और छोटे भाईको यह सुसमाचार देकर यहाँ खींच लाया था। पहले तो वह कुछ देरतक खूब हँसता रहा। फिर हँसना बन्द करके अपनी छाती बरंबार ठोककर बोला, “मै! मै! मेरे ही सबबसे यह सब हुआ है, सो क्या तुम नहीं जानते? मैं यदि इसे (मुझे) मझले भइयाके सामने न ले गया होता तो क्या मॉ ऐसा हुक्म देतीं?—पर छोटे भइया, तुम्हे अपना कलदार लट्टू मुझे देना होगा सो कहे देता हूँ।” “अच्छा, दिया। ले आ, जा, मेरे डेस्कमेसे।” छोटे भाईने उसी क्षण हुक्म दे डाला। किन्तु उसी लट्टूको घण्टेभर पहले शायद वह पृथ्वीकी सारी सपत्तिके बदले भी न दे सकता।

ऐसा ही मूल्य होता है, मनुष्यकी स्वाधीनताका। व्यक्तिगत न्याय्य अधिकारोंको प्राप्त करनेका ऐसा ही आनन्द होता है। आज मुझे बार बार खयाल

आता है कि बच्चोंके निकट भी उसकी अमूल्यता विन्दु-भर भी कम नहीं है । मझले भइया, बढ़े होनेके कारण, स्वेच्छाचारसे, अपनेसे छोटोंके जिन समस्त अधिकारोंको ग्रास कर बैठे थे, उन्हें फिरसे प्राप्त करनेके सौभाग्य-लाभसे छोटे भाईने अपनी प्राणोसे भी प्रिय वस्तु विना संकोचके दे डाली । दर असल मझले भइयाके अत्याचारोकी सीमा न थी । रविवारको, कड़ी दुपहरीमें एक मीलका रास्ता नापकर, उनके तास खेलनेवाले दोस्तोंको बुलाने जाला पड़ता था । गर्मीकी छुट्टियोमे, दिनमे जब तक वे सोते रहते थे तब तक, पखा झलना पड़ता था । सर्दीके दिनोमें, जब वे लिहाफके भीतर हाथ-पैर छिपाकर 'कछुएकी तरह बैठे किताब पढ़ते थे, तब हमे बैठे बैठे उनकी किताबके पन्ने पलट देने होते थे ।— यही उनके समस्त अत्याचार थे । और फिर 'न' कहनेका भी कोई उपाय नहीं था । किसीके निकट शिकायत करनेकी भी ताब नहीं थी । घुणाक्षर-न्यायसे भी यदि वे जान पाते तो हुक्म दे बैठते, “केशव, जा तो अपनी जाग्रफी ले आ, देखूँ तुझे पुराना सबक याद है कि नहीं । जतीन, जा तो एक अच्छी-सी झाजकी छडी तोड़ ला ।” —अर्थात् पिटना अनिवार्य था । अतएव, आनन्दकी मात्रामें भी इन लोगोमें यदि प्रतिस्पर्धा हो रही थी तो, इसमें अचरजकी बात ही क्या थी !

किन्तु आनन्द कितना ही क्यों न हो, अन्तमें उसे स्थगित रखना आवश्यक हो गया क्योंकि स्कूलका समय हो रहा था । मुझे तो ज्वर था, इसलिए कहीं जाना न था ।

याद आता है कि, उस रातको बुखार तेज हो गया और फिर, ७-८ दिन तक खाटमे ही पड़े रहना पड़ा ।

इसके कितने दिनो बाद स्कूल गया और फिर कितने दिनो बाद इन्द्रसे भेंट हुई सो याद नहीं है, परतु इतना जरूर याद है कि बहुत दिनो बाद हुई । शनि-वारका दिन था, जल्दी बंद हो जानेके कारण मैं जल्दी ही स्कूलसे लौट आया था । उन दिनो गंगासे पानी उतरना शुरू हो गया था और गंगासे लगे हुए एक नालेके किनारे मैं बसी डालकर मछली पकड़ने बैठा था । वहाँ और भी बहुतसे आदमी मछली पकड़ रहे थे । एकाएक मैंने देखा कि एक आदमी, पासमें ही सरकीके झुण्डकी आड़में, बैठकर टपाटप मछलियो पकड़ रहा है । आडमें होनेके कारण वह तो अच्छी तरह दिखाई न देता था परतु उसका मछली पकड़ना दिखाई

पड़ता था । बहुत देरसे मुझे अपनी जगह पसन्द नहीं आ रही थी । मनमें सोचा कि चलो, मैं भी उसीके निकट जा बैठूँ । बंसी हाथमें लेकर मेरे एकबार घूमकर खड़े होते ही वह बोला, “मेरे दाहिनी ओर आकर बैठ जा । अच्छा तो है न, श्रीकान्त ?” छाती धक् कर उठी । यद्यपि मैं उसका मुँह न देख पाया था तो भी पहचान गया कि इन्द्र है । शरीरके भीतरसे बिजलीका तीव्र प्रवाह बह जानेसे, जो जहाँ है वह, एक मुहूर्त्तमें, जैसे सजग हो उठता है, उसके कण्ठ-स्वरसे भी मेरी वही दशा हुई । पलक मारते मारते सर्वाङ्गका रक्त चंचल हो उठा और उद्दाम होकर छातीपर मानो जोर जोरसे पछाड़ खाने लगा । किसी तरह भी मुँहसे जरा-सा जवाब न निकला । यह बात मैं लिख तो जरूर गया हूँ किन्तु, उस वस्तुको भाषामें व्यक्त करनेकी बात तो दूर, उसे समझना भी मेरे लिए, अत्यन्त कठिन ही नहीं, शायद, असाध्य था । क्यों कि बोलनेके लिए यही बहुव्यवहृत साधारण वाक्य-राशि—जैसे, हृदयका रक्त आलोकित हो रहा था,—उद्दाम या चंचल हो रहा था,—बिजलीके प्रवाहके समान बह रहा था,—आदिके उपयोगके सिवाय और तो कोई रास्ता है नहीं । किंतु इससे कितना-सा व्यक्त किया जा सकता है ? जो जानता नहीं उसके आगे मेरे मनकी बात कितनी-सी प्रकाशित हुई ? जिसने अपने जीवनमें एक दिनके लिए भी यह अनुभव नहीं किया, मैं ही उसे यह किस तरह जताऊँ और वही इसे किस तरह जाने ? जिसकी कि मैं प्रतिसमय याद करता रहता था,—कामना करता रहता था, आकाक्षा करता रहता था और फिर भी, कहीं उससे किसी रूपमें मुलाकात न हो जाय इस भयके मारे दिन-ब-दिन कौटा हुआ जाता था,—उसीने, इस प्रकार अकस्मात्, इतने अभावनीय रूपमें, मेरी आँखोंके सामने, मुझे अपने पार्श्वमें आकर बैठनेका अनुरोध किया । उसके पास जाकर बैठ भी गया, परंतु फिर भी कुछ कह न सका ।

इन्द्र बोला, “उस दिन वापिस आकर तूने बड़ी मार खाई,—क्यों न श्रीकान्त ? तुझे ले जाकर मैंने अच्छा काम नहीं किया । उसके लिए रोज मुझे बड़ा दुःख होता है ।” मैंने सिर हिलाकर कहा, “मारे नहीं खाई ।” इन्द्र खुश होकर बोला, “नहीं खाई ? सुन रे श्रीकान्त, तेरे जानेके बाद मैंने काली माताको अनेक दफे पुकारा था जिससे तुझे कोई मारे नहीं । काली माता बड़ी जाग्रत देवता हैं रे ! उन्हे मन लगाकर पुकारनेसे कभी कोई मार नहीं सकता । माता आकर इस प्रकार भुला देती हैं कि कोई कुछ भी नहीं कर सकता ।”



ऐसा कहकर उसने बसीको रख दिया और हाथ जोड़कर कपालमें लगा लिये, मानो उन्हींको मन-ही-मन प्रणाम किया हो। फिर बसीमें चारा लगाकर उसे जलमें डालते हुए वह बोला, “मुझे तो खयाल न था कि तुझे ज्वर आ जायगा, यदि होता तो मैं वह भी न आने देता।”

मैंने आहिस्तेसे प्रश्न किया, “क्या करते तुम ?” इन्द्र बोला, “कुछ नहीं, सिर्फ जवा-फूल (गुड़हर) लाकर माताके पैरोपर चढा देता। उन्हे जवा-फूल बढे प्यारे हैं। जो जैसी कामनासे उन्हें चढाता है उसका वैसा ही फल होता है। यह तो सभी जानते हैं, क्या तू नहीं जानता ?” मैंने पूछा, “तुम्हारी तबीयत तो नहीं बिगडी थी ?” इन्द्रने आश्चर्यसे कहा, “मेरी ?—मेरी तबीयत कभी खराब नहीं होती।” “कभी कुछ नहीं होता ?” वह एकाएक उदीप्त होकर बोला, “देख श्रीकान्त, मैं तुझे एक चीज़ सिखाय देता हूँ। यदि तू दोनों ब्रेला खूब मन लगाकर देवीका नाम लिया करेगा, तो वे सामने आकर खडी हो जायँगी,—तू उन्हें स्पष्ट देख सकेगा। और फिर वे कभी तेरा बुरा न होने देगी। तेरा कोई बाल भी ब्रॉका न कर सकेगा,—तू स्वयं जान जायगा,—फिर मेरी तरह मन चाहे वहाँ जाना,—खुशी पड़े सो करना, फिर कोई चिन्ता नहीं। समझमे आया ?”

मैंने सिर हिलाकर कहा, “ठीक है।” फिर बसीमें चारा लगाकर और उसे पानीमें डालकर मृदु-कण्ठसे पूछा, “अब तुम किसे साथ लेकर वहाँ जाते हो ?”

“कहाँ ?”

“उसपार मछली पकडने।”

“इन्द्र बसीको उठाकर और सावधानीसे पासमें रखकर बोला, “अब मैं नहीं जाता।” उसकी बात सुनकर मुझे बडा अचरज हुआ। पूछा, “उसके बाद क्या तुम एक दिन भी नहीं गये ?”

“नहीं, एक दिन भी नहीं,—मुझे सिरकी कसम रखाकर—” बातको पूरा किये-वगैर ही कुछ सिट-पिटाकर इन्द्र चुप हो गया।

उसके सम्बन्धमें यह बात मुझे अहरह कँटे जैसी चुभती रही है। किसी तरह भी उस दिनकी वह मछली बेचनेकी बात भूल न सका था। इसलिए यद्यपि वह चुप हो रहा पर मैं न रह सका। मैंने पूछा, “किसने तुम्हे सिरकी कसम रखाई भाई ? तुम्हारी मॉने ?”

“नहीं, मॉने नहीं,” कहकर इन्द्र फिर चुप हो रहा। फिर बसीमें धीरे-धीरे

## श्रीकान्त

मूत लपेटता हुआ बोला, “ श्रीकान्त; अपनी उस रातकी बातें घरमें तूने किसीसे कही तो नहीं ? ”

“ नहीं, किंतु यह सभी जानते हैं कि मैं तुम्हारे साथ चला गया था । ”

इन्द्रने और कोई प्रश्न न किया । मैंने सोचा था कि अब वह उठेगा । किंतु वह नहीं उठा, चुप बैठा रहा । उसके मुँहपर हमेशा हँसीका-सा भाव रहता था, परंतु इस समय वह नहीं था । मानों, जैसे वह कुछ मुझसे कहना चाहता हो और, किसी कारण, कुछ कह न सकता हो तथा, साथ ही, बिना कुछ कहे रहा भी न जाता हो,—बैठे बैठे भी मानों वह आकुलताका अनुभव कर रहा हो । आप लोग शायद यह कह बैठेंगे कि, “ यह तो बाबू, तुम्हारी बिल्कुल मिथ्या बात है, इतना मनस्तस्व आविष्कार करनेकी उम्र तो वह तुम्हारी नहीं थी । ” मैं भी इसे स्वीकार करता हूँ । किंतु, आप लोग भी इस बातको भूले जाते हैं कि मैं इन्द्रको प्यार करता था । एक आदमी दूसरेके मनकी बातको यदि जान सकता है तो केवल सहानुभूति और प्यारसे,—उम्र और बुद्धिसे नहीं । ससारमें जिसने जितना प्यार किया है दूसरेके मनकी भाषा उसके आगे उतनी ही व्यक्त हो उठी है । यह अत्यन्त कठिन अन्तर्दृष्टि सिर्फ प्रेमके जोरसे ही प्राप्त की जा सकती है, और किसी तरह नहीं । उसका प्रमाण देता हूँ ।

इन्द्रने मुँह उठाकर मानों कुछ बोलना चाहा परंतु बोल न सकनेसे उसका समस्त मुख अकारण ही रँग गया । चटसे सरकीका एक सोंटा उसने तोड़ लिया, और वह उसे, नीचा मुँह किये, पानीपर पटकने लगा, फिर बोला, “ श्रीकान्त ! ”

“ क्या है भइया ? ”

“ तेरे,—तेरे पास रुपये हैं ? ”

“ कितने रुपये ? ”

“ कितने ?—अरे यही चार-पाँच रुपये—”

“ हैं । तुम लोगे ? ” कहकर मैंने बड़ी प्रसन्नतासे उसके मुखकी ओर देखा । ये थोड़ेसे रुपये ही मेरे पास थे । इन्द्रके काममें आनेकी अपेक्षा उनके और अधिक सद्व्यवहारकी मैं कल्पना भी न कर सकता था । किंतु कहाँ, इन्द्र तो कुछ खुश न हुआ । उसका मुँह तो मानो और भी अधिक लज्जाके कारण कुछ विचित्र किस्मका हो गया । कुछ देर चुप रहनेके उपरान्त वह बोला, “ किंतु मैं इन रुपयोको तुम्हें लौटा न सकूँगा । ”

“ मैं इन्हे लौटाना चाहता भी नहीं, ” यह कहकर गर्वके साथ मैं उसकी ओर देखने लगा ।

और भी थोड़ी देरतक नीचा मुँह किये रहनेके उपरान्त वह धीरेसे बोला, “ मैं स्वयं नहीं चाहता । एक आदमीको देने होंगे, इसीसे मैंने मँगे हैं । वे लोग बेचारे बड़े दुखी हैं,—उन्हें खानेको भी नहीं मिलता । क्या तू वहाँ चलेगा ? ” निमेष-मात्रमे ही मुझे उस रातकी बात याद आ गई । बोला, “ वही न, जिनको रुपया देनेके लिए उस दिन तुम नावपरसे उतरे जा रहे थे ? ” इन्द्रने अन्यमनस्क भावसे सिर हिलाकर कहा, “ हाँ, वही । रुपया तो मैं खुद ही बहुत-से दे सकता था, परंतु जीजी तो किसी तरह लेना ही नहीं चाहती । तुझे भी साथ चलना होगा श्रीकान्त, नहीं तो इन रुपयोको वे न लेंगीं, सोचेगीं कि मैं मोंके बाक्समेसे चोरी करके लाया हूँ । चलेगा श्रीकान्त ? ”

“ मान्म होता है वे तुम्हारी जीजी होती हैं ? ”

इन्द्रने कुछ हँसकर कहा “ नहीं, जीजी होती नहीं हैं,—जीजी कहता हूँ । चलेगा न ? ” मुझे चुप देखकर वह बोला, “ दिनको जानेमे वहाँ कुछ भय नहीं है । कल रविवार है, तू खा-पीकर यहाँ आ जाना, मैं तुझे ले चलूँगा, तुरत ही लौट आवेगे । चलेगा न भाई ? ” इतना कहकर वह जिस प्रकार मेरा हाथ पकडकर मेरे मुँहकी ओर देखने लगा, उससे मेरा ‘ नहीं ’ कहना संभव नहीं रहा, मैं दुबारा उसकी नौकामें जानेका वचन देकर घर लौट आया ।

वचन तो सचमुच ही दे आया, किन्तु वहाँ जाना कितना बड़ा दुःसाहस है, यह तो मुझसे बढ़कर कोई न जानता था । उसी समयसे मेरा मन भारी हो गया और नौदके समयमें भी प्रगाढ़ अज्ञान्तिका भाव मेरे सर्वाङ्गमे विचरण करता रहा । सुबह उठते ही, पहले यही मनमे आया कि आज जिस जगह जानेके लिए वचन-बद्ध हुआ हूँ, उस जगह जानेसे किसी भी तरह मेरा भला न होगा । किसी सूत्रसे यदि कोई जान जायगा, तो वापिस लौटनेपर जो सजा भुगतनी पड़ेगी, उसकी चाहना तो शायद मझले भइयाके लिए भी छोटे भइथा न कर सकेंगे । अन्तमें खा-पीकर, पाँच रुपये छिपाकर, जब मैं घरसे बाहर निकला तब यह बात भी अनेक बार मनमें आई कि, जानेकी जरूरत नहीं है । बलासे, न रखा अपने वचनको, और इसस मेरा आता-जाता ही क्या है ?

यथास्थान पहुँचकर देखा कि, सरकीके झुंडके नीचे, उसी छोटी-सी नावके

ऊपर, इन्द्र सिर ऊपर उठाये मेरी राह देख रहा है। आँखसे आँख मिलते ही उसने इस तरह हँसकर मुझे बुलाया कि न जानेकी बात अपने मुँहसे मैं निकाल ही न सका। सावधानीसे, धीरे धीरे उतरकर, चुपचाप, मैं नावपर चढ़ गया। इन्द्रने नाव खोल दी।

आज मैं सोचता हूँ कि बहुत जन्मके पुण्योका फल था जो उस दिन मैं भयके मारे लौट न आया। उस दिनको उपलक्ष्य करके जो चीज मैं देख आया, उसे देखना, सारा जीवन सारी पृथिवी छान डालनेपर भी कितनेसे लोगोंके भाग्यमें होता है? स्वयं मैं भी वैसी वस्तु और कहाँ देख सका हूँ। जीवनमें ऐसा शुभ मुहूर्त अनेक बार नहीं आता। यदि कभी आता भी है तो, वह समस्त चेतनापर ऐसी गर्भार छाप मार जाता है कि, बादका सारा जीवन मानो उसी सँचेमें ढल जाता है। मैं समझता हूँ कि इसीलिए मैं स्त्री-जातिको कभी तुच्छ रूपमें नहीं देख सका। इसीलिए बुद्धिसे मैं इस प्रकारके चाहे जितने तर्क क्यों न करूँ कि संसारमें क्या पिशाचियों नहीं है? यदि नहीं, तो राह-घाटमें इतनी पाप-मूर्तियाँ किनकी दीख पड़ती हैं? सब ही यदि इन्द्रकी जीजी हैं, तो इतने प्रकारके दुःखोंके स्रोत कौन बहाती हैं?—तो भी, न जाने क्यों, मनमें आता है कि यह सब उनके बाह्य आवरण हैं, जिन्हे कि वे जब चाहे तब दूर फेंककर ठीक उन्हींके (दीदीके) समान उच्च आसनपर जाकर विराज सकती हैं। मित्र लोग कहते हैं कि यह मेरा अति जघन्य गोचनीय भ्रम है। मैं इसका भी प्रतिवाद नहीं करता, सिर्फ इतना ही कहता हूँ कि, यह मेरी युक्ति नहीं है, संस्कार है। इस संस्कारके मूलमें जो है, नहीं मालूम, वह पुण्यवती आज भी जीवित है या नहीं। यदि हो भी तो वह कैसे, कहाँपर है, इसकी खोज-खबर लेनेकी चेष्टा भी मैंने नहीं की है। किन्तु फिर भी, मन ही मन मैंने उन्हें कितनी बार प्रणाम किया है, इसे भगवान् ही जानते हैं।

श्मशानके उसी सक्के घाटके पास, बड़के वृक्षकी जड़ोंसे, नावको बाँधकर जब हम दोनों खाना हुए तब बहुत दिन बाकी था। कुछ दूर चलनेपर, दाहिनी तरफ, वनके भीतर अच्छी तरह देखनेसे एक रास्ता-सा दिखाई दिया। उसीसे होकर इन्द्रने अन्दर प्रवेश किया। करीब दस मिनट चलनेके बाद एक पर्णकुटी दिखाई दी। नजदीक जाकर देखा कि भीतर जानेका रास्ता एक बेंड़ेसे बन्द है। इन्द्रने सावधानीसे, उसका बधन खोलकर,

प्रवेश किया, और मुझे अंदर लेकर फिर उसे उसी तरह बॉध दिया। मैंने वैसा चास-स्थान अपने जीवनमें कभी नहीं देखा। एक तो चारों तरफ निबिड जगल, दूसरे सिरके ऊपर एक प्रकाण्ड इमली और पाकरके वृक्षने सारी जगहको मानो अन्धकारमय कर रखवा था। हमारी आवाज पाकर मुर्गियों और उनके बच्चे चीत्कार कर उठे। एक तरफ बंधी हुई दो बकरियों मिमिया उठी। ध्यानसे सामने देखा तो,—अरे बाबा!—एक बड़ा भारी अजगर, टेढा-मेढा होकर, करीब करीब सारे आँगनको व्याप्त करके पड़ा है। पल-भरमें एक अस्फुट चीत्कार करके, मुर्गियोंको और भी भयभीत करता हुआ, मैं एकदम उस बेड़ेपर चढ़ गया। इन्द्र खिल-खिलाकर हँस पड़ा, बोला, “यह किसीसे नहीं बोलता रे, बड़ा भला सॉप है,—इसका नाम है रहीम।” इतना कहकर वह उसके पास गया और उसने उसे, पेट पकड़कर, आँगनके दूसरी ओर, खींचकर सरका दिया। तब मैंने बेड़ेपरसे उतरकर दाहिनी ओर देखा। उस पर्णकुटीके बरामदेमें बहुत-सी फटी चटाइयों और फटी कथरियोंके बिछौनोंपर बैठा हुआ एक दीर्घकाय दुबला-पतला मनुष्य प्रबल खॉसीके मोरे हाँफ रहा है। उसके सिरकी जटाएँ ऊँची बंधी हुई थीं और गलेमें विविध प्रकारकी छोटी-बड़ी मालाएँ पड़ी थीं। शरीरके कपड़े अत्यन्त मैले और एक प्रकारके हल्दीके रंगमें रंगे हुए थे। उसकी लम्बी दाढ़ी कपड़ेकी एक चिन्दीसे जटाके साथ बंधी हुई थी। पहले तो मैं उसे पहचान नहीं सका, परन्तु, पासमें आते ही पहचान गया कि वह सँपेरा है। पाँच-छः महीने पहले मैं उसे करीब करीब सभी जगह देखा करता था। हमारे घर भी वह कई दफे सॉपका खेल दिखाने आया है। इन्द्रने उसे ‘शाहजी’ कहकर सम्बोधन किया। उसने हमें बैठनेका इशारा किया और हाथ उठाकर इन्द्रको गँजेका साज सरजाम और चिलम दिखा दी। इन्द्रने कुछ कहे बगैर ही उसके आदेशका पालन करना शुरू कर दिया। जब चिलम तैयार हुई तब शाहजी, खॉसीसे वेदम होनेपर भी, मानों ‘चाहे मरूँ चाहे बचूँ’ का प्रण करके, दम खींचने लगा और रस्तीभर भी धुआँ कहींसे बाहर न निकल जाय, इस आशंकाके मोरे उसने अपनी बाईं हथेलीसे नाक और मुँह अच्छी तरह दबा लिया, फिर सिरके एक झटकेके साथ उसने चिलम इन्द्रके हाथमें दे दी और कहा, “पियो।”

इन्द्रने चिलम पी नहीं। धीरेसे उसे नीचे रखते हुए कहा, “नहीं।” शाहजीने अत्यन्त विस्मित होकर कारण पूछा, किन्तु उत्तरके लिए एक क्षणकी भी प्रतीक्षा

नहीं की। फिर स्वयं ही उसे उठा लिया और खींच-खींचकर निःशेष करके उलटकर रख दिया। इसके बाद दोनोंके बीच कोमल स्वरमें बातचीत शुरू हुई जिसमेंसे अधिकांशको न तो मैं सुन ही सका और न समझ ही। किन्तु एक बातको मैंने लक्ष्य किया कि गाहजी हिन्दी बोलते रहे और इन्द्रने बगला छोड़ और किसी भाषाका व्यवहार न किया।

गाहजीका कण्ठस्वर क्रम क्रमसे गर्म हो उठा और देखते ही देखते वह पाग-लोकी-सी चिल्लाहटमें परिणत हो गया। इन्द्रको उद्देश्य करके वह जो गाली-गलौज करने लगा वह ऐसी थी कि न सुनी जा सकती है और न कही। इन्द्रने तो उसे सह लिया परन्तु मैं कभी नहीं सहता। इसके बाद वह बेंबेके सहारे बैठ गया और दम-भर बाद ही गर्दन झुका करके सो गया। दोनों जनोंके, कुछ देरतक, वैसे ही चुपचाप बैठे रहनेके कारण मैं ऊब उठा और बोला, “समय जा रहा है, तुम्हें क्या ब्रह्म नहीं जाना है ?”

“कहाँ, श्रीकान्त ?”

“अपनी जीजीके यहाँ, रुपया देने नहीं जाना है ?”

“जीजीके लिए ही तो मैं बैठा हूँ। यही तो उनका घर है।”

“यही क्या तुम्हारी जीजीका घर है ? यह तो सँपेरे,—मुसलमान,—हैं।”

इन्द्र कुछ कहनेको उद्यत हुआ,—पर फिर उसे दबा गया और चुप रहकर मेरी ओर ताकने लगा। उसकी दृष्टि बड़ी भारी व्यथासे मानों म्लान हो गई। वह कुछ ठहरकर बोला, “एक दिन तुझे सब कहूँगा। सॉप खिलाना देखेगा श्रीकान्त ?”

उसकी बात सुनकर मैं अवाक् हो गया। “क्या सॉपको खिलाओगे तुम ? यदि काट खाय तो ?”

इन्द्र उठकर घरके अन्दर गया और एक छोटी-सी पिटारी और सँपेरेकी तूँबी (बाजा) ले आया। उसने उसे सामने रक्खा, पिटारीका ढक्कन खोला और तूँबी बजाई। मैं डरके मारे काठ हो गया, “पिटारी मत खोलो भाई, भीतर यदि गोखरू सॉप हुआ तो ?” इन्द्रने इसका जवाब देनेकी भी जरूरत नहीं समझी, केवल इंगोरेसे बता दिया कि मैं गोखरू सॉपको भी खिला सकता हूँ। दूसरे ही क्षण सिर हिला-हिलाकर तूँबी बजाते हुए उसने ढक्कनको अलग कर दिया। बस फिर क्या था, एक बड़ा भारी गोखरू सॉप एक हाथ ऊँचा होकर फन फैलाकर खड़ा हो गया। मूहूर्त मात्रका भी विलम्ब किये वगैर इन्द्रके हाथके

ढक्कनमें उसने जोरसे मुँह मारा और पिटारीमेंसे बाहर निकल पड़ा ।

“ अरे बापरे ! ” कहकर इन्द्र आँगनमें उछल पड़ा । मैं बेड़ेपर चढ़ गया । क्रुद्ध सर्पराज, तूँबीपर और एक आघात करके, घरके भीतर घुस गये । इन्द्रका मुँह काला हो गया । उसने कहा, “ यह तो एकदम जंगली है । जिसे मैं खिलाया करता था वह यह नहीं है । ” भय, झुंझलाहट और खीझसे मुझे करीब करीब रुलाई आ गई । मैं बोला, “ क्यों ऐसा काम किया ? उसने जाकर कहीं शाहजीको काट खाया तो ? ” इन्द्र असीम शर्मके मोरे गढा जा रहा था । बोला, “ घरका अर्गल लगा आऊँ ? किन्तु यदि पासमें ही छिपा हुआ तो ? ” मैं बोला, “ तो फिर, निकलते ही उसे काट खायगा । ” निरुपाय भावसे इधर उधर देखकर इन्द्र बोला, “ काटने दो बच्चूको, जंगली सोंप रख छोड़ा है जो,—साले गंजेड़ीको इतनी भी अक्ल नहीं है ।—यह लो वह जीजी आ गई ! आना मत ! आना मत ! वहीं खड़ी रहो—” मैंने सिर घुमाकर इन्द्रकी जीजीको देखा । मानो राखसे ढँकी हुई आग हो । जैसे युग-युगान्तरव्यापी कठोर तपस्या समाप्त करके अभी आसनसे ही उठकर आई हो । बाईं ओर कमरपर रस्सीसे बँधी हुई थोड़ी-सी सूखी लकड़ियाँ थीं और दाहिने हाथमें फूलोंकी डलियाके समान एक टोकनीमें कुछ शाक-सब्जी थी । पहिनावेमें हिन्दुस्तानी मुसलमानिनके समान कपड़े थे, जो गेरुए रंगमें रंगे हुए थे परतु मैले नहीं थे । हाथमें लाखकी दो चूडियाँ थीं । माँग हिन्दुस्तानियोंके समान सिंदूरसे भरी थी । उन्होंने लकड़ीका बोझा नीचे रख दिया और बेंड़ा खोलते खोलते कहा, “ क्या है ? ” इन्द्र बहुत ही च्यस्त होकर बोला, “ खोलो मत जीजी, तुम्हारे पैर पड़ता हूँ,—एक बड़ा भारी सोंप घरमें घुस गया है । ” उन्होंने मेरे मुँहकी ओर देखकर मानो कुछ सोचा । इसके बाद थोड़ा-सा हँसकर कहा, “ वही तो । सँपेरेके घरमें सोंप घुसा है, यह तो बड़े अचरजकी बात है ! है न, श्रीकान्त ? ” मैं आनिमेष दृष्टिसे केवल उन्हींके मुँहकी ओर देखता रहा । “ किन्तु, यह तो कहो इन्द्रनाथ, वह अन्दर किस तरह गया ? ” इन्द्र बोला, “ पिटारीके भीतरसे निकल पड़ा है । एकदम जंगली सोंप है । ”

“ शायद वे अन्दर सो रहे हैं, क्यों ? ” इन्द्रने गुस्सेसे कहा, “ गाँजा पीकर एकदम बेहोश-पड़े हैं । चिल्ला चिल्लाकर मर जानेपर भी न उठेंगे । ” उन्होने फिर हँसकर कहा, “ और यही सुयोग पाकर तुम श्रीकान्तको सोंपका खिलाना दिखाने चले थे, क्यों न ? अच्छा, आओ मैं पकड़े देती हूँ । ”

“तुम मत जाना जीजी, तुम्हें काट खायगा। शाहजीको उठा दो,—मैं तुम्हें न जाने दूँगा।” यह कहकर और दोनों हाथ पसारकर वह रास्ता रोककर खड़ा हो गया। उसके इस व्याकुल कण्ठ-स्वरमें जो प्रेम प्रकाशित हो उठा, उसे उन्होंने खूब ही अनुभव किया। मुहूर्त-भरके लिए उनकी दोनों आँखें छलछला उठीं। किन्तु उन्हें छिपाकर वे हँसकर बोलीं, “अरे पागल, इतना पुण्य तेरी इस जीजीने नहीं किया। मुझे वह नहीं काटेगा, अभी पकड़े देती हूँ, देख—” कहकर बॉसके मचपरसे एक किरासनकी डिविया उठाकर और जलाकर वे घरमें गईं। एक मिनट-भरमें ही सॉपको पकड़ लाईं और उसे पिटारीमें बद कर दिया। इन्द्रने चटसे उनको पैरोंपर गिरकर नमस्कार किया और पैरोंकी धूल सिरपर लगाकर कहा, “जीजी, यदि तुम कहीं मेरी जीजी होतीं।” उन्होंने दाहिना हाथ बढ़ाकर इन्द्रका चिबुक स्पर्श किया और उस अगुलीको चूम लिया। फिर मुँह फेरकर अलक्ष्यमें मानों उन्होंने अपनी दोनों आँखें पोंछ डालीं।

५

**सा**री घटना सुनते सुनते इन्द्रकी जीजी हठात् दो एक बार इस तरह सिहर उठीं कि यदि इन्द्रका उस तरफ तनिक भी ध्यान होता, तो उसे बड़ा आश्चर्य होता। वह तो न देख पाया परंतु मैंने देख लिया। वे कुछ देर तक चुपचाप उसकी ओर देखकर स्नेह-भरे तिरस्कारसे बोलीं, “छिः भइया, ऐसा कार्य अब और कभी मत करना। इन सब भयानक जानवरोंसे क्या खिलवाड़ किया जाता है? भाग्यसे तुम्हारे हाथकी पिटारीके ढक्कनपर ही उसने फन मारा, नहीं तो आज कैसा अनर्थ हो जाता, बोल तो?”

“मैं क्या ऐसा बेवकूफ हूँ जीजी!” इतना कहकर उसने अपनी धोतीका छोर खींचकर कमरमें सूतसे बँधी हुई एक सूखी जड़ी दिखाकर कहा, “यह देख जीजी, पूरी सावधानीके साथ बाँध रखी है। यदि यह न होती तो क्या आज वह मुझे काटे बिना छोड़ देता? शाहजीके पाससे इसे प्राप्त करनेमें क्या मुझे कंम कष्ट उठाने पड़े हैं? इसके होते हुए तो मुझे कोई भी नहीं काट सकता, और यदि काट भी लेता,—तो भी क्या बिगड़ता!—शाहजीको तुरत ही जगाकर उनसे जहर-मोहरा लेकर कटी जगहपर रख देता। अच्छा, जीजी, यह



जहर-मोहरा कितनी देरमें सब विष खींच लेता है ?—आध घण्टेमें- ?— एक घण्टेमें ?—नहीं, इतनी देर न लगती होगी, क्यों जीजी ? ”

जीजी, किन्तु, उसी तरह, चुपचाप देखती रहीं । इन्द्र उत्तेजित हो गया था, बोला, “ आज दो न जीजी मुझे एक जहर-मोहरा,—तुम्हारे पास तो दो-ता-पडे हैं,—कितने दिनोंसे मैं मॉग रहा हूँ । ” फिर उत्तरके लिए प्रतीक्षा किये वगैर ही वह क्षुब्ध अभिमानके स्वरमें उसी क्षण बोल उठा, “ मुझसे तो तुम लोग जो भी कहते हो मैं वही कर देता हूँ,—पर तुम लोग मुझे हमेशा झॉसा देकर कहते हो, आज नहीं कल, कल नहीं परसों,—यदि, नहीं देना है तो साफ़ क्यो नहीं कह देते ? मैं फिर नहीं आऊँगा,—जाओ । ”

इन्द्रने लक्ष्य नहीं किया, किंतु, मैंने जीजीके तरफ देखते हुए खूब अनुभव किया कि उनका मुख, किसी असीम व्यथा और लज्जाके कारण, मानों एकदम काला हो गया है । किंतु दूसरे ही क्षण कुछ हँसीका भाव अपने सूखे होठोंपर जबरदस्ती लाकर उन्होंने कहा, “ हॉ रे इन्द्र, क्या तू अपनी जीजीके यहाँ सिर्फ सॉपके मन्त्र और जहर-मोहराके लिए ही आया करता है ? ”

इन्द्र निःसंकोच होकर बोल उठा, “ और नहीं तो क्या । ” फिर निद्रित शाहजीकी ओर तिरछी नजरसे देखकर बोला, “ किन्तु वह मुझे हमेशा झॉसा ही देते रहते हैं—इस तिथिको नहीं, उस तिथिको नहीं,—केवल वह एक झाड़नेका मन्त्र दिया था, बस, और कुछ देना ही नहीं चाहते । किन्तु, आज मुझे खूब मालूम हो गया है जीजी, कि तुम भी कुछ कम नहीं हो,—तुम भी सब जानती हो । अब और उनकी खुशामद नहीं करूँगा जीजी, तुम्हारे पाससे ही सब मन्त्र ले लूँगा । ” इतना कहकर उसने मेरी ओर देखा और फिर सहसा एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर शाहजीको लक्ष्य करके उनके प्रति आदरका भाव प्रकट करते हुए कहा, “ शाहजी गॉजा वाँजा जरूर पीते हैं श्रीकान्त, किन्तु, तीन दिनके भरे हुए मुर्देको आध घण्टेके भीतर ही उठाकर खडा कर सकते हैं,—इतने बड़े उस्ताद हैं ये ! हॉ जीजी, तुम भी तो मुर्देको जिला सकती हो ? ”

जीजी कुछ देरतक चुपचाप देखती रहीं और फिर एकाएक खिलखिलाकर हँस पड़ीं । वह कितना मधुर हास था । इस तरह मैंने बहुत ही थंडे लोगोंको हँसते देखा है । किन्तु वह हास, मानो निद्रिड मेघोंसे भरे हुए आकाशकी विजलीकी चमककी तरह, दूसरे ही क्षण अधकारमें विलीन हो गया ।

किन्तु इन्द्रने उस तरफ ध्यान ही नहीं दिया, वह एकदम जीजीके गले पड़ गया और बोला, “ मैं जानता हूँ कि तुम्हें सब मालूम है। परन्तु मैं कहे देता हूँ कि एक एक करके तुम्हे अपनी सब विद्याएँ देनी होंगी। जितने दिन जीऊँगा उतने दिन तुम्हारा पूरा गुलाम होकर रहूँगा। तुमने कितने मुर्दे जिलाए हैं जीजी ? ”

जीजी बोली, “ मैं तो मुर्दे जिलाना जानती नहीं, इन्द्रनाथ ! ”

इन्द्रने पूछा, “ तुम्हें शाहजीने यह मन्त्र नहीं दिया ? ” जीजीने सिर हिलाकर कहा “ नहीं । ” इन्द्र, मिनट-भर तक उनके मुँहकी ओर देखते रहनेके उपरान्त, स्वयं भी अपना सिर हिलते हिलते बोला, “ यह विद्या क्या कोई शीघ्र देना चाहता है जीजी ! अच्छा, कौड़ी चलाना तो तुमने निश्चय ही सीख लिया होगा ? ”

जीजी बोली, “ कौड़ी चलाना किसे कहते हैं, सो भी तो मैं नहीं जानती भाई ! ”

इन्द्रको विश्वास नहीं हुआ। वह बोला, “ हश्, जानतीं कैसे नहीं ! नहीं दूँगी, यही कह दो न । ” फिर मेरी ओर देखकर बोला, “ कौड़ी चलाना कभी देखा है श्रीकान्त ! दो कौड़ियाँ मत्र पढकर छोड़ दी जाती हैं, वे, जहाँ सॉप होता है वहाँ जाकर उसके सिरपर जा चिपटती हैं और उसे दश दिन तकके रास्तेसे खींच लाकर हाजिर कर देती हैं। ऐसा ही मत्रका जोर है ! अच्छा जीजी, घर बाँधना, देह-बाँधना, धूल पढ़ना—यह सब तो तुम जानती हो न ? यदि जानती न होतीं, तो इस तरह सॉपको कैसे पकड़ लेतीं ? ” इतना कहकर वह जिजासु-दृष्टिसे जीजीके मुँहकी ओर देखने लगा।

जीजीने बहुत देरतक सिर झुकाए हुए चुपचाप मन ही मन मानों कुछ सोच लिया और फिर मुँह उठाकर धीरेसे कहा, “ इन्द्र, तेरी जीजीके पास ये सब विद्याएँ कानी-कौड़ीकी भी नहीं हैं। किन्तु, क्यों नहीं है, सो यदि तू विश्वास करे भाई, तो आज तेरे आगे सब बातें खोलकर अपनी छातीका बोझ हलका कर डारूँ। बोलो, तुम लोग आज मेरी सब बातोंपर विश्वास करोगे ? ” बोलते बोलते ही उनके पिछले शब्द एक तरहसे कुछ भारी से हो उठे।

अभी तक मैं प्रायः कुछ भी न बोला था। इस दफे, सबसे आगे, जोरसे बोल उठा, “ मैं तुम्हारी सब बातोंपर विश्वास करूँगा, जीजी ! ” सबपर—जो तुम कहोगी, सब-पर। एक भी बातपर अविश्वास न करूँगा । ”

मेरी ओर देखकर वे कुछ हँसीं और बोलीं, “ विश्वास क्यों न करोगे भाई ! तुम भले घरोंके लड़के जो ठहरे ! इतर ( छोटे ) लोग ही अनजान अपरिचित

लोगोंकी बातोंमें सन्देह करते और भयसे पीछे हट जाते हैं । सिवाय इसके मैंने तकभी झूठ बोला नहीं भाई । ” इतना कहकर उन्होंने एक दफे फिर हमारी ओर देखकर म्लान भावसे थोड़ा-सा हँस दिया ।

उस समय, संध्याकी धुंध दूर होकर, आकाशमें चन्द्रमाका उदय हो रहा और उसकी धुँधली-सी किरण-रेखाएँ, वृक्षोंकी घनी शाखाओं और पत्तोंमेंसे छनक नीचेके गहरे अंधकारमें पड़ रही थीं ।

कुछ देर चुप रहकर जीजी एकाएक बोल उठीं, “ इन्द्रनाथ, सोचा था कि आज ही अपनी सब कहानी तुम्हें सुना दूँ । किन्तु सोचकर देखा कि नहीं, अभी वह समय नहीं आया है । परन्तु मेरी इस बातपर अवश्य विश्वास कर लो कि हम लोगोंकी सारी करामात शुरूसे आखिरतक प्रवचना ही है । इसलिए अब तुम झूठी आगासे शाहजीके पीछे पीछे चक्कर मत काटो । हम लोग मन्त्र-तन्त्र कुछ नहीं जानते, मुर्देको भी नहीं जिला सकते, कौड़ी फेंककर साँपको भी पकड़कर नहीं ला सकते । और कोई कर सकता है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानती परन्तु, हम लोगोमे ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है । ”

न मालूम क्यों इस अत्यल्प कालके परिचयसे ही मैंने उनके प्रत्येक शब्दपर असंशय विश्वास कर लिया, किन्तु, इतने दिनोंके घनिष्ठ परिचयके होते हुए भी इन्द्र विश्वास न कर सका । वह क्रुद्ध होकर बोला, “ यदि शक्ति नहीं है तो तुमने साँपको पकड़ लिया किस तरह ? ”

जीजी बोलीं, “ यह तो सिर्फ हाथका कौशल-भर है इन्द्र, किसी मन्त्रका जोर नहीं । साँपका मन्त्र हम लोग नहीं जानते । ”

इन्द्र बोला, “ यदि नहीं जानते, तो तुम दोनोंने धूर्ततासे मुझसे इतने रुपये क्यों ठग लिये ? ”

जीजी तत्काल जवाब न दे सकीं, गायद अपनेको कुछ सँभालने लगीं । इन्द्रेने फिर कर्कश कण्ठसे कहा, “ तुम सब ठग, धूर्त, चोटे हो,—अच्छा दिखाता हूँ तुम लोगोको इसका मजा । ”

पासमे ही एक किरासिनकी डिबिया जल रही थी । मैंने उसीके प्रकाशमें देखा, जीजीका मुँह मुर्देके समान सफेद हो गया है । वे भय और सकोचके साथ बोलीं, “ हम लोग मदारी जो हैं भाई—ठगना ही तो हमारा व्यवसाय है—”

“ तुम्हारा व्यवसाय मैं अभी सब बाहर निकाले देता हूँ—चल रे श्रीकान्त, इन

साले धूतोंकी छायासे भी बचना चाहिए । हरामजादे, बदजात, धूर्त, बदमाश !” यह कहकर इन्द्र सहसा मेरा हाथ पकड़कर और जोरसे एक झटका देकर खड़ा हो गया और जरा भी विलम्ब किये बिना मुझे खींच ले गया ।

” इन्द्रको दोष नहीं दिया जा सकता; क्योंकि उसकी बहुत दिनोंकी बहुत बड़ी ब्रह्मी आशाएँ, मानों पलक मारते ही, भूमिसात् हो गई थी । किन्तु मैं अपनी दोनो आँखोंको जीजीकी उन आँखोंकी ओर फिर न लौटा सका । मैं बलपूर्वक इन्द्रसे अपना हाथ छुड़ाकर पाँच रुपये सामने रखते हुए बोला, “ तुम्हारे लिए लाया था जीजी,—इन्हे ले लो । ”

इन्द्रने झपटकर उन्हें उठा लिया और कहा, “ अब और रुपये ! धूर्ततासे इन्होंने मुझसे कितने रुपये लिये हैं, सो क्या तुझे मालूम है श्रीकान्त ? मैं तो अब यही चाहता हूँ कि ये लोग बिना खाये पीये सूखकर मर जायें । ”

मैंने उसका हाथ दबाकर कहा, “ नहीं इन्द्र, दे देने दो,—मैं ये जीजीके लिए ही लाया हूँ । ”

“ ओः—बड़ी आई तेरी जीजी ! ” कहकर वह मुझे खींचकर बेडेके पास चलीट लाया ।

इतनेमें इस गोलमालसे गाहजीका नशा उचट गया । “ क्या हुआ ! क्या हुआ ! ” कहते हुए वह उठ बैठा ।

इन्द्र मुझे छोड़कर उसकी ओर बढ़ गया और बोला, “ डाकू साले ! कभी रास्तेमें देख पाया तो चाबुकसे तेरी पीठका चमड़ा उधेढ दूँगा ।—‘क्या हुआ !’ बदमाश, साला, जानता कुछ भी नहीं, फिर भी कहता फिरता है, मत्रके जोरसे मुर्दे जिलाता हूँ ! यदि कभी रास्तेपर दिखाई दिया तो अबकी बार अच्छी तरह ‘देखूँगा’ तुझे । ” इतना कहकर उसने एक ऐसा आशिष्ट इशारा किया जिससे कि गाहजी चौंक उठा !

एक तो नशेकी खुमारी, फिर अकस्मात् यह अचिन्त्य काण्ड ।—इससे वह, ‘किंकर्तव्य-विमूढ़’ हो गया और उसी भावसे टुकुर टुकुर देखने लगा ।

इन्द्र मुझे लेकर जबतक द्वारके बाहर आया, तबतक गायद वह कुछ होशमें आकर शुद्ध बगलामे पुकार उठा, “ सुन इन्द्रनाथ, क्या हुआ है बोल तो ? ” यह पहले ही पहल मैंने उसे बगलामें बोलते सुना ।

इन्द्र लौटकर बोला “ जत्र-मत्र तुम कुछ नहीं जानते,—फिर क्यों झूठमूठ मुझे

घोखा देकर इतने दिनोतक रुपया ऐठते रहे ? इसका जवाब दो !”

वह बोला, “ ‘नहीं जानता,’ यह तुमसे किसने कहा ? ”

इन्द्रने उसी क्षण उस स्तब्ध नतमुखी जीजीकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा, “ इन्होंने कहा कि तुम्हारे पास कानी कौडीकी भी विद्या नहीं है। विद्या है सिर्फ धूर्तताकी और लोगोको ठगनेकी। यही तुम लोगोका व्यवसाय है। मिथ्यावादी चोर ! ”

शाहजीकी आँखें भक्से जल उठीं। वह कैसी भीषण प्रकृतिका आदमी है, इसका परिचय मुझे तबतक भी नहीं था। उसकी केवल उस दृष्टिसे ही मेरे शरीरमे मानो काँटे उठ आये। वह अपनी बिखरी हुई जटाओंको बाँधते बाँधते उठ खड़ा हुआ और सामने आकर बोला, “ कहा है, तूने ? ”

जीजी उसी तरह नीचा मुँह किये निरुत्तर बैठी रहीं। इन्द्रने मुझे एक धक्का देकर कहा, “ रात हो गई—चल न। ” मैंने कहा, “ रात अवश्य हो रही है, परतु मेरे पैर तो जैसे अपनी जगहसे हिलते ही नहीं हैं। ” किंतु इन्द्रने उस ओर भ्रूक्षेप भी न किया। वह मुझे प्रायः ज़बर्दस्ती ही खींच ले चला।

कुछ कदम आगे बढ़ते ही शाहजीका कठ-स्वर फिर सुनाई दिया, “ क्यों कहा तूने ? ”

प्रश्न तो जरूर सुना किन्तु प्रत्युत्तर न सुन सका। थोड़े कदम और अग्रसर होते ही अकस्मात् चारो ओरके उस निविड अधकारकी छातीको चीरता हुआ एक तीव्र आर्त-स्वर पीछेकी अँधेरी झोपडीमेंसे हमारे कानोंको बेधता हुआ निकल गया, और आँखकी पलक गिरते न गिरते इन्द्र उस शब्दका अनुसरण करके अदृश्य हो गया। किन्तु मेरे भाग्यमें कुछ और ही था। सामने ही एक बड़ी कँटीली झाड़ी थी। मैं जोरसे उसीपर जा गिरा और काँटोंसे मेरा सारा शरीर क्षत-विक्षत हो गया। यह जो हुआ, सो हुआ किन्तु अपनेको काँटोंसे छुड़ानेमे ही मुझे करीब दस मिनट लग गये। इस काँटोको छुड़ाओ तो किसी अन्य काँटेमे कपड़ा बिंध जाता और उसे छुड़ाओ तो किसी तीसरेमें जा अटकता। इस प्रकार अनेक कष्ट और विलम्बके उपरान्त जब मैं शाहजीके घरके आँगनके किनारे पहुँचा, तब देखा कि उस आँगनके एक हिस्सेमे जीजी मूर्च्छित पड़ी हुई हैं और दूसरे हिस्सेमें दोनो गुरु-शिष्यका वाकायदा मल्ल-युद्ध हो रहा है। पासमे ही एक तेंजधारवाली बँछी पड़ी हुई है।

शाहजी शरीरसे अत्यन्त बलवान् था, किन्तु उसे पता न था कि इन्द्र उससे भी कितना अधिक बली है। यदि होता तो शायद वह इतने बड़े दुःसाहसका परिचय न देता। देखते ही देखते इन्द्र उसे चित करके उसकी छातीपर चढ़ बैठा और उसकी गर्दनको जोरसे दबोचने लगा। वह ऐसा दबोचना था कि, यदि मैं बाधा न देता तो, शायद, शाहजीका मदारी जीवन उसी समय समाप्त हो जाता।

बहुत खींच-तानके बाद जब मैंने दोनोंको पृथक् किया तब इन्द्रकी अवस्था देखकर मैं डरके मोरे एकदम रो दिया। पहले मैं अधिकारमें देख न सका था कि उसके सब कपड़े खूनसे तरबतर हो रहे हैं। इन्द्र हॉफते हॉफते बोला, “साले गॅजेडीने मुझे साँप मारनेका बर्छा मारा है,—यह देख।” डुरतेकी आस्तीन उठाकर उसने बताया, भुजामे करीब दो तीन इंच गहरा घाव हो गया है,—और उसमेंसे लगातार खून बह रहा है।

इन्द्र बोला, “रो मत, इस कपड़ेसे मेरे घावको खूब खींचकर बाँध दे—अरे खबरदार! ठीक ऐसा ही बैठा रह, उठा तो गलेपर पैर रखकर तेरी जीभ खींचकर बाहर निकाल लूँगा, ह्रामजादे सुअर!—ले इन्द्र, तू खींचकर बाँध, देरी न कर।” इतना कहकर उसने चर्र चर्र अपनी धोतीके छोरका एक अश फाड़ डाला। मैं कौपते हुए हाथोंसे घावको बाँधने लगा और शाहजी निकट ही, आगन्नमृत्यु विप्रेले सर्पकी तरह, बैठा हुआ, चुपचाप देखने लगा।

इन्द्र बोला, “नहीं, तेरा विश्वास नहीं है, तू खून कर डालेगा। मैं तेरे हाथ बाँधूँगा।” यह कहकर उसने उसीकी गेरुए रंगकी पगडीसे खींच-खींचकर उसके दोनों हाथ खूब कस करके बाँध दिये। उसने कोई बाधा नहीं दी, प्रतिवाद नहीं किया, जरा-सी चूँ-चपड़ भी नहीं की।

जिस लाठीके प्रहारसे जीजी बेहोश हो गई थी उसे उठाकर एक तरफ रखते हुए इन्द्र बोला, “कैसा नमकहराम शैतान है यह साला! मैंने इसे अपने पिताके न जाने कितने रुपये चुराकर दिये हैं, और यदि जीजीने सिरकी कसम रखाकर रोका न होता तो और भी देता। इतनेपर भी यह मुझे बर्छा मार बैठा। श्रीकान्त, इसपर नजर रख जिससे यह उठ न बैठे,—मैं जीजीकी आँखों और चेहरेपर जलके छींटे देता हूँ।”

पानीके छींटे देकर हवा करते हुए वह बोला, “जिस दिन जीजीने कहा कि इन्द्रनाथ, तेरे कमाये हुए पैसे होते तो मैं ले लेती—किन्तु इन्हें लेकर मैं अपना

इहलोक-परलोक मिट्टी न करूँगी।” उस दिनसे अब तक इस त्रैतानके बच्चेने उन्हें कितनी मार मारी है, इसका कोई हिसाब नहीं। इतनेपर भी जीजी लकड़ी ढोकर, कण्डे बेचकर किसी तरह इसे खिलाती पिलाती हैं, गँजिके लिए पैसे देती हैं,—फिर भी यह उनका अपना न हुआ ! किन्तु, अब मैं इसे पुलीसके हाथमें दूँगा, तब छोड़ूँगा,—नहीं तो यह जीजीका खून कर डालेगा, यह खून कर सकता है।”

मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मानो वह मनुष्य इस बातसे सिहर उठा और सिर उठाकर उसने उसे तुरत नीचा कर लिया। यह सब निमेष-भरमें ही हो गया। किन्तु अपराधीकी निश्चिन्ना आगङ्गा मैंने उसके चेहरेपर इस प्रकार परिस्फुट होती हुई देखी कि उसका उस समयका वह चेहरा मुझे आज भी साफ-साफ याद आ जाता है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ, कि इस कहानीको, जिसे कि आज मैं लिख रहा हूँ, इतना ही नहीं कि, सत्य मानकर ग्रहण करनेमें लोग दुविधा करेंगे परन्तु इसे विचित्र कल्पना कहकर उपहास करनेमें भी शायद संकोच न करेंगे। फिर भी, यह सब कुछ जानते हुए भी, मैंने इसे लिखा है और यही मेरी अभिज्ञताका सच्चा मूल्य है। क्योंकि, सत्यके ऊपर खड़े हुए वगैर, किसी भी तरह यह सब कथा मुँहसे बाहर नहीं निकाली जा सकती। पग-पगपर डर लगता है कि लोग इसे हँसीमें न उड़ा दें। जगत्में वास्तविक घटनाएँ कल्पनाको भी बहुत दूर पीछे छोड़ जाती हैं,—यह कैफियत, स्वयं उसे लेखबद्ध करनेमें, किसी तरहकी मदद नहीं करती, बल्कि हाथकी कलमको बार बार खींचकर रोकती है।

पर जाने दो इस बातको। जीजी जब आँखें खोलकर उठ बैठी तब शायद आधी रात हो गई थी। उनकी विह्वलता दूर होते और भी एक घण्टा बीत गया। इसके बाद हमारे मुँहसे समस्त वृत्तान्त सुनकर वे उठकर धीरे धीरे खड़ी हो गई और शाहजीको बधन-मुक्त करके बोलीं, “जाओ, अब सो रहो।”

उसके चले जानेके उपरान्त उन्होंने इन्द्रको पास बुलाकर और उसका दाहिना हाथ अपने सिरपर रखकर कहा, “इन्द्र, मेरे इस सिरपर हाथ रखकर शपथ तो कर भाई, कि अब फिर कभी तू इस घरमें न आयेगा। हमारा जो होना हो सो हो, तू अब हमारी कोई खबर न लेना।”

इन्द्र पहले तो अवाक् हो रहा परन्तु दूसरे ही क्षण आगकी तरह जल उठा

और बोला, “ ठीक ही तो है ! मेरा खून किये डालता था, सो तो कुछ भी नहीं । और मैंने जो उसे थोड़ी देरके लिए बाँध दिया, सो इसपर तुम्हारा इतना गुस्सा ! ऐसा न हो तो फिर यह कलियुग ही क्यों कहलावे ! परन्तु तुम् दोनों कितने नमकहराम हो ! आ रे श्रीकान्त, चलें, बस हो चुका । ”

जीजी चुप हो रहीं—उन्होंने इस अभियोगका जरा भी प्रतिवाद नहीं किया । क्यों नहीं किया सो, पीछे मैंने चाहे जितना क्यों न समझा हो, परन्तु, उस समय विलकुल न समझ सका । तथापि, मैं अलक्ष्य रूपसे चुपचाप वे पाँच रुपये वहीं खभेके पास रखकर इन्द्रके पीछे पीछे चल दिया । आँगनके बाहर आकर इन्द्र चिल्लाकर बोला, “ हिन्दूकी लड़की होकर जो एक मुसलमानके साथ भाग आती है, उसका धर्म-कर्म ही क्या ! चूल्हेमें चली जाय, अब मैं न कोई खोज ही करूँगा और खबर ही लूँगा ।—हरामजादा, नीच कहींका ! ” यह कहकर वह तेजीसे उस वन-पथको लौटकर चल दिया ।

हम दोनो नावमें आकर बैठ गये, इन्द्र चुपचाप नाव खेने लगा और बीच बीचमें हाथ उठा-उठाकर आँखें पोंछने लगा । यह साफ साफ समझकर कि वह रे । रहा है, मैंने भी और कोई प्रश्न नहीं किया ।

श्रमगानके उसी रास्तेसे मैं लौट आया और उसी रास्ते अब भी चला जा रहा हूँ, परन्तु, न मालूम क्यों, आज मेरे मनमें भयकी कोई बात ही नहीं आती । मालूम ह्येता है, शायद, उस समय मेरा मन इतना विह्वल और इतना ढँका हुआ था कि इतनी रातको किस तरह घरमें घँसूँगा और घँमनेपर क्या दशा होगी, इसकी चिन्ता भी उसमें स्थान न पा सकी ।

प्रायः पिछली रातको नाव घाटपर आ लगी । मुझे उतारकर इन्द्र बोला, “ घर चला जा श्रीकान्त, तू बड़ा अपगन्तुनिया है । तुझे साथ लेनेसे एक न एक फसाद उठ खड़ा हो जाता है । आजसे अब तुझे किसी भी कार्यके लिए न बुलाऊँगा,—और तू भी अब मेरे सामने न आना । जा, चला जा । ” इतना कहकर वह गहरे पानीमें नौका ठेलकर देखते ही देखते घुमावकी तरफ अदृश्य हो गया । विस्मित, व्यथित और स्तब्ध होकर मैं निर्जन नदीके तीरपर अकेला खड़ा रह गया ।



६

**नि**स्तब्ध गभीर रातमें माता गगाके किनारे, बिल्कुल अकारण ही, जब इन्द्र मुझे बिल्कुल अकेला छोड़कर चला गया, तब मैं रुलाईको और न सँभाल सका । उसे मैं प्यार करता हूँ, इसका उसने कोई मूल्य ही नहीं समझा । दूसरेके घरमें रहते हुए कठोर शासन-जालकी उपेक्षा करके, उसके साथ गया, इसकी भी उसने कोई कद्र नहीं की । सिवाय इसके, मुझे अपशकुनिया अकर्मण्य कहकर और अकेले असहाय अवस्थामें विदा करके, बेपरवाहीसे चला गया । उसकी यह निष्ठुरता मुझे कितनी अधिक चुभी कि उसको बतानेकी चेष्टा करना भी निरर्थक है । इसके बाद, बहुत दिनोंतक न उसने मुझे खोजा और न मैंने ही उसे । दैवात् यदि कभी राह-घाटमे मिल भी जाता तो मैं इस तरह मुँह मोड़कर चला जाता मानो उसे देखा ही न हो । किन्तु मेरा यह 'मानों,' मुझे ही हमेशा तुपकी आगकी तरह जलाया करता, उसकी जरा-सी भी हानि न कर सकता । लडकोके दलमे उसका बड़ा सम्मान था । फूटबाल-क्रिकेटका वह दलपति था, जिमनास्टिक अखाड़ेका मास्टर था । उसके कितने ही अनुचर थे, और कितने ही भक्त । मैं तो उनकी तुलनामें कुछ भी न था । फिर,—क्यों वह दो ही दिनके परिचयमे मुझे 'मित्र' कहने लगा और फिर क्यों उसने त्याग दिया ? परतु, जब उसने त्याग दिया तब मैं भी जवर्दस्ती करके उससे सम्बन्ध जोड़ने नहीं गया ।

मुझे खूब याद है कि मेरे सङ्गी-साथी जब इन्द्रका उल्लेख करके उसके सम्बन्धमें तरह तरहकी अद्भुत अचरज-भरी बातें कहना शुरू कर देते, तब मैं चुपचाप उन्हें सुनता रहता । छोटी-सी बात कहकर भी मैंने कभी यह जाहिर नहीं किया कि वह मुझे जानता है अथवा उसके सम्बन्धमें मैं कुछ जानता हूँ । न जाने कैसे मैं उस उम्रमें ही यह जान गया था कि 'बड़े' और 'छोटे' की दोस्तीका परिणाम प्रायः ऐसा ही होता है । भविष्य जीवनमें मैं भाग्यवश अनेक 'बड़े' मित्रोंके संसर्गमें आऊँगा इसलिए, शायद, भगवानने दया करके यह सहज-जान मुझे दे दिया था जिससे कि मैं कभी किसी भी कारणसे अपनी अवस्थाका अतिक्रम करके अर्थात् अपनी योग्यताका खयाल किये बिना मित्रताका मूल्य आँकने न जाऊँ । नहीं तो देखते देखते 'मित्र' प्रभु बन जाता है, और साधकी 'मित्रता' का पाश दासत्वकी बेड़ी बनकर 'छोटे' के पैरोंको जकड़ लेता है । यह दिव्यज्ञान

इतने सहजमें और इस तरह सत्य रूपमें मुझे प्राप्त हो गया था कि इससे मैं हमेशाके लिए अपमान और लाछनाओंसे छुटकारा पा गया हूँ ।

तीन-चार महीने कट गये । दोनोंने ही दोनोको त्याग दिया,—भलेही इसकी वेदना किसी पक्षके लिए कितनी ही निदारुण क्यों न हो,—किसीने किसीकी भी खोज खबर नहीं ली ।

दत्त-परिवारके घरमे काली-पूजाके उपलक्ष्यमें उस मुहल्लेका शौकिया नाटक-स्टेज तैयार हो रहा था । ' मेघ-नादवध ' का अभिनय होनेवाला था । इसके पहले देहातमे यात्रा \* तो अनेक बार देखी थी किन्तु नाटक अधिक नहीं देखे थे । मैंने सारे दिन न नहाया, न खाया और न विश्राम ही किया । स्टेज बनानेमें सहायता कर सकनेसे ही मैं मानो बिल्कुल कृतार्थ हो गया था । इतना ही नहीं, जो सज्जन रामका अभिनय करनेवाले थे उन्होंने स्वयं मुझसे उस दिन एक रस्ती पकड़े रहनेके लिए कहा था । इसलिए मुझे बड़ी आशा थी कि रात्रिमें जब लडके कनातके छेदोंमेंसे अन्दर ग्रीन-रूपमें ढूँँकेगे और मार तथा लाठीके हूले खायेंगे, तब मैं ' श्रीराम 'की कृपासे बच जाऊँगा । शायद, वे मुझे देखकर भीतर भी एकाध बार जानें दें । किन्तु हायरे दुर्भाग्य ! सारे दिन जी जान लगाकर जो परिश्रम किया, सध्याके बाद उसका कुछ भी पुरस्कार नहीं मिला । घण्टों ग्रीन-रूमके द्वारपर खडा रहा, 'रामचन्द्र' कितनी ही बार आये और गये, किन्तु, उन्होंने मुझे न पहिचाना । एक बार पृच्छा भी नहीं कि मैं इस तरह खडा क्यों हूँ । हायरे अकृतज्ञ राम ! क्या रस्ती पकड़वानेका मतलब भी तुम्हारा एकवारगी समाप्त हो गया !

रात्रिके दस बजे नाटककी पहली घण्टी बजी । नितान्त खिन्न चित्तसे, सारे व्यापारके प्रति श्रद्धाहीन होकर, परदेके सामने ही एक जगहपर मैंने दखल जमाया और वहीं बैठ गया । किन्तु थोड़ी ही देरमे सारा रूठना भूल गया । कैसा सुंदर नाटक था ! जीवनमें मैंने बहुत-से नाटक देखे हैं, किन्तु वैसा कभी नहीं देखा । मेघनाद स्वयं एक अद्भुत तमाशा था । उसकी छह हाथ ऊँची देह और चार साढ़े चार हाथ पेटका घेरा था । सभी कहते थे कि यदि यह मर गया तो बैलगाड़ीपर ले जानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं । बहुत दिनोकी बात हो गई ।

\* बगालमें जो दृश्यपट-हीन अभिनय होते हैं, उन्हें 'यात्रा' कहते हैं, जैसी कि यहाँपर रामलीलायें होती हैं ।

मुझे सारी घटनाका स्मरण नहीं है। किन्तु इतना स्मरण है, कि उसने उस दिन जो विक्रम दिखाया, वह हमारे देशके हारान पलसाई, भीमके अभिनयमें सागौनकी डाल कंधेपर रखकर और दाँत किड़मिड़ाकर भी नहीं दिखा सकते।

ड्राप सीन उठा। जान पडा,—वे लक्ष्मण ही होंगे,—थोड़ा बहुत वीरत्व प्रकाश कर रहे हैं। इसी समय वही मेघनाद कहींसे एक छलाग मारकर सामने आ धमका। सारा स्टेज चरामराकर काँप उठा,—फूट-लाइटके पाँच छः गोले उलटकर बुझ गये,—और साथ ही साथ उसका खुदका पेट बाँधनेका जरीका कमरपट्टा भी तडाकसे टूट गया। एक हलचल-सी मच गई। उसे बैठ जानेके लिए कई लोग भयभीत हो चीत्कार कर उठे, कई लोग सीन ड्रापकर देनेके लिए चिल्ला उठे,—परन्तु बहादुर मेघनाद, किसीकी भी किसी बातसे, विचलित नहीं हुआ। बाएँ हाथके धनुषको फेंककर उसने पाटलनको थाम लिया और दाहिने हाथसे केवल तीरोसे ही युद्ध करने लगा।

धन्य वीर! धन्य वीरत्व! मानता हूँ कि मैंने तरह तरहके युद्ध देखे हैं किन्तु हाथमे धनुष नहीं, बाएँ हाथकी अवस्था भी युद्ध-क्षेत्रके लिए अनुकूल नहीं,—फिर भी केवल दाहिने हाथ और सिर्फ तीरोसे लगातार लड़ाई, क्या कभी किसीने देखी है! अन्तमे उसीकी जीत हुई। शत्रुको भागकर आत्म-रक्षा करनी पड़ी।

आनन्दकी सीमा नहीं थी,—मग्न होकर देख रहा था और मन ही मन इस विचित्र लड़ाईके लिए उसकी शत-कोटि प्रशंसा कर रहा था। ऐसे ही समय पीठके ऊपर एक उँगलीका दबाव पडा। मुँह धुमाकर देखा तो इन्द्र!

वह धीरेसे बोला, “बाहर आ श्रीकान्त,—जीजी तुझे बुलाती हैं।” विजलीके द्वारा छू जानेके समान मैं सीधा खडा हो गया और बोला “कहाँ हैं वे?”

“बाहर तो आ, कहता हूँ।” रास्तेपर आनेपर वह, सिर्फ ‘मेरे साथ चल’ कहकर, चलने लगा।

गगाके घाटपर पहुँचकर देखा, उसकी नाव बँधी हुई है—चुपचाप हम दोनों उसपर जा बैठे, इन्द्रने बधन खोल दिया।

फिर उसी अधकार-पूर्ण जगलके रास्तेसे होते हुए दोनों जने शाहजीकी कुटीमे जा पहुँचे। उस समय, शायद रात्रि अधिक बाकी नहीं थी।

किरासिनका एक दीपक जलाये जीजी बैठी हुई थी। उनकी गोदमें

शाहजीका सिर रक्खा हुआ था और उनके पैरोंके पास एक बड़ा लम्बा काला साँप पड़ा था ।

जीजीने कोमल स्वरसे सारी घटना सक्षेपमें कह सुनाई । आज दोपहरको किसीके घरसे साँप पकड़नेका बुलावा आया था । वहाँ इस साँपको पकड़नेमें जो इनाम मिला उससे उसने ताड़ी लेकर पी ली और चढ़े नशेमें संध्याके कुछ पहले घर लौट आया । फिर जीजीके बार बार मना करनेपर भी वह उस साँपको खिलानेके लिए उद्यत हुआ और देरतक खिलता भी रहा । परन्तु अंतमें, खेलको समाप्त करनेके पहले, जब वह उसे पूँछ पकड़कर हडीमें बन्द करने लगा तब नगेकी झोकमें आकर ज्यों ही उसके मुखको अपने मुखके पास लाकर, चुम्बन करके, अपना प्यार प्रकट करने गया, त्यों ही उसने भी अपना प्यार व्यक्त करनेको शाहजीके गलेपर तीव्र चुम्बन अकित कर दिया ।

जीजीने अपने मैले आँचलके छोरसे अपनी आँखें पोछते हुए मुझे लक्ष्य करक कहा, “श्रीकान्त, उसी समय उन्हें ज्ञात हुआ कि अब समय अधिक नहीं है । तब उन्होंने यह कहकर कि ‘ आ रे, अब हम दोनों इस दुनियासे एक साथ ही कूच करें ’ साँपके सिरको पैरके नीचे दबा लिया और दोनों हाथोंसे उसकी पूँछ खींचकर इतना लम्बा करके फेंक दिया । इसके बाद दोनोंका ही ‘ खेल ’ समाप्त हो गया । ” इतना कहकर, उन्होंने, हाथसे अत्यन्त वेदनाके साथ, शाहजीके मुखके ऊपरका कपडा दूर कर दिया और बहुत सावधानीसे उसके नीले होठोंको अपने होठसे स्पर्श करके कहा, “ जाने दो, अच्छा ही हुआ इन्द्रनाथ, भगवानको मैं तनिक भी दोष नहीं देती । ”

हम दोनोंमेंसे किसीसे भी बोलते न पढा । उस कण्ठ-स्वरमेंसे जो मर्मान्तिक वेदना, जो प्रार्थना, और जो घना अभिमान प्रकाशित हुआ, उसे, जिसने सुना उसके लिए, भूल जाना इस जीवनमें कभी संभव नहीं, किन्तु किसके लिए था यह अभिमान ! और प्रार्थना भी किसके लिए ?

कुछ देर स्थिर रहकर वे बोलीं, “ तुम लोग अभी बच्चे हो, किन्तु, दोनोंको छोड़कर मेरा तो कोई और है नहीं भाई, इसीलिए तुमसे भिक्षा माँगती हूँ कि इनका कुछ उपाय कर जाओ । ” फिर अगुलिसे कुटीके दक्षिण ओरके जङ्गलको बताकर कहा, “ वहाँपर एक जगह है । इन्द्रनाथ, बहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि यदि मैं मर जाऊँ तो उसी जगह जा सोऊँ । सुबह होते ही उसी जगह ले

जाकर इन्हें सुला देना । इस जीवनमें इन्होंने अनेक कष्ट भोगे हैं,—वहाँ कुछ ज्ञान्ति पावेगे । ”

इन्द्रने पूछा, “ शाहजी क्या कबरमें दफनाये जायेंगे । ”

जीजी बोलीं, “ मुसलमान जब हैं तब कबरमें ही तो दफनाना होगा भाई ! ”

इन्द्रने पुनः पूछा, “ जीजी, क्या तुम भी मुसलमान हो ? ”

जीजी बोली, “ हाँ, मुसलमान नहीं तो और क्या हूँ ? ”

उत्तर सुनकर इन्द्र भी मानो कुछ संकुचित और कुण्ठित हो उठा । उसके चेहरेके भावसे अच्छी तरह देख पडता था कि इस जवाबकी उसने आगा नहीं की थी । जीजीको वह दर असल चाहता था । इसीलिए मन ही मन वह एक गुप्त आगा पोषण कर रहा था कि उसकी जीजी उसीके समाजकी एक स्त्री है । परन्तु मुझे उनके कहनेपर विश्वास नहीं हुआ । खुद उनके मुँहसे स्वीकारोक्ति सुनकर भी मेरे मनमे यह बात न बैठी कि वे हिन्दू-कन्या नहीं हैं ।

राती रात भी कट गई । इन्द्र निर्दिष्ट स्थानमे जाकर कबर खोद आया और हम तीनों जनोने ले जाकर शाहजीकी मृत देहको समाहित कर दिया । गगाजीके ठीक ऊपर, ककरोंका एक कगारा टूटकर, मानो किसीकी ठीक अन्तिम शय्याके लिए ही अपने आप यह जगह बन गई थी । २०—२५ हाथ नीचे ही जाहूवी मैयाकी धारा थी,—और सिरके ऊपर बन्य-लताओका आच्छादन । किसी प्रिय वस्तुको सावधानीसे लुका रखनेके ही लिए मानो यह स्थान बनाया गया था । बड़े ही भाराक्रान्त हृदयसे हम तीनों जने पास ही पास बैठे,—और एक जन हमारी गोदके ही पास मिट्टीके नीचे चिर-निद्रामे अभिभूत होकर सो गया । तब भी सूर्योदय नहीं हुआ था,—नीचेसे मन्द-स्रोता भागीरथीका कलकल शब्द कानोमें आने लगा,—सिरके ऊपर, आसपास, बनके पक्षी प्रभाती गाने लगे । कल जो था आज वह नहीं है । कल सुबह क्या यह सोचा था कि आज रात इस तरह बीतेगी ? कौन जानता था कि एक मनुष्यका शेष मुहूर्त इतने निकट आ पहुँचा है !

हठात् जीजी उसी कबरपर लोट गईं और विदीर्ण-कण्ठसे चिल्लाकर रो पडीं, “ मा गङ्गा, मुझे भी अपने चरणोंमें स्थान दो, मेरे लिए अब और कहीं जगह नहीं है । ” उनकी वह प्रार्थना, वह निवेदन, कितना मर्मान्तिक सत्य था यह उस दिन मैं उतनी तीव्रतासे अनुभव नहीं कर सका था जितना कि उसके दो

दिन बाँट कर सका। इन्द्रने एक बार मेरी ओर आँखें उठाकर देखा, इसके बाद उस आर्त्त नारीके भूलुण्ठित मस्तकको अपनी गोदमें उठा लिया और उसीकी तरह आर्त्त-स्वरमें कहा, “जीजी, तुम मेरे यहाँ चलो,—मेरी माँ अब भी जीती हैं, वे तुम्हें फेंकेंगी नहीं, अपनी गोदमें उठा लेंगी। वे प्रेम-मूर्ति हैं, एक बार चलकर तुम सिर्फ उनके सामने खड़ी भर हो जाना। चलो, तुम हिन्दूहीकी लड़की हो जीजी, मुसलमानिन किसी तरह भी नहीं।”

जीजी कुछ बोलीं नहीं। कुछ देर उसी तरह मूर्छिता-सी पड़ी रहीं और अन्तमें उठ बैठी। इसके बात उठकर हम तीनोंने गङ्गा-स्नान किया। जीजीने हाथकी चूड़ियाँ और सुहागकी कण्ठी तोड़कर गगामें बहा दीं। मिट्टीसे मस्तकका सिन्दूर पोंछकर, सद्य-विधवाके वेषमें, सूर्योदयके साथ ही साथ वे कुटीमें लौट आईं।

इतने दिनों बाद पहले पहल आज उन्होंने कहा कि शाहजी उनका पति था। किन्तु, इन्द्रके मनमें यह बात अच्छी तरह जमकर बैठती ही नहीं थी। सदिग्ध स्वरमें उसने प्रश्न किया, “किन्तु तुम तो हिन्दूकी लड़की हो जीजी?”

जीजी बोलीं, “हैं ब्राह्मणकी लड़की हूँ, और वे भी ब्राह्मण थे।”

इन्द्र कुछ देर आवाक् हो रहा, फिर बोला, “उन्होंने अपनी जात क्यों छोड़ दी?”

जीजी बोलीं, “सो बात मैं अच्छी तरह नहीं जानती भाई। किन्तु जब उन्होंने अपनी जात खो दी, तो उसके साथ मेरी भी खो गई। स्त्री सहधर्मिणी जो है। नहीं तो वैसे मैंने अपने हाथों अपनी जाति भी नहीं छोड़ी,—और किसी दिन किसी तरहका अनाचार भी नहीं किया।”

इन्द्र गाढे स्वरमें बोला, “सो तो मैं देखता ही हूँ जीजी! इसीलिए तो जबतक मेरे मनमें यही बात आती रही है,—मुझे माफ करना जीजी!—तुम कैसे यहाँ आ पड़ीं, तुम्हारी किस तरह ऐसी दुर्बुद्धि हुई। परन्तु अब मैं तुम्हारी कोई बात नहीं मानूँगा, मेरे घर तुम्हें चलना ही पड़ेगा। चलो, इसी वक्त चलो।”

जीजी देरतक चुपचाप मानो कुछ सोचती रहीं, फिर मुँह उठाकर धीरे धीरे बोलीं, “अभी मैं कहीं भी जा नहीं सकूँगी, इन्द्रनाथ।”

“क्यों नहीं जा सकोगी जीजी?”

जीजी बोलीं “मुझे मालूम है कि वे कुछ ‘देना’ कर गये हैं। जबतक उसे चुका न दूँ, तबतक मैं कहीं हिल नहीं सकती।”

इन्द्र हठात् क्रुद्ध हो उठा, बोला, “सो तो मैं भी जानता हूँ। ताड़ीकी

दूकानका, गँजेकी दूकानका ज़रूर कुछ देना होगा; किन्तु उससे तुम्हें क्या ? किसकी ताकत है कि तुमसे रुपया माँगे ? चलो तुम मेरे साथ, देखू कौन रोकता है तुम्हें ! ”

इतने दुःखमें भी जीजीको कुछ हँसी आ गई । बोली, “ अरे पागल, मुझे रोकनेवाले मेरा खुदका ही धर्म है । पतिका ऋण मेरा खुदका ही ऋण है ! और उन लेनेवालोको तुम किस तरह रोक सकोगे भाई ! यह नहीं हो सकता । आज तुम लोग घर जाओ,—मेरे पास जो कुछ थोडा-बहुत है, उसे बेच-बाचकर कर्ज चुकानेकी कोशिश करूँगी ।—कल परसों फिर किसी दिन आना । ”

इतनी देर मैं चुप ही था । इस बार बोला, “ जीजी, मेरे पास घरमें और भी चार-पाँच रुपये पड़े हैं,—ले आऊँ क्या ? ” बात पूरी भी न होने पाई थी कि वे उठकर खड़ी हो गईं और छोटे बच्चेकी तरह मुझे अपनी छातीसे लगाकर, मेरे मस्तकपर अपने होठ छुआकर, मेरे मुँहकी ओर प्रेमसे देखती हुई बोली, “ नहीं भइया, और लानेकी जरूरत नहीं है । उस दिन तुम पाँच रुपये रख गये थे, तुम्हारी वह दया मैं मरनेतक याद रखूँगी, भइया ! आशीर्वाद दिये जाती हूँ कि भगवान् सदा तुम्हारे हृदयके भीतर बसे और इसी तरह दुखियोंके लिए आँसू बहाते रहे । ” बोलते बोलते ही उनकी आँखोंसे झर झर नीर झरने लगा ।

करीब आठ नौ बजे हम घर जानेको तैयार हुए । उस दिन वे साथ साथ रास्तेतक पहुँचाने आईं । जाते समय इन्द्रका एक हाथ पकड़कर बोली, “ इन्द्रनाथ श्रीकान्तको तो आशीर्वाद दे दिया, किन्तु तुम्हें आशीर्वाद देनेका साहस मुझमें नहीं है । तुम मनुष्यके आशीर्वादके परे हो । इसलिए मैंने आज मन ही मन तुम्हें भगवान्के श्रीचरणोंमें सौंप दिया है । वे तुम्हें अपना लें । ”

इन्द्रको उन्होंने पहिचान लिया था । रोकते हुए भी इन्द्रने उनके पैरोंकी धूलि सिरपर लेकर प्रणाम किया और रोते रोते कहा “ जीजी, इस जङ्गलमें तुम्हें अकेली छोड़ जानेको मेरा किसी तरह साहस नहीं होता । मनमें न जाने क्यों, ऐसा लगता है कि मैं तुम्हें और न देख पाऊँगा ! ”

जीजीने इसका कुछ जवाब नहीं दिया, सहसा मुँह फेरकर आँखें पोछती हुई वे उसी वन-पथसे अपनी शोकसे ढँकी हुई उस शून्य कुटीमें लौट गईं । जहाँ तक दिखाई देती रहीं वहाँतक मैं उनकी ओर देखता रहा । किन्तु उन्होंने एक बार भी लौटकर नहीं देखा,—उसी तरह, मस्तक नीचा किये, एक ही भावसे चलती

हुई वे दृष्टिसे ओझल हो गई और तब, उन्होंने लौटकर क्यों नहीं देखा, इसे मन ही मन हम दोनों ही जनोने अनुभव किया ।

तीन दिन बाद स्कूलकी छुट्टी होते ही बाहर आकर देखा कि इन्द्रनाथ फाट-फूके बाहर खड़ा है । उसका मुँह अत्यन्त शुष्क हो रहा था, पैरोंमें जूते नहीं थे और वे घुटनोतक धूलमें भरे हुए थे । उस अत्यन्त दीन चेहेरेको देखकर मैं भयभीत हो गया । बड़े आदमीका लड़का था और साधारणतया बाहरसे कुछ शौकीन भी था । ऐसी अवस्था मैंने उसकी कभी नहीं देखी थी और मैं समझता हूँ कि और किसीने भी न देखी होगी । इशारा करके मुझे मैदानकी ओर ले जाकर उसने कहा,—“ जीजी नहीं हैं,—कहीं चली गई । ” भरे मुँहकी ओर आँख उठाकर भी उसने नहीं देखा । बोला, “ कलसे कितनी ही जगह जाकर मैं खोज आया हूँ, परन्तु कहीं वे नहीं दिखाई दीं । तेरे लिए वे एक चिट्ठी लिखकर रख गई हैं, यह ले । ” इतना कहकर एक मुड़ा हुआ पीला कागज भरे हाथमें थमाकर वह जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ दूसरी ओर चल दिया । जान पड़ा कि हृदय उसका इतना पीड़ित, इतना शोकातुर हो रहा था कि किसीके भी साथ आलोचना करना उसके लिए असाध्य था ।

उसी जगह मैं धमसे बैठ गया और घड़ी खोलकर उस कागजको मैंने अपनी आँखोंके सामने रखा । उसमें जो कुछ लिखा था, इतने समय बाद, यद्यपि वह सब याद नहीं रहा है फिर भी बहुत-सी बातें याद कर सकता हूँ ।—लिखा था, “ श्रीकान्त, जोते समय मैं तुम लोगोंको आशीर्वाद दिये जाती हूँ । केवल आज ही नहीं, जितने दिन जीऊँगी तुम्हें आशीर्वाद देती रहूँगी । किन्तु मेरे लिए तुम दुख मत करना । इन्द्रनाथ मुझे ढूँढता फिरेगा, यह मैं जानती हूँ, किन्तु तुम उसे समझाकर रोकना । मेरी सब बातें तुम आज ही नहीं समझ सकेगे, किन्तु, बड़े होनेपर एक दिन अवश्य समझोगे इस आशासे यह पत्र लिखे जा रही हूँ । अपनी कहानी अपने ही मुँहसे तुमसे कह जा सकती थी, परन्तु, न जाने क्यों, नहीं कह सकी,—कहूँ-कहूँ सोचते हुए भी न जाने क्यों चुप रह गई । परन्तु, यदि आज न कह सकी तो फिर कभी कहनेका मौका न मिलेगा ।

“ मेरी कहानी सिर्फ मेरी कहानी नहीं है भाई,—मेरे स्वामीकी कहानी है । और फिर, वह भी कुछ अच्छी कहानी नहीं है । मेरे इस जन्मके पाप कितने हैं, सो तो मैं नहीं जानती, किन्तु पूर्व-जन्मके सचित पापोंकी कोई सीमा परिसीमा



नहीं, इसमें-जरा भी संदेह नहीं। इसीलिए, जब जब मैंने कहना चाहा है, तब तब मेरे मनमें यही आया है कि, स्त्री होकर, अपने मुँहसे, पतिकी निन्दा करके, उस पापके बोझको और भी भासक्रान्त नहीं करूँगी। किन्तु, अब वे परलोक चले गये। और परलोक चले गये इसीलिए उसके कहनेमें कोई दोष नहीं है, यह मैं नहीं मानती। फिर भी, न जाने क्यों, अपनी इस अन्तविहीन दुःख-कथाको तुम्हें जनाए वगैर, मैं किसी तरह भी बिदा लेनेमें समर्थ नहीं हो रही हूँ।

“श्रीकान्त, तुम्हारी इस दुःखिनी जीजीका नाम अन्नदा है। पतिका नाम क्यों छिपा रही हूँ, इसका कारण, इस लेखको, शेषपर्यन्त पढ़नेके बाद, मालूम होगा।

“मेरे पिता बड़े आदमी हैं। उनके कोई लड़का नहीं है। हम सिर्फ दो बहिनें थीं। इसीलिए, मेरे पिताने मेरे पतिको एक दरिद्रके घरसे लाकर, अपने पासमें रखकर, पढ़ा-लिखाकर ‘आदमी’ बनाना चाहा था। वे-उन्हे पढ़ा-लिखा तो अवश्य सके, किन्तु, ‘आदमी’ नहीं बना सके। मेरी बड़ी बहिन विधवा होकर घर ही रहती थी,—उसीकी हत्या करके वे एक दिन लापता हो गये। यह दुष्ट कर्म उन्होंने क्यों किया, इसका हेतु, तुम अभी बच्चे हो, इस लिए न समझ सकोगे, फिर भी किसी दिन जान लोगे। पर कहो तो श्रीकान्त, यह दुःख कितना बड़ा है? यह लज्जा कितनी मर्मान्तिक है? फिर भी तुम्हारी जीजीने सब कुछ सह लिया। किन्तु, पति बनकर जिस अपमानकी अग्निको उन्होंने अपनी स्त्रीके हृदयमें जला दिया था उस ज्वालाको तुम्हारी जीजी आजतक भी बुझा नहीं सकी। पर जाने दो उस बातको।—

“उक्त घटनाके सात वर्ष बाद मैं उन्हे फिर देख पाई। जिस वेगमें तुमने उन्हे देखा था उसी वेगमें वे हमारे घरके सामने सॉपका खेल दिखा रहे थे। उन्हे और कोई तो नहीं पहिचान सका, किन्तु मैंने पहिचान लिया। मेरी आँखोंको वे धोखा नहीं दे सके। सुना है कि यह दुःसाहस उन्होंने मेरे लिए ही किया था। परन्तु यह झूठ है। फिर भी, एक दिन गहरी रातमें, खिड़कीका द्वार खोलकर मैंने पतिके लिए ही गृह-त्याग कर दिया। किन्तु सबने यही सुना, यही जाना कि अन्नदा कुलको कलक लगाकर घरसे निकल गई।

“यह कलङ्कका बोझ मुझे हमेशा ही अपने ऊपर लदे फिरना होगा। कोई उपाय नहीं है। क्योंकि, पतिके जीवित रहते तो अपने आपको प्रकट नहीं कर सकी,—पिताको पहिचानती थीं, वे कभी, किसी तरह भी, अपनी सतानकी हत्या

करनेवालेको क्षमा नहीं कर सकते। किन्तु आज यद्यपि वह भय नहीं है,—आज जाकर यह सब हाल उनसे कह सकती हूँ, किन्तु, इसपर, इतने दिनों बाद, कौन विश्वास करेगा ? इसलिए पितृ-गृहमें मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं है। और फिर, अब मैं मुसलमानिन हूँ।

“यहाँपर पतिका जो कर्ज था वह सब चुक गया है। मैंने अपने पास सोनेकी दो बालियाँ छिपाकर रख छोड़ी थीं, उन्हें आज बेच दिया है। तुम जो पाँच रुपये एक दिन रख गये थे उन्हें मैंने खर्च नहीं किया। बड़े रास्तेके मोड़पर जो मोदीकी दूकान है, उसके मालिकके पास उन्हें रख दिया है,—माँगते ही वे तुम्हें मिल जायेंगे। मनमें दुःख मत करना भइया ! वे रुपये तो अवश्य मैंने लौटा दिये हैं, किन्तु, तुम्हारे उस कच्चे कोमल छोटेसे हृदयको मैं अपने हृदयमें रखने लिये जाती हूँ। और तुम्हारी जीजीका यह एक आदेश है श्रीकान्त, कि तुम लोग मेरी याद करके अपना मन खराब न करना। समझ लेना कि तुम्हारी जीजी जहाँ कहीं भी रहेगी अच्छी ही रहेगी। क्योंकि, दुःख सहन करते करते उसकी यह दशा हो गई है, कि उसके शरीरपर अब किसी भी दुःखका असर नहीं होता। किसी तरह भी उसे व्यथा नहीं पहुँच सकती। मेरे दोनो भाइयो, तुम्हें मैं क्या कहकर आशीर्वाद दूँ, सो मैं हँसकर भी नहीं पा सकती हूँ। इसीलिए, केवल यही कहे जाती हूँ कि, भगवान्,—यदि पतिव्रता स्त्रीकी बात रखते हैं तो, वे तुम लोगोंकी मैत्री चिर-कालके लिए अक्षय करेंगे।

—तुम्हारी जीजी अन्नदा”

७

**आ**ज मैं अकेला जाकर मोदीके यहाँ खडा हो गया। परिचय पाकर मोदीने एक छोटा-सा पुराना चिथड़ा बाहर निकाला और गाँठ खोलकर उसमेंसे दो सोनेकी बालियाँ और पाँच रुपये निकाले। उन्हें मेरे हाथमें देकर वह बोला, “बहू ये दो बालियाँ मुझे इकतीस रुपयेमें बेचकर, शाहजीका समस्त ऋण चुका कर, चली गई हैं। किन्तु, कहाँ गई हैं सो नहीं मालूम।” इतना कहकर वह किसका कितना ऋण था इसका हिसाब बतलाकर बोला, “जाते समय बहूके हाथमें कुल साढ़े पाँच आने पैसे थे।” अर्थात् बाईस पैसे लेकर उस निरुपाय

निराश्रय स्त्रीने ससारके सुदुर्गम पथमे अकेले यात्रा कर बी है ! पीछेसे, उसके ये दोनों प्यारे बालक, कहीं उसे आश्रय देनेके व्यर्थ प्रयासमे, उपायहीन वेदनासे व्यथित न हो, इस भयसे, विना कुछ कहे ही वे विना किसी लक्ष्यके घरसे बाहर चली गई हैं,—कहाँ, सो भी किसीको उन्होने जानने नहीं दिया। नहीं दिया— इतना ही नहीं, किन्तु मेरे पाँच रुपये भी नहीं स्वीकार किये। फिर भी, मनमे यह समझ कर कि वे उन्होने ले लिये हैं, मैं आनन्द और गर्वसे, न जाने कितने दिनों तक, न जाने कितने आकाश-कुसुमोंकी सृष्टि करता रहा था। पर वे मेरे सब कुसुम शून्यमें मिल गये। अभिमानके मोरे आँखोंमे जल छलछला आया, जिसे उस बुढ़ेसे छिपानेके लिए मैं तेजीसे बाहर चल दिया। बार बार मन ही मन कहने लगा कि इन्द्रसे तो उन्होने कितने ही रुपये लिये, किन्तु, मुझसे कुछ भी नहीं लिया,—जाते समय 'नहीं' कहकर वापिस करके चली गई !

किन्तु अब मेरे मनमे वह अभिमान नहीं है। सयाना होनेपर, अब मैंने समझा है कि मैंने ऐसा कौन-सा पुण्य किया था जो उन्हें दान दे सकता। उस जलती अग्नि-शिखामे जो भी मैं देता वह जलकर खाक हो जाता—इसीलिए, जीजीने मेरा दान वापिस कर दिया। किन्तु इन्द्र ?—इन्द्र और मैं क्या एक ही धातुके बने हुए हैं जो जहाँ वह दान करे वहाँ ढीठतासे मैं भी अपना हाथ बढ़ा दूँ ? इसके सिवाय, यह भी तों मैं समझ सकता हूँ कि आखिर किसका मुँह देखकर उन्होने इन्द्रके आगे हाथ फैलाया था।—खैर, जाने दो इन बातोंको।

हसके बाद अनेको जगह मैं घूमा-फिरा हूँ, किन्तु इन जली आँखोंसे मैं कहीं भी उन्हें नहीं देख पाया। मुझे वे फिर नहीं दिखाई दीं, किन्तु हृदयमें वह हँसता हुआ मुँह हमेशा वैसा ही दीख पड़ता है। उनके चरित्रकी कहानीका स्मरण करके जब कभी, मैं मस्तक झुकाकर मन ही मन उन्हें प्रणाम करता हूँ, तब केवल यही बात मेरे मनमें आती है कि, भगवन्, यह तुम्हारा कैसा न्याय है ? हमारे इस सती-सावित्रीके देशमें, तुमने पतिके कारण सहधर्मिणीको अपरिसीम दुःख देकर, सतीके माहात्म्यको उज्ज्वलसे उज्ज्वलतर करके संसारको दिखाया है, यह मैं जानता हूँ। उनके समस्त दुःख दैन्यको चिरस्मरणीय कीर्तिके रूपमे रूपान्तरित करके, जगत्की सम्पूर्ण नारी-जातिको कर्तव्यके भ्रुव-पथपर आकर्षित करनेकी तुम्हारी इच्छा है, इसको भी मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ, किन्तु हमारी ऐसी जीजीके भाग्यमे इतनी बड़ी विडम्बना और अपयश क्यों लिख दिया ? किसलिए

तुमने ऐसी सतीके मुँहपर असतीकी गहरी काली छाप मारकर उसे हमेशाके लिए ससारासे निर्वासित कर दिया ? उनका तुमने क्या नहीं छुड़ा लिया ? उनकी जाति छुड़ाई, धर्म छुड़ाया,—समाज, ससार, प्रतिष्ठा, सभी कुछ तो छुड़ा लिया । और जो अपरिमित दुःख तुमने दिया है, उसका तो मैं आज भी साक्षी हूँ ।—इसका भी मुझे दुख नहीं है जगदीश्वर ! किन्तु जिनका आसन सीता, सावित्री, आदि सतियोंके समीप है, उन्हें उनके मा-बाप, कुटुम्बी, शत्रु-मित्र आदिने किस रूपमें जाना ? कुलटा रूपमें, वेश्या रूपमें !—इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ ? और ससारको भी क्या मिला ?

हाय रे, कहाँ हैं उनके वे सब आत्मीय स्वजन और भाई-बन्धु ? यदि एक दफे भी मैं जान सकता, वह देश फिर कितनी ही दूर क्यों न होता, इस देशसे बाहर ही क्यों न होता, तो भी, मैंने वहाँ जाकर अवश्य कहा होता,—यही हैं तुम्हारी अन्नदा और यही उनकी अक्षय कहानी ! तुमने अपनी जिस लड़कीको कुल-कलं-किनी मान लिया है, उसका नाम यदि सुबह एक दफे भी ले लिया करोगे तो, अनेक पापोंसे छुट्टी पा जाओगे !

इस धटनासे मैंने एक सत्यको प्राप्त किया है। पहले भी मैं एक दफे कह चुका हूँ कि नारीके कलङ्ककी बातपर मैं सहज ही विश्वास नहीं कर सकता । क्योंकि मुझे जीजी याद आ जाती हैं । यदि उनके भाग्यमें भी इतनी बड़ी बदनामी हो सकती है, तो फिर संसारमें और क्या नहीं हो सकता ? एक मैं हूँ, और एक वे हैं जो सर्व कालके सर्व पाप-पुण्यके साक्षी हैं,—इनको छोड़कर दुनियामें ऐसा और कौन है, जो अन्नदाका जरासे स्नेहके साथ भी स्मरण करे ! इसीलिए, सोचता हूँ कि न जानते हुए नारीके कलङ्ककी बातपर अविश्वास करके संसारमें उगा जाना भला है, किन्तु, विश्वास करके पापका भागी होना अच्छा नहीं ।

उसके बाद, बहुत दिनोंतक इन्द्रको नहीं देखा । गगाके तीर घूमने जहाना था तो देखता था कि उसकी नाव किनारे बँधी हुई है । वह पानीमें भीग रही है और धूपमें फट रही है । सिर्फ एक दफे और हम दोनों उस नावपर बैठे थे । उस नौकापर वही हमारी अन्तिम यात्रा थी । इसके बाद न वही उस नावपर चढ़ा और न मैं ही । वह दिन मुझे खूब याद है । सिर्फ इसीलिए नहीं कि वह हमारी नौका-यात्राका समाप्ति-दिवस था, किन्तु, इसलिए कि उस दिन अखण्ड

स्वार्थपरताका जो उत्कट दृष्टान्त देखा था, उसे मैं सहजमें ही भूल नहीं सका । वह कथा भी कहे देता हूँ ।

वह कड़ाकेके शीत-कालकी सध्या थी । पिछले दिन पानीका एक अच्छा झला पड़ चुका था, इस लिए जाड़ा सूईकी तरह शरीरमे चुभता था । आकाशमें पूरा चन्द्रमा उगा था । चारो तरफ चॉदनी मानो तैर रही थी । एकाएक इन्द्र आ टपका, बोला, “ थिएटर देखने चलेगा ? ” थिएटरके नामसे मैं एक बारगी उछल पड़ा । इन्द्र बोला, “ तो फिर कपड़े पहिनकर शीघ्र हमारे घर आ जा । ” पाँच मिनटमें एक रैपर लेकर बाहर निकल पड़ा । उस स्थानको ट्रेनपर जाना होता था । सोचा, घरसे गाड़ी करके स्टेशन जाना होगा—इसलिए इतनी जल्दी है ।

इन्द्र बोला, “ ऐसा नहीं, हम लोग नावपर चलेंगे । ” मैं निरुत्साहित हो गया, क्योंकि, गङ्गामें नावको उस ओर खेकर ले जाना पड़ेगा, और इसलिए बहुत देरी हो जानेकी सभावना थी । शायद समयपर पहुँचा भी न जा सके । इन्द्र बोला, “ हवा तेज है, देर न होगी । हमारे नवीन भइया कलकत्तेसे आये हैं, वे गङ्गासे ही जाना चाहते हैं । ”

खैर, दाँड़ लेकर, पाल तानकर ठीक तरह हम लोग नावमें बैठ गये—बहुत देर करके नवीन भइया घाटपर पहुँचे । चन्द्रमाके आलोकमें उन्हें देख कर मैं तो डर गया । कलकत्तेके भयङ्कर बाबू ! रेशमके मोजे, चमचमाते पम्प शू, ऊपरसे नीचेतक ओवरकोटमें लिपटे हुए, गलेमें गुल्ल-बन्द, हाथमें दस्ताने, सिरपर टोपी,—शीतके विरुद्ध उनकी सावधानीका अन्त नहीं था । हमारी उस साधकी डोंगीको उन्होने अत्यन्त ‘ रद्दी ’ कहकर अपना कठोर मत जाहिर कर दिया, और इन्द्रके कंधेपर भार देकर तथा मेरा हाथ पकड़कर, बड़ी मुश्किलसे, बड़ी सावधानीसे, वे नावके बीचमें जाकर सुशोभित हो गये ।

“ तेरा नाम क्या है रे ? ”

डरते डरते मैंने कहा, “ श्रीकान्त । ”

उन्होने आक्षेपके साथ मुँह बनाकर कहा, “ श्री—कान्त,—सिर्फ ‘ कान्त ’ ही काफी है । जा हुक्का तो भर लो । अरे इन्द्र, हुक्का-चिलम कहाँ है ? इस छोकरेको दे, तमाखू भर दे । ”

—अरे बापरे ! कोई अपने नौकरको भी इस तरहकी विकट भाव-भंगीसे आदेश

नहीं देता। इन्द्र अप्रतिभ होकर बोला, “श्रीकान्त, तू आकर कुछ देर डाँड़ पकड़ रख। मैं हुक्का भरे देता हूँ।”

इसका जवाब न देकर मैं खुद ही हुक्का भरने लगा। क्योंकि वे इन्द्रके मौसैरे भाई थे, कलकत्तेके रहनेवाले थे और हालहीमें उन्होंने एल० ए० पास किया था। परंतु मन मेरा बिगड़ उठा। तमाखू भरकर हुक्का हाथमें देते ही उन्होंने प्रसन्न-मुखसे पीते पीते पूछा, “तू कहाँ रहता है रे कान्त? तेरे शरीरपर वह काला काला-सा क्या है रे? रैपर है? अहः, रैपरकी क्या ही शोभा है! इसके तेलकी बाससे तो भूत भी भाग जावें। छोकरे,—फैलाकर बिछा तो दे यहाँ उसे, बैठें उसपर।

“मैं देता हूँ, नवीन भइया, मुझे ठंड नहीं लगती।—यह लो,” कहकर इन्द्रेन अपने शरीरपरकी अलवान चटसे उतारकर फेंक दी। वह उसे मजेसे बिछाकर बैठ गया और आरामसे तमाखू पीने लगा।

शीतऋतुकी गगा अधिक चौड़ी नहीं थी,—आध घण्टेमें ही झोंगी उस किनारेसे जा मिड़ी। साथ ही साथ हवा बन्द हो गई।

इन्द्र व्याकुल हो बोला, “नूतन भइया यह तो बड़ी मुश्किल हुई,—हवा चन्द हो गई। अब तो पाल चलेगा नहीं।”

नूतन भइया बोले, “इस छोकरके हाथमें दे न, डाँड़ खींचे।” कलकत्ता-वासी नूतन भइयाकी जानकारीपर कुछ मलिन हँसी हँसकर इन्द्र बोला, “डाँड़! कोई नहीं ले जा सकता नूतन भइया, इस रेतको ठेलकर जाना किसीके लिए भी संभव नहीं। हमें लौटना पड़ेगा।”

प्रस्ताव सुनकर नूतन भइया मुहूर्त-भरके लिए अग्निशर्मा हो उठे, “तो फिर ले क्यों आया हतभागे? जैसे भी हो, तुझे वहाँ पहुँचाना ही होगा। मुझे थिएटरमें हारमोनियम बजाना ही होगा,—उनका विशेष आग्रह है।” इन्द्र बोला, “उनके पास बजानेवाले आदमी हैं नूतन भइया, तुम्हारे न जानेसे वे अटके न रहेंगे।”

“अटके न रहेंगे? इस गँवार देशके छोकरे बजावेंगे हारमोनियम! चल, जैसे बने वैसे ले चल।” इतना कहकर उन्होंने जिस तरहका मुँह बनाया उससे मेरा सारा शरीर जल उठा। उनका हारमोनियम बजाना भी हमने बादमें सुना, किन्तु वह कैसा था सो बतानेकी जरूरत नहीं।

इन्द्रका संकट अनुभव करके मैं धीरे-से बोला, “ इन्द्र, क्या रस्सीसे खींचकर ले चलनेसे काम न चलेगा ? ” बात पूरी होते न होते मैं चौक उठा। वे इस तरह दौत किटकिटा उठे, कि उनका वह मुँह आज भी मुझे याद आ जाता है। बोले, “ तो फिर जा न, खींचता क्यों नहीं ? जानवरकी तरह बैठा क्यों है ? ”

इसके बाद एक दफे इन्द्र और एक दफे मैं रस्ती खींचते हुए आगे बढ़ने लगे। कहीं ऊँचे किनारेके ऊपरसे, कहीं नीचे उतरकर, और बीच बीचमें उस बरफ सरीखे ठंडे जलकी धारामें घुसकर, हमे अत्यन्त कष्टसे नाव ले चलना पडा। और फिर बीच बीचमेंे बाबूके हुक्केको भरनेके लिए भी नावको रोकना पडा। परन्तु बाबू वैसे ही जमकर बैठे रहे,—जरा भी सहायता उन्होने नहीं की। इन्द्रने एक बार उनसे ‘ कर्ण ’ पकडनेको कहा तो जवाब दिया कि “ मैं दस्ताने खोल कर ऐसी ठण्डमें निमोनिया बुलानेको तैयार नहीं हूँ। ” इन्द्रने कहना चाहा “ उन्हे खोले वगैर ही . ”

“ हँ, कीमती दस्तानोंको मिट्टी कर डालूँ, यही न ! ले—जा, जो करना हो कर। ”

वास्तवमेंे मैंने ऐसे स्वार्थपर असज्जन व्यक्ति जीवनमेंे थोड़े ही देखे हैं। उनके एक वाहियात शौकको चरितार्थ करनेके लिए हम लोगोको, जो उनसे उम्रमेंे बहुत ही छोटे थे, इतना सब क्लेश सहते हुए अपनी आँखों देखकर भी वे जरा भी विचलित न हुए। कहींसे जरा-सी ठंड लगकर उन्हे बीमार न कर दे, एक छींटा जल पड जानेसे उनका कीमती ओवरकोट खराब न हो जाय, हिलने-चलनेमेंे किसी तरहका व्याघात न हो,—इसी भयसे वे जड़ होकर बैठे रहे और, चिल्ला-चिल्लाकर हुक्मोंकी झड़ी लगाते रहे।

और भी एक आफत आई,—गङ्गाकी रुचिकर हवामेंे बाबू साहबकी भूख भडक उठी और, देखते ही देखते, अविश्राम बक-झककी चोटोंसे, और भी भीषण हो उठी। इधर चलते चलते रातके दस बज गये हैं,—थिएटर पहुँचते पहुँचते रातके दो बज जायेंगे, यह सुनकर बाबूसाहब प्रायः पागल हो उठे। रातके जब ग्यारह बजे, तब कलकत्तेके बाबू बेकाबू होकर बोले “ हॉरे इन्द्र, पासमेंे कहीं हिन्दुस्तानियोंकी कोई बस्ती-अस्ती है कि नहीं ? चिउडा-इउडा कुछ मिलेगा ? ”

इन्द्र बोला, “ सामने ही एक खूब बडी बस्ती है नूतन भइया, सब चीज़ें मिलती हैं। ”

“ तो फिर चला चल,—अरे छोकरे,—जरा खींच न जौरसे,—क्या खानेको नहीं पाता ? इन्द्र, बोल न तैरे इस साथीसे, थोड़ा और जोर करके खींच ले चले ।”

इन्द्रने अथवा मैने किसीने इसका जवाब नहीं दिया । जिस तरह चल रहे थे उसी तरह चलते हुए हम थोड़ी देरमें एक गाँवके पास जा पहुँचे । यहाँपर किनारा ढालू और विस्तृत होता हुआ जलमें मिल गया था । नावको बलपूर्वक धक्का देकर, उथले पानीमें करके, हम दोनोने एक आरामकी साँस ली ।

बाबू साहब बोले, “ हाथ-पैर कुछ सीधे करना होगा । उतरना चाहता हूँ ।” अतएव इन्द्रने उन्हें कंधेपर उठाकर नीचे उतार दिया । वे ज्योत्सनाके आलोकमें गंगाकी शुभ्र रेतीपर चहलकदमी करने लगे ।

हम दोनो जने उनकी क्षुधा-शातिके उद्देशसे गाँवके भीतर घुसे । यद्यपि हम लोग जानते थे कि इतनी रातको इस दरिद्र खेड़ेमें आहार सग्रह करना सहज काम नहीं है तथापि चेष्टा किये वगैर भी निस्तार नहीं था । इसपर, अकेले रहनेकी भी उनकी इच्छा नहीं थी । इस इच्छाके प्रकाशित होते ही इन्द्र उसी दम आह्वान करके बोला, “ नवीन भइया, अकेले तुम्हे डर लगेगा,—हमारे साथ थोड़ा घूमना भी हो जायगा । यहाँपर कोई चोर-ओर नहीं है, नाव कोई नहीं ले जायगा । चले न चले ? ”

नवीन भइया अपने-मुँहको कुछ विकृत करके बोले, “ डर ! हम लोग दर्जी पाड़ेके लड़के हैं,—यमराजसे भी नहीं डरते—यह जानते हो ? फिर भी नीच लोगोंकी डर्ती ( गदी ) बस्तीमें हम नहीं जाते । सालोंके शरीरकी बू यदि नाकमें चली जाय तो हमारी तबीयत खराब हो जाय ।” वास्तवमें उनका मनोगत अभिप्राय यह था कि मैं उनके पहरेपर नियुक्त होकर उनका हुक्का भरता-रहूँ ।

किन्तु उनके व्यवहारसे मन ही मन मैं इतना नाराज हो गया था कि, इन्द्रके इशारा करनेपर भी, मैं किसी तरह, इस आदमीके ससर्गमे, अकेले रहनेको राजी नहीं हुआ । इन्द्रके साथ ही चल दिया ।

दर्जी पाड़ेके बाबू साहबने हाथ-ताली देते हुए गाना शुरू कर दिया ।

हम लोगोंको बहुत दूरतक नाकके स्वरकी उनकी जनानी तान सुनाई देती रही । इन्द्र खुद भी मन ही मन अपने भाईके व्यवहारसे अतिशय लजित और क्षुब्ध हो गया था । धीरेसे बोला, “ ये कलकत्तेके, आदमी ठहरे, हमारी तरह हवा-पानी सहन नहीं कर सकते,—समझे न श्रीकान्त ? ”



मैं बोला “ हूँ । ”

तब इन्द्र उनकी असाधारण विद्या-बुद्धिका परिचय, — शायद मेरी श्रद्धा आंकषित करनेके लिए ही, देते हुए चलने लगा । बातचीतमें यह भी उसने कहा कि वे थोड़े ही दिनोंमें बी० ए० पास करके डिप्टी हो जायेंगे । जो हो, अब इतने दिनोंके बाद भी इस समय वे कहाँके डिप्टी हैं अथवा उन्हें वह पद प्राप्त हुआ या नहीं, मुझे नहीं मालूम । परन्तु, जान पड़ता है कि वे डिप्टी अवश्य हो गये होंगे, नहीं तो बीच बीचमें बंगाली डिप्टियोंकी इतनी सुख्याति कैसे सुन पड़ती ? उस समय उनका प्रथम यौवन था । सुनते हैं, जीवनके इस कालमें हृदयकी प्रशस्तता, समवेदनाकी व्यापकता, जितनी बढ़ती है उतनी और किसी समय नहीं । लेकिन, इन कुछ घण्टोंके संसर्गमें ही जो नमूना उन्होंने दिखाया इतने समयके अन्तरके बाद भी वह भुलाया नहीं जा सका । फिर भी, भाग्यसे ऐसे नमूने कभी कभी ही दिखाई पड़ते हैं, — नहीं तो, बहुत पहले ही यह ससार बाकायदा पुलिस-थानेके रूपमें परिणत हो जाता । पर रहने दो अब इस बातको ।

परन्तु, पाठकोंको यह खबर देना आवश्यक है कि भगवान् भी उनपर क्रुद्ध हो गये थे । इस तरफके राह-घाट, दूकान-हाट, सब इन्द्रके जाने हुए थे । वह जाकर मोदीकी दूकानपर उपास्थित हुआ । परन्तु, दूकान बन्द थी और दूकानदार ठडके भयसे दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द करके गहरी निद्रामें मग्न था । नींदकी वह गहराई कितनी अथाह होती है, सो उन लोगोंको लिखकर नहीं बताई जा सकती जिन्हें खुद-इसका अनुभव न हो । ये लोग न तो अम्ल-रोगी निष्कर्मा जर्मोदार हैं और न बहुत भारसे दबे हुए, कन्याके दहेजकी फिक्रसे ग्रस्त बङ्गाली गृहस्थ । इसलिए सोना जानते हैं । दिनभर घोर परिश्रम करनेके उपरांत, रातको ज्यों ही उन्होने चारपाई ग्रहण की कि फिर, घरमें आग लगाये वगैर, सिर्फ चिल्लाकर या दरवाजा खटखटाकर उन्हें जगा दूँगा, — ऐसी प्रतिज्ञा यदि स्वयं सत्यवादी अर्जुन भी, जयद्रथ-वधकी प्रतिज्ञाके बदले, कर बैठते तो, यह बात कसम खाके कही जा सकती है कि, उन्हें भी मिथ्या-प्रतिज्ञाके पापसे दग्ध होकर मर जाना पड़ता ।

हम दोनों जनें बाहर खड़े होकर तीव्र कण्ठसे चीत्कार करके, तथा जितने भी कूट-कौशल मनुष्यके दिमागमें आ सकते हैं उन सबको एक एक करके आजमा करके आध घण्टे बाद खाली हाथ लौट आये । परन्तु, घाटपर आकर देखा तो वह जन-शून्य है । चाँदनीमें जहाँतक नजर दौड़ती थी वहाँ तक कोई भी नहीं दिखता

या । 'दर्जी पाड़े' का कहीं कोई निशान भी नहीं । नाव जैसी थी वैसी ही पड़ी हुई है ।—फिर बाबू साहब गये कहाँ ? हम दोनों प्राणपणसे चीत्कार कर उठे,— 'नवीन भइया !' किन्तु कहीं कोई नहीं ! हम लोगोंकी व्याकुल पुकार, बाईं और दाहिनी बाजूके खूब ऊँचे कगारोंसे टकराकर, अस्पष्ट होती हुई, बार बार लौटने लगी । आसपासके उस प्रदेशमें, शीतकालमें, बीच बीचमें बाघोंके आनेकी बात भी सुनी जाती थी । गृहस्थ किसान इन दलबद्ध बाघोंकी विपत्तिसे व्यस्त रहते थे । सहसा इन्द्र इसी बातको कह बैठा,—“ कहीं बाघ तो नहीं उठा ले गया रे ! ” भयके मारे भेरे रोंगटे खड़े हो गये—यह क्या कहते हो ? इसके पहले उनके निरतिशय अभद्र व्यवहारसे मैं नाराज तो सचमुच ही हो उठा था परन्तु, इतना बड़ा अभिशाप तो मैंने उन्हें नहीं दिया था ।

सहसा दोनों जनोंकी नजर पड़ी कि कुछ दूर बालूके ऊपर कोई वस्तु चाँदनीमें चमचमा रही है । पासमें जाकर देखा तो उन्हींके बहुमूल्य पम्प शूकी एक फर्द है । इन्द्र उसी भीगी बालूपर लोट गया—‘ हाय श्रीकान्त ! साथमें मेरी मौसी भी तो आई हैं ! अब मैं घर लौटकर न जाऊँगा । ’ तब धीरे धीरे सब बात स्पष्ट होने लगी । जिस समय हम लोग मोदीकी दूकानपर जाकर उसे जगानेका व्यर्थ प्रयास कर रहे थे, उसी समय, इस तरफ कुत्तोंका छुण्ड इकट्ठा होकर आर्त्त-चीत्कार करके इस दुर्घटनाकी खबर हमारे कर्णगोचर करनेके लिए व्यर्थ मेहनत उठा रहा था, यह बात अब जलकी तरह हमारी आँखोंके आगे स्पष्ट हो गई । अब भी हमें दूरपर कुत्तोंका भौंकना सुन पडता था । अतएव जरा भी संशय नहीं रहा कि बाघ उन्हें खींच ले जाकर जिस जगह मोजन कर रहे हैं, वहीं आसपास खड़े होकर ये कुत्ते भी अब तक भौंक रहे हैं ।

अकस्मात् इन्द्र सीधा होकर खड़ा हो गया और बोला “ मैं वहाँ जाऊँगा । ” मैंने डरकर उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, “ पागल हो गये हो भइया ! ” इन्द्रने इसका कुछ जवाब नहीं दिया । नावपर जाकर उसने कंधेपर लगी रख ली, एक बड़ी लम्बी छुरी खींचेसे निकालकर बायें हाथमें ले ली और कहा— “ तू यहीं रह श्रीकान्त, मैं न आऊँ तो लौटकर भेरे घर खबर लगा देना—मैं चलता हूँ । ”

उसका मुँह बिल्कुल सफेद पड़ गया था, किन्तु दोनों आँखें जल रही थीं । मैं उसे अच्छी तरह चीन्हाता था । यह उसकी निरर्थक, खाली उछल-कूद नहीं थी

कि हाथ पकड़ कर दो-चार भयकी बातें कहनेसे ही, मिथ्या दम्भ मिथ्यामें मिल जायगा । मैं निश्चयसे जानता था कि किसी तरह भी वह रोका नहीं जा सकता, —वह जरूर जायगा । भयसे जो चिर अपरिचित हो, उसे किस तरह और क्या कहकर रोका जाता ? जब वह विलकुल जाने ही लगा तो मैं भी न ठहर सका; मैं भी, जो कुछ मिला, हाथमें लेकर उसके पीछे पीछे चल दिया । इस वारं इन्द्रने मुख फेरकर मेरा एक हाथ पकड़ लिया और कहा, “ तू पागल हो गया है श्रीकान्त ? तेरा क्या दोष है ? तू क्यों जायगा ? ”

उसका कण्ठ-स्वर सुनकर मेरी आँखोंमें एक मुहूर्तमें ही जल भर आया । किसी तरह उसे छिपा कर बोला, “ तुम्हारा ही भला, क्या दोष है इन्द्र ? तुम ही क्यों जाते हो ? ”

जवाबमें इन्द्रने मेरे हाथसे बॉस-छीनकर नावमें फेंक दिया और कहा, “ मेरा भी कुछ दोष नहीं है भाई, मैं भी नवीन भइयाको लाना नहीं चाहता था । परन्तु, अब अकेले लौटा भी नहीं जा सकता, मुझे तो जाना ही होगा । ”

परन्तु मुझे भी तो जाना चाहिए । क्यों कि, पहले ही एक दफे कह चुका हूँ कि मैं स्वयं भी विलकुल डरपोक न था । अतएव बॉसको फिर उठाकर मैं खड़ा हो गया और वाद-विवाद किये वगैर ही हम दोनों आगे चल दिये । इन्द्र बोला, बालपर दौड़ा नहीं जा सकता, —खबरदार, दौड़नेकी कोशिश न करना । नहीं तो, पानीमें जा गिरेगा । ”

सामने ही एक बालूका टीला था । उसे पार करते ही दीख पड़ा, बहुत दूरपर पानीके किनारे छह सात कुत्ते खड़े खड़े भोक रहे हैं । जहाँ तक नजर गई वहाँ तक थोड़ेसे कुत्तोंको छोड़कर, बाघ तो क्या, कोई शृगाल भी नहीं दिखाई दिया । सावधानीसे कुछ देर और अग्रसर होते ही जान पड़ा कि कोई एक काली-सी वस्तु पानीमें पड़ी है और वे उसका पहरा दे रहे हैं । इन्द्र चिल्ला उठा, “ नूतन भइया ! ”

नूतन भइया गलेतक पानीमें खड़े हुए अस्पष्ट स्वरसे रो पड़े—“ यहाँ हूँ मैं । ”

हम दोनों प्राणपणसे दौड़ पड़े, कुत्ते हटकर खड़े हो गये, और इन्द्र झपटकर कूदकर गलेतक झूबे हुए मूर्च्छित-प्राय अपने दर्जी पाडेके मौसरे भाईको खींचकर किनारेपर उठा लाया । उस-समय भी उनके एक पैरमें बहूमूल्य पम्प शू, गरी-रपर ओवरकोट, हाथमें दस्तानें, गलेमें गुलबन्द और सिरपर टोपी थी, भीगनेके

कारण फूलकर वे ढोल हो गये थे ! हमारे जानेपर उन्होंने हाथ-ताली देकर जो बड़िया तान छेड़ दी थी, बहुत सभव है, उसी सगीतकी तानसे आकृष्ट होकर, गाँवके कुत्ते दल बाँधकर वहाँ आ उपस्थित हुए थे और इस अश्रुतपूर्व गीत और अदृष्टपूर्व पोशाककी छटासे विभ्रान्त होकर इस महामान्य व्यक्तिके पीछे पड़ गये थे । पीछा छुड़ानेके लिए इतनी दूर भागनेपर भी आत्म-रक्षाका और कोई उपाय न खोज सकनेके कारण अन्तमें वे झप से पानीमें कूद पड़े, और इस दुर्दान्त शीतकी रातमें, तुषार-शीतल जलमें, आधे घण्टे गले तक डूबे रहकर अपने पूर्वकृत पापोंका प्रायश्चित्त करते रहे । किन्तु, प्रायश्चित्तके संकटको दूर करके उन्हें फिरसे चगा करनेमें भी हमे काम मेहनत नहीं उठानी पड़ी । परन्तु, सबसे बढ़कर अचरजकी बात यह हुई कि बाबू साहबने सूखेमें पैर रखते ही पहली बात यही पूछी, “हमारा एक पम्प झू कहाँ गया ?”

‘वह वहाँ पड़ा हुआ है,’ यह सुनते ही वे सारे दुःख-क्लेश भूलकर उसे शीघ्र ही उठा लेनेके लिए सीधे खड़े हो गये । इसके बाद, कोटके लिए, गुल्लबन्दके लिए, मोजोंके लिए, दस्तानोंके लिए, पारी पारीसे एक-एकके लिए शोक प्रकाशित करने लगे और उस रातको जबतक हम लोग लौटकर अपने घाटपर नहीं पहुँच गये, तबतक यही कहकर हमारा तिरस्कार करते रहे कि क्यों हमने मूर्खोंकी तरह उनके शरीरसे उन सब चीजोंको जल्दी जल्दी उतार डाला था । न उतारा होता तो इस तरह धूल लगकर वे मिट्टी न हो जाते । हम दोनों असभ्य लोगोंमें रहनेवाले ग्रामीण किसान हैं, हम लोगोंने इन चीजोंको पहले कभी आँखसे देखा तक नहीं होगा,—यह सब वे बराबर बकते रहे । जिस देहपर, इसके पहले, एक छोट्टा भी जल गिरनेसे वे व्याकुल हो उठते थे, कपड़े-लत्तोंके शोकमें वे उस देहको भी भूल गये । उपलक्ष्य वस्तु असल वस्तुसे भी किस तरह कई गुनी अधिक होकर उसे पार कर जाती है, यह बात, यदि इन जैसे लोगोंके ससर्गमें न आया जाय तो, इस तरह प्रत्यक्ष नहीं हो सकती ।

रातके दो बजे बाद हमारी डोंगी घाटपर आ लगी । मेरे जिस रैपरकी विकट बूसे कलकत्तेके बाबू साहब, इसके पहले, बेहोश हुए जाते थे, उसीको अपने शरीरपर डालकर, उसीकी अविश्रान्त निन्दा करते हुए, तथा—पैर पोंछनेमें भी घृणा होती है,—यह बार बार सुनाते हुए भी इन्द्रकी अलवान ओढ़कर, उस यात्रामें आत्म-रक्षा करते हुए घर गये । कुछ भी हो, हम लोगोंपर दया करके जो

वे व्याघ्र-कवलित हुए वगैर सशरीर वापिस लौट आये, उनके इसी अनुग्रहके आनन्दसे हम परिपूर्ण हो रहे थे। इतने उपद्रव-अत्याचारको हँसते हुए सहन करके और आज नावपर चढ़नेके शौककी परिसमाप्ति करके, उस दुर्जय शीतकी रातमे, केवल एक धोती-भरका सहारा लिये हुए, कॉपते कॉपते, हम लोग घर लौट आये।

**लि**खने बैठते ही बहुत दफे मैं आश्चर्यसे सोचता हूँ कि इस तरहकी बेसिलसिले घटनाएँ मेरे मनमे निपुणतासे किसने सजा रखी हैं ? जिस ढंगसे मैं लिख रहा हूँ उस ढंगसे वे एकके बाद एक श्रृंखलाबद्ध तो घटित हुई नहीं। और फिर सॉकलकी क्या सभी कड़ियाँ साबुत बनी हुई हैं ? सो भी नहीं। मुझे मालूम है कि कितनी ही घटनाएँ तो विस्मृत हो चुकी हैं, किन्तु फिर भी तो श्रृंखला नहीं टूटती। तो कौन फिर उन्हें नूतन करके जोड़ रखता है ?

और भी एक अचरजकी बात है। पण्डित लोग कहा करते हैं कि बड़ोंके बोझसे छोटे पिस जाते हैं। परन्तु यदि ऐसा-ही होता तो फिर जीवनकी प्रधान और मुख्य घटनाएँ तो अवश्य ही याद रहनेकी चीज़े होतीं। परन्तु-सो भी तो नहीं देखता हूँ। बचपनकी बातें कहते समय एकाएक मैंने देखा कि स्मृति-मन्दिरमें बहुत-सी तुच्छ क्षुद्र घटनाएँ भी, न जाने कैसे, बहुत बड़ी होकर ठाठसे बैठ गई हैं और बड़ी घटनाएँ छोटी बनकर न जाने कब कहीं झड़कर गिर गई हैं। इस लिए बोलते समय भी यही बात चरितार्थ होती है। तुच्छ बातें बड़ी होकर दिखाई देती हैं, और बड़ी याद भी नहीं आतीं। और फिर ऐसा क्यों होता है इसकी कैफियत भी पाठकोंको मैं नहीं दे सकता। जो होता है, सिर्फ उसे ही मैंने बता दिया है।

इसी प्रकारकी एक तुच्छ-सी बात है जो मनके भीतर इतने दिनो तक चुपचाप छिपी रहकर, इतनी बड़ी हो उठी है कि आज उसका पता पाकर मैं स्वयं भी बहुत विस्मित हो रहा हूँ। उसी बातको आज मैं पाठकोंको सुनाऊँगा। किन्तु, बात ठीक ठीक क्या है सो, जबतक कि मैं उसका पूरा परिचय न दे दूँ तबतक, उसका रूप किसी तरह भी स्पष्ट न होगा। क्योंकि, यदि मैं प्रारम्भमें ही कह दूँ कि वह एक 'प्रेमका इतिहास' है,—तो, उससे यद्यपि मिथ्या भाषणका पाप न

गेगा, किन्तु, वह व्यापार अपनी चेष्टासे जितना बढ़ा हो उठा है, मेरी भाषा शायद उसको भी उल्लघन कर जायगी। इसलिए बहुत ही सावधान होकर कहनेकी जरूरत है।

वह बहुत बादकी बात है। जीजीकी स्मृति भी उस समय धुँधली हो गई थी। जिनके मुखकी याद मनमें लाते ही, न मालूम कैसे, प्रथम यौवनकी उच्छृंखलता अपने आप अपना सिर झुका लेती है, उन जीजीकी याद उस समय उस तरह नहीं आती थी। यह उसी समयकी कहानी है। एक राजाके लड़केके द्वारा निमंत्रित होकर मैं उसकी शिकार-पार्टीमें जाकर शामिल हुआ था। उसके साथ बहुत समयतक स्कूलमें पढ़ा या, गुप-चुप अनेक बार उसके गणितके सवाल हल कर दिये थे,— इसीलिए वह मुझे खूब चाहता था। इसके बाद एन्ट्रेस क्लाससे हम दोनों अलग हो गये। मैं जानता हूँ कि राजाओके लड़कोंकी स्मरण-शक्ति कम हुआ करती है, किन्तु यह नहीं सोचा था कि वह मेरा स्मरण करके पत्र-व्यवहार करना शुरू कर देगा। बीचमें एक दिन उससे एकाएक मुलाकात हो गई। उसी समय वह बालिग हुआ था। बहुत-से जमा किये हुए रुपये उसके हाथ लगे और उसके बाद इत्यादि इत्यादि। राजाके कानोमें बात पहुँची थी,—अतिरजित होकर ही पहुँची थी, कि राईफल चलानेमें मैं बेजोड़ हूँ, तथा और भी कितने ही तरहके गुणोसे मैं, इस बीचमें ही, मण्डित हो गया हूँ कि जिनसे मैं एकमात्र बालिग राजपुत्रका अतरंग मित्र होनेके लिए सर्वथा योग्य हूँ। आत्मीय बधु बाधव तो अपने आदमीकी प्रशंसा कुछ बढ़ाकर ही करते हैं, नहीं तो सचमुच ही, इतनी विद्याएँ इतने अधिक परिमाणमें मैं उस छोटी-सी उम्रमें ही अर्जित करनेमें समर्थ हो गया था, यह अहंकार मुझे शोभा नहीं देता। कमसे कम कुछ विनय रखना अच्छा है। खैर, जाने दो इस बातको। शास्त्रकारोंने कहा है कि राजे-रजवाड़ोंके सादर आह्वानकी कभी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हिन्दूका लड़का ठहरा, शास्त्र-अमान्य तो कर नहीं सकता था, इसलिए मैं चला गया। स्टेशनसे दस बारह कोस हाथीपर बैठकर गया। देखा, बेशक राजपुत्रके बालिग होनेके सब लक्षण मौजूद हैं। कोई पाँच तम्बू गढे हुए हैं, एक स्वयं उनका, एक मित्रोका, एक मौकरोंका और एक रसोईका। इनके सिवाय और एक तबू कुछ फासलेपर था,—उसके दो हिस्से करके उनमें दो वेश्यायें और उनके साजिन्दे अड्डा जमाये थे।

सध्या हो चुकी है। प्रवेश करते ही मैं जान गया कि राजकुमारके खास

कमरेमे बहुत देरसे संगीतकी बैठक जमी हुई है। राजकुमारने बड़े आदरसे मेरा स्वागत किया। यहाँतक कि, आदरके अतिरेकसे खड़े होनेको तैयार होकर वे तकियेके सहारे लेट गये। मित्र-दोस्त, विह्वल कलकण्ठसे आइए, आइए, पधारिए, कहकर संवर्धना करने लगे। मैं सर्वथा अपरिचित था। किन्तु वह, उन लोगोंकी जो अवस्था थी, उससे अपरिचयके कारण रुकनेवाली नहीं थी।

ये 'बाईजी' पटनेसे, बहुत-सा रुपया पानेकी शर्तपर, दो सप्ताहके लिए आई थीं। इस काममें राजकुमारने जिस विवेचना और विचक्षणताका परिचय दिया था उसकी तारीफ तो करनी ही होगी। बाईजी खूब सुंदर, सुकण्ठ और गानेमें निपुण थीं।

मेरे प्रवेश करते ही गाना थम गया। इसके बाद समयोचित वार्तालाप और अदब-कायदेका कार्य समाप्त होनेमें भी कुछ समय चला गया। राजकुमारने अनुग्रह करके मुझसे गानेकी फरमाइश करनेका अनुरोध किया। राजाज्ञा पाकर पहले तो मैं अत्यन्त कुण्ठित हो उठा, किन्तु, थोड़ी ही देरमे मालूम हो गया कि, संगीतकी उस मजलिसमें, सिर्फ मैं ही कुछ धुंधला-सा देख सकता हूँ और सब ही छद्मदरके माफिक अन्धे हैं।

बाईजी खिल उठीं। पैसेके लोभसे बहुत-से काम किये जा सकते हैं सो मैं जानता था, किन्तु, इन निराट मूर्खोंके दरबारमे वीणा बजाना वास्तवमें ही, इतमी देरतक, उसे बड़ा कठिन-मालूम हो रहा था। इस दफे एक समझदार व्यक्ति पाकर मानो वे बच गईं। इसके बाद, रातको देर तक, मानो केवल मेरे लिए ही, उन्होंने अपनी समस्त विद्या, समस्त सौन्दर्य और कण्ठके समस्त माधुर्यमें हमारे चारों तरफकी उस समस्त कदर्य मदोन्मत्तताको डुबा दिया और अन्तमें वे स्तब्ध हो गईं।

बाईजी पटनेकी रहनेवाली थीं। नाम था 'प्यारी'। उस रात्रिको उन्होंने जिस तरह अपनी सारी शक्ति लगाकर गाना सुनाया उस तरह ज्ञायद पहले कभी नहीं सुनाया होगा। मैं तो मुग्ध हो गया था। गाना बन्द होते ही मेरे मुँहसे केवल यही निकला—'वाह, खूब !'

प्यारीने मुँह नीचा करके हँस दिया। इसके बाद दोनों हाथोको मस्तकपर लगाकर प्रणाम किया,—सलाम नहीं। मजलिस उस रातके लिए, खत्म हो गई।

उस समय दर्शकोंमें कोई सो रहा था, कोई तन्द्रामे था और अधिकांश

चेहोज थे । अपने तम्बूमें जानेके लिए बाईजी जब सदलबल बाहर निकल रही थीं, तब मैं आनन्दके अतिरेकसे हिन्दीमे बोल उठा, —“ बाईजी, मेरा बड़ा सौभाग्य है कि तुम्हारा गाना रोज दो सप्ताह तक सुननेको मिलेगा । ” बाईजी पहले तो ठिठककर खड़ी हो रहीं, पर दूसरे ही क्षण कुछ नजदीक आकर अत्यन्त कोमल कण्ठसे परिष्कृत बंगलामें बोली, “ रुपये लिये हैं, सो मुझे तो गाना ही पड़ेगा, परन्तु क्या आप इन पन्द्रह सोलह दिनोंतक इनकी मुसाहबी करते रहेंगे ? जाइए, कल ही आप अपने घर चले जाइए । ”

यह बात सुनकर हतबुद्धि-सा होकर मैं मानों काठ हो गया, और क्या-जवाब दूँ, यह ठीक कर सकनेके पहले ही देखा कि बाईजी तम्बूके बाहर हो गई हैं ।

सुबह शोर-गुल मचाकर कुमार साहब शिकारके लिए बाहर निकले । मद्य-मासकी तैयारी ही सबसे अधिक थी । साथमें दस-बारह शिकारी नौकर थे । पन्द्रह बन्दूके थीं—जिनमें छः राइफलें थीं । स्थान था एक अधसूखी नदीके दोनों किनारे । इस पार गाँव था और उस पार रेतका टीला । इस पार कोस-भस्तक बड़े बड़े सेमरके वृक्ष थे और उसपार रेतके ऊपर जगह जगह कास और कुशाके झुरमुट । यहाँ ही उन पन्द्रह बन्दूकोंको लेकर शिकार किया जायगा । सेमरके वृक्षोंपर मुझे कुछ कबूतरकी जातिके पक्षी दीख पड़े और अधसूखी नदीके मोड़के पास भी दो चकवा-चकई तैर रहे हैं ऐसा जान पड़ा ।

कौन किस ओर जाय, इस बातपर अत्यन्त उत्साहसे परामर्श करते करते, सबहीने दो दो प्याले चढ़ाकर देह और मनको वीरोंकी तरह कर लिया । मैंने बन्दूक नीचे रख दी । एक तो बाईजीके व्यग्यकी चोट खाकर रातसे ही मन विकल हो रहा था, उसपर यह शिकारका क्षेत्र देखकर तो सारा शरीर जल उठा ।

कुमारने पूछा, “ क्यों जी कान्त, तुम तो बड़े गुम सुम हो रहे हो ? अरे यह क्या ! बन्दूक ही रख दी ! ”

“ मैं पक्षियोंको नहीं मारता । ”

“ यह क्या जी ? क्यों, क्यों ? ”

“ मुँहपर रख निकलनेके बादसे मैंने छर्रवाली बन्दूक नहीं चलाई,—मैं उसे चलाना भूल गया हूँ । ”

कुमार साहब हँसते हँसते लोट-पोट हो गये । किन्तु उस हँसीका द्रव्यगुणसे कितना सम्बन्ध था, यह बात अकस्य दूसरी है ।-



सरजूका आँख-मुँह लाल हो उठा। वे इस दलके प्रधान शिकारी और राजपुत्रके प्रिय पार्श्वचर थे। उनके अचूक निशानेकी ख्याति मैंने आते ही सुन ली थी। वे स्रष्ट होकर बोले, “चिड़ियोकी शिकार क्या कुछ शर्मकी बात है ?”

मेरा मिजाज भी ठिकाने नहीं था, इसलिए जवाब दिया, “सबके लिए नहीं, परन्तु मेरे लिए तो है।—खैर, कुमार साहब, मेरी तबीयत ठीक नहीं है,” कहकर मैं तम्बूमें लौट आया। इसपर कौन हँसा, किसने आँखे मिचकाईं, किसने मुँह बनाया, सो मैंने नजर उठाकर भी नहीं देखा।

तम्बूमें लौटकर मैं फर्शपर चित लेटा ही था और एक प्याला चाह तैयार करनेका आदेश देकर एक सिगरेट पी ही रहा था कि बैरेने आकर अदबके साथ कहा “बाईजी आपसे मिलना चाहती हैं।” ठीक इसी बातकी मैं आशा कर रहा था और आशका भी। पूछा, “क्यों मिलना चाहती हैं ?”

“सो तो मैं नहीं जानता।”

“तुम कौन हो ?”

“मैं बाईजीका खानसामा हूँ।”

“बंगाली हो ?”

“जी हाँ, जातिका नाई हूँ। नाम मेरा रतन है।”

“बाईजी-हिन्दू हैं ?”

रतन हँसकर बोला, “न होतीं तो मैं कैसे रहता, बाबू ?”

मुझे साथ ले जाकर और तम्बूका दरवाजा दिखाकर रतन चला गया। पर्दा उठाकर भीतर देखा—कि बाईजी अकेली बैठी हुई प्रतीक्षा कर रही हैं। कल रातको पेशवाज और ओढनीके कारण मैं ठीक तौरसे पहिचान न सका था, परन्तु आज देखते ही पहिचान लिया कि हो कोई, पर बाईजी हैं बंगालीकी ही लड़की। बाईजी गरदकी साड़ी पहिने हुए मूल्यवान् कार्पेटके ऊपर बैठी थीं। भीगे हुए बिखरे बाल पीठके ऊपर फैल रहे थे। हाथोके पास पान-दान रक्खा था और सामने हुक्का। मुझे देखकर उठ खड़ी हुई और हँसकर सामनेका आसन, दिखाते हुए बोलीं, “बैठिए। आपके सामने अब और तमाखू नहीं पीऊँगी,—अरे रतन, हुक्का उठा ले जा। यह क्या, खड़े क्यों हैं, बैठ जाइए न ?”

रतन आकर हुक्का ले गया। बाईजी बोलीं, “आप तमाखू पीते हैं यह मैं जानती हूँ, किन्तु वूँ किस तरह ? और जगह आप चाहे जो करें, किन्तु मैं जान-बूझकर

## श्रीकान्त

तो आपको अपना हुक्का दे न सकूंगी। अच्छा, चुस्ट लायेंदती हूँ, पर मा-

“ ठहरो, ठहरो, जरूरत नहीं। मेरी जेबमें ही चुस्ट है। ”

“ है ? अच्छा तो ठण्डे होकर जरा बैठ जाइए, बहुत-सी बातें करनी हैं। भगवान् कब किससे मिला देते हैं सो कोई नहीं कह सकता, यह स्वप्नके भी अगोचर है।—शिकारके लिए गये थे, एकाएक लौट क्यों आये-? ”

“ तबीयत न लगी। ”

“ न लगनेकी ही बात है। कैसी निश्चुर है यह पुरुषोंकी जात। निरर्थक जीव-हत्या करनेमें इन्हें क्या मजा आता है सो ये ही जानें। बाबूजी तो अच्छे हैं न ? ”

“ बाबूजीका तो स्वर्गवास हो गया। ”

“ हैं, स्वर्गवास हो गया।—और माँ ? ”

“ वे तो उनसे भी पहले चल बसी थीं। ”

“ ओह,—तभी तो ! ” कहकर बाईजी एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर मेरी ओर देखती रह गईं। एक दफे तो जान पड़ा मानो उनकी आँखें छलछला आई हैं, किन्तु, शायद वह मेरी भूल हो। परतु, दूसरे ही क्षण जब वह बोलीं तब भूलके लिए कोई जगह न रही। उस मुखरा नारीका चंचल और परिहास-लघु कण्ठस्वर सच-मुच ही मृदु और आर्द्र हो उठा था। बोलीं, “ तो फिर यों कहो कि अब तुम्हारा जतन करनेवाला कोई न रहा। बुआजीके पास ही रहते हो न ?—नहीं तो, और फिर कहाँ रहोगे ? ब्याह हुआ नहीं, यह तो मैं देख ही रही हूँ। पढ़ते-लिखते हो ? या वह भी इसके साथ ही समाप्त कर दिया ? ”

अबतक तो मैं उसके कुतूहल और प्रश्नमालाको भरसक बरदाश्त करता रहा। किन्तु, न जाने क्यों, पिछली बात मानों मुझे एकाएक असह्य हो उठी। मैं खीझकर रूखे स्वरमें बोल उठा, “ अच्छा, कौन हो तुम ? तुम्हें जीवनमें कहीं देखा है, यह तो याद आता नहीं। मेरे सम्बन्धमें इतनी बातें तुम जानना ही क्यों चाहती हो ? और जाननेसे तुम्हें लाभ ही क्या है ? ”

बाईजीको गुस्सा न आया, वे हँसकर बोलीं, “ लाभ-हानि ही क्या सारमें सब कुछ है ? माया, ममता, प्यार-मुहब्बत कुछ नहीं ? मेरा नाम है प्यारी,—किन्तु, जब मेरा मुख देखकर भी न पहिचान सके, तब लडकपनका नाम सुनकर भी मुझे कैसे पहिचान सकोगे ? इसके सिवाय मैं तुम्हारे उस गाँवकी लडकी भी तो नहीं हूँ। ”

“अच्छा, तुम्हारा घर कहाँ है ?”

“नहीं, सो मैं नहीं बताऊँगी।”

“तो फिर, अपने बापका नाम ही बताओ ?”

बाईजी जीभ काटकर बोलीं, “वे स्वर्ग चले गये हैं,—राम राम, क्या उनका नाम इस मुँहसे उच्चारण कर सकती हूँ ?”

मैं अधीर हो उठा। बोला, “यदि नहीं कर सकती तो फिर मुझे तुमने पहिचाना किस तरह, यही बताओ ? शायद यह बतलानेमे कोई दोष न होगा।”

प्यारिने मेरे मनके भावको लक्ष्य करके मुसकरा दिया। कहा, “नहीं इसमें कुछ दोष नहीं है, परतु क्या तुम विश्वास कर सकोगे ?”

“कह देखो न।”

प्यारिने कहा, “तुम्हें पहचाना था महाराज, दुर्बुद्धिकी मारसे,—और किस तरह ? तुमने मेरी आँखोंसे जितना पानी बहवाया है, सौभाग्यसे सूर्यदेवने उसे सुखा दिया है। नहीं तो, आँखोंके उस जलसे एक तालाब भर गया होता।—पूछती हूँ, क्या इसपर विश्वास कर सकते हो ?”

सचमुच ही मैं विश्वास न कर सका। परतु वह मेरी ही भूल थी। उस समय यह किसी तरह भी ख्याल नहीं आया कि प्यारीके होठोंकी गठन कुछ इस किस्मकी हैं कि मानो हर बात वह मजाकमें ही कहती है और मन ही मन हँसती है। मैं चुप रह गया। वह भी कुछ देरतक चुप रहकर इस बार सचमुच ही हँस पडी। परंतु, इतनी देरमें न जाने किस तरह मुझे जान पड़ा कि उसने अपनी लजित अवस्थाको मानो सँभाल लिया है। हँसकर कहा, “नहीं महाराज, तुम्हे जितना भोला समझा था उतने भोले तुम नहीं हो। यह जो मेरा एक कहनेका ढग है, इसे तुमने बराबर समझ लिया है। किन्तु, यह भी कहती हूँ कि तुम्हारी अपेक्षा अधिक बुद्धिवान् भी इस बातपर अविश्वास नहीं कर सकते। सो, यदि आप इतने अधिक बुद्धिमान् हैं तो यह मुसाहबीका व्यवसाय आपने किसलिए ग्रहण किया है ? यह नौकरी तो तुम्हारे जैसे आदमीसे होनेकी नहीं। जाओ, यहाँसे चटपट खिसक जाओ।”

क्रोधके मारे मेरा सर्वाङ्ग जल उठा, किन्तु मैंने उसे प्रकट नहीं होने दिया। सहज भावसे कहा, “नौकरी जितने दिन हो, उतने ही दिन अच्छी। बैठेसे बेगार मूली,—समझीं न ? अच्छा, अब मैं जाता हूँ। बाहरके लोग शायद और ही

कुछ समझ बैठें । ”

प्यारी बोली, “ समझ बैठे, तो यह तुन्हारे लिए सौभाग्यकी बात है महाराज !  
क्या कोई अफसोसकी बात है ? ”

उत्तर दिये बिना ही जब मैं द्वारपर आ खड़ा हुआ तब वह अकस्मात् हँसीकी फुहार छोड़कर कह उठी, “ किन्तु देखो बाबू, मेरी वह आँखोंके आँसुओंकी बात मत भूल जाना । दोस्तोंमें, कुमार साहबके दरबारमें, प्रकट कर दोगे तो सभव है, तुम्हारी तकदीर खुल जाय । ”

मैं उत्तर दिये बिना ही बाहर हो गया । परतु, उस निर्लज्जाकी वह हँसी और वह कदर्य परिहास मेरे सर्वाङ्गमें व्याप्त होकर बिच्छूके काँटेकी तरह जलने लगा ।

अपने स्थानपर आकर, एक प्याला चाह पीकर और चुरुट मुँहमें दाबकर अपनेको भर-सक ठण्डा करके मैं सोचने लगा—यह कौन है ? मैं अपनी पाँच-छः वर्षकी उम्र तककी सब घटनाएँ स्पष्ट तौरसे याद कर सकता हूँ । किन्तु, अतीतमें जितनी भी दूरतक दृष्टि जा सकती थी उतनी दूरतक मैंने खूब छान-बीनकर देखा, कहीं भी इस प्यारीको नहीं खोज पाया । फिर भी, यह मुझे खूब पहिचानती है । बुआ तककी बात जानती है । मैं दरिद्र हूँ, सो भी इससे अजात नहीं है । इसलिए, और तो कोई गहरी चाल इसमें हो नहीं सकती, फिर भी, जिस तरह हो, मुझे यहाँसे भगा देना चाहती है । परंतु, यह किसलिए ? मेरे यहाँ रहने न रहनेसे इसे क्या ? बातों ही बातोंमें उस समय इसने कहा था—संसारमें लाभ-हानि ही क्या सब कुछ है ? प्यार-मुहब्बत कुछ नहीं ? मैंने जिसे पहले कभी आँखसे भी नहीं देखा, उसके मुँहकी यह बात याद करके भी मुझे हँसी आ गई । किन्तु, सारी बातचीतको दबाकर, उसका आखिरी व्यग्य ही मानो मुझे लगातार छेदने लगा ।

सध्याके समय शिकारियोंका दल लौट आया । नौकरोंके मुँहसे सुना कि आठ पक्षी मारकर लाये गये हैं । कुमारने मुझे बुला भेजा । तबीयत ठीक न होनेका बहाना करके बिस्तरोंपर ही मैं पड़ा रहा, और इसी तरह पड़े पड़े रातको देरतक प्यारीका गान और शराबियोंकी वाहवाह सुनता रहा ।

इसके बादके तीन-चार दिन प्रायः एक ही तरहसे कट गये । ‘ प्रायः ? कहता हूँ, क्योंकि, सिर्फ शिकारको छोड़कर और सब बातें रोज एक-सी ही होती थीं । प्यारीका अभिशाप मानो फल गया हो,—प्राणि-हत्याके प्रति किसीमें कुछ भी

उत्साह मैंने नहीं देखा । मानो कोई तम्बूके बाहर भी न निकलना चाहता हो । फिर भी मुझे उन्होंने नहीं छोड़ा । मेरे वहाँसे भाग जानेके लिए कोई विशेष कारण हो, सो बात न थी; किन्तु इस बाईजीके प्रति मुझे मानो घोर अरुचि हो गई ।— वह जब हाज़िर होती, तब मानो मुझे कोई मार रहा हो ऐसा लगता,— उठकर वहाँसे जब चला जाता तभी कुछ शान्ति मिलती । उठ न सकता, तो फिर और किसी ओर मुँह फिराकर, किसीके भी साथ, बातचीत करते हुए अन्यमनस्क होनेकी चेष्टा किया करता । इसपर भी वह हर समय मुझसे आँख मिलानेकी हजार तरहसे चेष्टा किया करती, यह भी मैं अच्छी तरह अनुभव करता । शुरूमें दो-तीन दिन उसने मुझे लक्ष्य करके परिहास करनेकी चेष्टा भी की, किन्तु, फिर मेरे भावको देखकर वह बिलकुल सन्न हो रही ।

शनिवारका दिन था । अब किसी तरह भी मैं ठहर नहीं सकता । खा-पी चुकनेके बाद ही आज रवाना हो जाऊँगा, यह स्थिर हो जानेसे आज सुबहसे ही गाने-बजानेकी बैठक जम गई थी । थककर बाईजीने गाना बन्द किया ही था कि हठात् सारी कहानियोंसे श्रेष्ठ भूतोकी कहानी शुरू हो गई । पल-भरमे जो जहाँ था उसने वहीं आग्रहके साथ वक्ताको धेर लिया ।

पहले तो मैं लापर्वाहीसे सुनता रहा । परन्तु अन्तमे उद्ग्रीव होकर बैठ गया । वक्ता थे गाँवके ही एक वृद्ध हिन्दुस्तानी महाशय । कहानी कैसे कहनी चाहिए सो वे जानते थे । वे कह रहे थे, कि, “प्रेत-योनिके विषयमें यदि किसीको सदेह हो,—तो वह आज, इस शनिवारकी अमावास्या तिथिको, इस गाँवमें आकर, अपने चक्षु-कणोंका विवाद भंजन कर डाले । वह चाहे जिस जातिका, चाहे जैसा, आदमी हो और चाहे जितने आदमियोंको साथ लेकर जाय, आजकी रात उसका महाश्मशानको जाना निष्फल नहीं होगा । आजकी घोर रात्रिमें उस श्मशानचारी प्रेतात्माको सिर्फ आँखसे ही देखा जा सकता हो सो नहीं,—उसका कण्ठस्वर भी सुना जा सकता है और इच्छा करनेपर उससे बातचीत भी की जा सकती है ।” मैंने, अपने वचनकी बातें याद करके, हँस दिया । वृद्ध महाशय उसे लक्ष्य करके बोले, “आप मेरे पास आइए ।” मैं उनके निकट खिसक गया । उन्होंने पूछा, “आप विश्वास नहीं करते ?”

“नहीं ।”

“क्यों नहीं करते ? नहीं करनेका क्या कोई विशेष हेतु है ?”

“ नहीं । ”

“ तो फिर ? इस गाँवमें ही दो-एक ऐसे सिद्ध पुरुष हैं जिन्होंने अपनी आँखों देखा है । फिर भी जो आप विश्वास नहीं करते, मुँहपर हँसते हैं, सो यह केवल दो पन्ने अंग्रेजी पढ़ लेनेका फल है । विशेष करके बगाली लोग तो नास्तिक म्लेच्छ हो गये हैं । ” कहौंकी बात कहौं आ पड़ी, देखकर मैं अवाक् हो गया । बोला, “ देखिए, इस सम्बन्धमें मैं तर्क नहीं करना चाहता । मेरा विश्वास मेरे पास है । मैं भले ही नास्तिक होऊँ, म्लेच्छ होऊँ,—पर भूत नहीं मानता । जो कहते हैं कि हमने आँखोंसे देखा है वे या तो ठगे गये हैं, अथवा झूठे हैं, यही मेरी धारणा है । ”

उस भले आदमीने चटसे मेरे दाहिने हाथको पकडकर कहा, “ क्या आप आज रातको श्मशान जा सकते हैं ? ” मैं हँसकर बोला, “ जा सकता हूँ, बचपनसे ही मैं अनेक रात्रियोंमें अनेक श्मशानोंमें गया हूँ । ” वृद्ध चिढ़कर-बोल उठे, “ आप शेखी मत ब्रधारिए बाबू । ” इतना कहकर, उन्होंने उस श्मशानका, सारे श्रोताओंको स्तम्भित कर देनेवाला, महा भयावह विवरण विगतवार कहना शुरू कर दिया । “ यह श्मशान कुछ ऐसा वैसा स्थान नहीं है । यह महाश्मशान है । यहाँपर हजारों नर-मुण्ड गिने जा सकते हैं । इस श्मशानमें, हर रातको, महाभैरवी अपनी साथियों सहित नर-मुण्डोंसे गेंद खेलती है और नृत्य करती हुई घूमती हैं । उनके खिलखिलाकर हँसनेके विकट शब्दसे, कितनी ही दफे, कितने ही अविश्वासी अंगरेज जजों, मॅजिस्ट्रेटोंके भी हृदयकी धड़कन बन्द हो गई है । ”—इस किस्मकी लोमहर्षक कहानी वे इस तरहसे कहने लगे कि इतने लोगोंके बीच, दिनके समय, तम्बूके भीतर बैठे रहनेपर भी, बहुतसे लोगोंके सिरके बालतक खड़े हो गये । तिरछी नजरसे मैंने देखा कि प्यारी न जाने कब पास आकर बैठ गई है और उन बातोंको मानो सारे शरीरसे निगल रही है ।

इस तरह जब यह महाश्मशानका इतिहास समाप्त हुआ तब वक्ताने अभिमानके साथ मेरी ओर कटाक्ष फेंककर प्रश्न किया, “ क्यों बाबू साहब, आप जायेंगे ? ”

“ जाऊँगा क्यों नहीं । ”

“ जाओगे ? अच्छा, आपकी मरजी । प्राण जानेपर—”

मैं हँसकर बोला, “ नहीं महाशय, नहीं । प्राण जानेपर भी तुम्हें दोष न दिया जायगा, तुम इसे मत डरो । किन्तु बेजानी जगहमे मैं भी तो खाली हाथ नहीं जाऊँगा,—बन्दूक साथ जायगी । ”

आलोचना अत्यधिक तेज हो उठी है, यह देखकर मैं वहाँसे उठ गया । “पक्षी मारनेकी तो हिम्मत नहीं पडती, बन्दूककी गोलीसे भूत मारेंगे साहब,—बगाली लोग अँग्रेजी पढ़कर हिन्दूशास्त्र थोड़े ही मानते हैं,—ये लोग मुर्गातक तो खा जाते हैं,—मुँहसे ये लोग कितनी ही शेखी क्यों न मारे, कामके समय भाग खड़े हाँते हैं,—एक घौस पड़ते ही इनके दन्त-कपाट लग जाते हैं,—” इसी तरहकी समालोचना होना शुरु हुआ । अर्थात्, जिन सब सूक्ष्म युक्ति-तर्कोंकी अवतारणा करनेसे हमारे राजा रईसोंको आनन्द मिलता है और जो उनके मस्तिष्कको अतिक्रम नहीं कर जाते,—अर्थात् वे स्वयं भी जिनमे घुसकर दो शब्द कह सकते हैं—ऐसे ही वे सब युक्ति-तर्क थे ।

इन लोगोंके दलमें सिर्फ एक आदमी ऐसा था जिसने स्वीकार किया कि मैं शिकार करना नहीं जानता और जो साधारणतः बातचीत भी कम करता था, शराब भी कम पीता था । नाम था उसका पुरुषोत्तम । ग्रामको आकर उसने मुझे पकड लिया और कहा “ मैं भी साथ चलेँगा,—क्योंकि इसके पहले मैंने भी कभी भूत नहीं देखा । इसलिए, आज जब ऐसा अच्छा मौका मिला है, तब मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता, ”—ऐसा कहकर वह खूब हँसने लगा । मैंने पूछा, “ तुम क्या भूत नहीं मानते ? ”

“ बिल्कुल नहीं । ”

“ क्यों नहीं मानते ? ”

“ भूत नहीं है, इसलिए नहीं मानता ”, इतना कहकर वह प्रचलित तर्क उठा-उठाकर वारवार अस्वीकार करने लगा । किन्तु, मैंने इतने सहजमें उसे साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया । क्यों कि, बहुत दिनोंकी जानकारीसे मैंने जाना था कि, यह सब युक्ति-तर्कका व्यापार नहीं,—यह तो सस्कार है । बुद्धिके द्वारा जो बिल्कुल ही नहीं मानते, वे भी भयके स्थानपर आ पड़नेपर भयके मोरे मूर्छित हो जाते हैं ।

पुरुषोत्तम किन्तु इस तरह सहजमें छोड़नेवाला नहीं था । वह लॉग कसकर एक पक्के बाँसकी लकड़ी कंधेपर रखकर बोला, “ श्रीकान्त बाबू, आपकी इच्छा

हो तो भले ही आप बन्दूक ले चलें, किन्तु, अपने हाथमे लाठी रहते, भूत ही चाहे प्रेत,—मैं किसीको भी पासमें न फटकने दूँगा । ”

“ किन्तु वक्तपर हाथमें लाठी रहेगी भी ? ”

“ ठीक इसी तरह रहेगी बाबू, आप उस समय देख लेना । कोस-भरका रास्ता है, रातको ग्यारहके भीतर ही खाना हो जाना चाहिए । ”

मैंने देखा, उसका आग्रह मानो कुछ अतिरिक्त-सा है ।

जानेके लिए उस समय भी करीब घण्टे-भरकी देर थी । मैं तम्बूके बाहर टहलकर, इस विषयपर मन ही मन आन्दोलन करके, देख रहा था कि वस्तु वास्तवमें क्या हो सकती है । इन सब विषयोंमें मैं जिसका शिष्य था, उसे भूतका भय बिल्कुल नहीं था । लड़कपनकी बातें याद आ रही थीं,—उस रात्रिको जब इन्द्रने कहा था, “ श्रीकान्त, मन ही मन राम-नाम लेता रह, वह लड़का मेरे पीछे बैठा हुआ है—” केवल उसी दिन भयके मारे मैं बेहोश हो गया था, और किसी दिन नहीं । फिर डरनेका मौका ही नहीं आया । किन्तु आजकी बात सच हो, तो वह वस्तु है क्या ? इन्द्र स्वयं भूतमे विश्वास करता था । किन्तु उसने भी कभी आँखोंसे नहीं देखा । मैं भी अपने मन ही मन चाहे जितना अविश्वास क्यों न करूँ, स्थान और कालके प्रभावसे मेरे शरीरमें उस समय सनसनी न पैदा हो, यह बात नहीं । सहसा सामनेके उस दुर्भेद्य अमावास्याके अन्धकारकी ओर देखकर मुझे एक और अमावास्याकी रातकी बात याद आ गई । वह दिन भी ऐसा ही शनिवार था ।

पाँच-छह वर्ष पहले, हमारी पढ़ाईसिन, हतभागिनी नीरू जीजी बाल-विधवा होकर भी जब प्रसूति-रोगसे पीड़ित होकर और छह महीनेतक दुख भोग भोग कर मरीं, तब उनकी मृत्यु-शय्याके पार्श्वमें मेरे सिवा और कोई नहीं था । बागके बीच एक मिट्टीके घरमें वे अकेली रहती थीं । सब लोगोंकी सब तरहके रोग-शोकमें, सम्पत्ति-विपत्तिमें इतनी अधिक सेवा करनेवाली, निःस्वार्थ-परोपकारिणी स्त्री मुहल्ले-भरमें और कोई नहीं थी । कितनी स्त्रियोंको लिखा-पढ़ाकर, सुईका काम सिखाकर और गृहस्थीके सब किस्मके दुरूह कार्य समझाकर, उन्होंने मनुष्य बना दिया था, इसकी कोई गिनती नहीं थी । अत्यन्त स्निग्ध शान्त-स्वभाव और चरित्रके कारण मुहल्लेके लोग भी उन्हें कुछ कम नहीं चाहते थे । किन्तु उन्हीं नीरू जीजीका जब तीस वर्षकी उम्रमें हठात् पाँव फिसल गया, और भगवानने



इस अत्यन्त कठिन व्याधिके आघातसे उनका जीवन-भरका ऊँचा मस्तक बिल्कुल मिट्टीमें मिला दिया, तब मुहल्लेके किसी भी आदमीने उस दुर्भागिनीका उद्धार करनेके लिए हाथ नहीं बढ़ाया। पाप-स्पर्श-लेश-हीन निर्मल हिन्दू समाजने उस हतभागिनीके मुखके सामने ही अपने सब खिड़की-दरवाजे बन्द कर लिये, और जिस मुहल्लेमें शायद एक भी आदमी ऐसा नहीं था जिसने कि, किसी न किसी तरह नीरू जीजीके हाथकी प्रेमपूर्ण सेवाका उपभोग न किया हो, उसी मुहल्लेके एक कोनेमें, अपनी अन्तिम शय्या डालकर वह दुर्भागिनी, घृणा और लजाके मारे सिर नीचा किये हुए अकेली, एक एक दिन गिनती हुई, सुदीर्घ छःमहीने तक विना चिकित्साके पडी पडी, अपने पैर फिसलनेका प्रायश्चित्त करके, श्रावण महीनेकी एक आधी रातके समय, इस लोकको त्यागकर जिस लोकको चली गई। इसका ठीक ठीक ब्यौरा चाहे जिस स्मार्त पण्डितसे पूछते ही जाना जा सकता है।

मेरी बुआ अत्यन्त गुप्त रीतिसे उनकी सहायता करती थीं, यह बात मैं और मेरे घरकी एक बूढ़ी दासीके सिवाय इस दुनियामें और कोई नहीं जानता था। बुआ एक दिन मुझे अकेलेमें बुलाकर बोलीं, “ भइया श्रीकान्त, तू तो इस तरह रोग-शोकमें जाकर अनेकोंकी खबर लिया करता है, उस छोरीको भी एकाध दफे क्यों नहीं देख आया करता ? ” तबसे मैं बराबर बीच बीचमें जाकर उन्हें देखा करता और बुआके पैसोंसे यह चीज,—वह चीज,—खरीद कर दे आया करता। उनकी मृत्युके समय केवल मैं ही अकेला उनके पास था। मरण-समयमें ऐसा परिपूर्ण विकार और परिपूर्ण ज्ञान मैंने और किसीके नहीं देखा। विश्वास न करने पर भी, भयके मारे शरीरमें जो सनसनी फैल जाती है, उसीके उदाहरणस्वरूप मैं यह घटना लिख रहा हूँ।

वह श्रावणकी अमावास्याका दिन था। रात्रिके बारह बजनेके बाद आँधी और पानीके प्रकोपसे पृथ्वी मानो अपने स्थानसे च्युत होनेकी तैयारी कर रही थी। सब खिड़की-दरवाजे बन्द थे,—मैं खाटके पास ही एक बहुत पुरानी आधी टूटी हुई आराम-कुर्सीपर लेटा हुआ था। नीरू जीजीने अपने स्वाभाविक मुक्त स्वरसे मुझे अपने पास बुलाकर, हाथ उठाकर, मेरा कान अपने मुखके पास ले आकर, धीरेसे कहा, “ श्रीकान्त, तू अपने घर जा। ”

“ सो क्यों नीरू जीजी, ऐसे आँधी पानीमें ? ”

“ रहने दे आँधी-पानी। प्राण तो पहले हैं। ” वे भ्रममें प्रलप कर रही हैं

ऐसा समझकर मैं बोला, “अच्छा, जाता हूँ, पानी जरा थम जाने दो।” नीरू जीजी अत्यन्त चिन्तित होकर बोल उठीं, “नहीं, नहीं, श्रीकान्त, तू जा, जा भाई, जा,—अब थोड़ी भी देर मत ठहर,—जल्दी भाग जा।” इस दफे उनके कण्ठ-स्वरके भावसे मेरी छातीका भीतरी भाग काँप उठा। मैं बोला, “तुझसे जानेके लिए क्यों कहती हो?”

प्रत्युत्तरमे, मेरा हाथ खींचकर और बन्द खिड़कीकी ओर लक्ष्य करके, वे चिल्ला उठीं, “जायगा नहीं, तो क्या जान दे देगा? देखता नहीं है, मुझे ले जानेके लिए वे काले काले सिपाही आये हैं। तू यहाँपर मौजूद है, इसीलिए वे खिड़कीमेंसे ही मुझे डरा रहे हैं।”

इसके बाद उन्होंने कहना शुरू किया—‘वे इस खाटके नीचे हैं, वे सिरके ऊपर हैं। वे मारने आ रहे हैं। यह लिया। वह पकड़ लिया।’ यह चीत्कार रातके अंतिम समयमे तब समाप्त हुआ जब कि उनके प्राण भी प्रायः शेष हो चुके थे।

उक्त घटना आज भी मेरी छातीके भीतर गहरी जमकर बैठी हुई है। उस रात्रिको मुझे डर तो लगा ही था,—याद-सा आता है कि मानों कुछ चेहरे भी देखे थे। यह सच है कि इस समय उस घटनाकी याद आनेसे हँसी आती है, परंतु, यदि मुझे उस समय इस बातपर असशय विश्वास न होता, कि किवाड़ खोलकर बाहर होते ही मैं नीरू जीजीके काले काले सिपाही-सन्तारियोंकी भीड़में जाकर पड़ जाऊँगा, तो, उस दिन, अमावास्याके उस घोर दुर्योगको तुच्छ करके भी शायद मैं भाग खड़ा होता। साथ ही यह सब कुछ भी नहीं है, कुछ भी न था, यह भी जानता था, और मरणासन्न व्यक्ति केवल निदारुण विकारकी बेहोशीमें ही यह प्रलाप कर रहा था, सो भी समझता था। इतनेमें—

“बाबू?”

चौककर मैं घूमा, देखा, रतन है।

“क्या है रे?”

“बाईजीने प्रणाम कहा है।”

जितना मैं विस्मित हुआ उतना ही खीझा भी। इतनी रातको अकस्मात् बुला भेजना केवल अत्यन्त अपमानकारक स्पर्धा ही मालूम हुई हो, सो बात नहीं, गत तीन-चार दिनोंके दोनों तरफके व्यवहारको याद करके भी यह प्रणाम कहला भेजना मानों मुझे बिलकुल बेहूदा मालूम हुआ। किन्तु, इसके फलस्वरूप

नौकरके सामने किसी तरहकी उत्तेजना प्रकट न हो जाय, इस आशंकासे अपने आपको प्राणपणसे सँभालकर मैंने कहा, “ आज मेरे पास समय नहीं है, रतन, मुझे बाहर जाना है, कल मिल सकूँगा । ”

रतन सिखाया-पढाया नौकर था,—अदब कायदेमे पक्का । अत्यन्त आदर-भरे मृदु-स्वरसे बोला, “ बड़ी जरूरत है बाबूजी, एक दफे अपने कदमोकी धूल देनी ही होगी । नहीं तो, बाईजीने कहा है, वे स्वय ही आ जायँगी । ”—सर्वनाश ! इस तम्बूमे इतनी रातको, इतने लोगोके सामने ! मैं बोला, “ तू समझाकर कहना रतन, आज नहीं, कल सबेरे ही मिल लूँगा । आज तो मैं किसी भी तरह नहीं जा सकता । ” रतन बोला, “ तो फिर वे ही आयँगी । बाबूजी, मैं गत पँच वर्षोंसे देख रहा हूँ कि बाईजीकी बातमे कभी जरा भी फर्क नहीं पडता । आप नहीं चलेगे तो वे निश्चय ही आवँगी । ”

इस अन्याय्य असगत ज़िदको देखकर मैं एड़ीसे चोटी तक जल उठा । बोला, “ अच्छा ठहरो, मैं आता हूँ । ” तम्बूके भीतर देखा, वारुणीकी कृपासे जाग्रत कोई नहीं है । पुरुषोत्तम भी गभीर निद्रामें मग्न है । नौकरोके तम्बूमें सिर्फ दो-चार आदमी जाग रहे हैं । झटपट बूट पहिनकर एक कोट शरीरपर डाल लिया । राइफल ठीक रखी ही थी । उसे हाथमे लेकर रतनके साथ साथ बाईजीके तम्बूमे पहुँचा । प्यारी सामने ही खड़ी थी । मुझे आपादमस्तक बार बार देखती हुई, किन्ती तरहकी भूमिका बाँधे चौर ही, क्रुद्ध स्वरमे बोल उठी, “ ममान-असानमे तुम्हारा जाना न हो सकेगा,—किसी तरह भी नहीं । ”

बहुत ही आश्चर्यचकित होकर मैं बोला, “ क्यों ? ”

“ क्यों और क्या ? भूत-प्रेत क्या हैं नहीं, जो इस शनिवारकी आमावास्याको तुम मन्त्रान जाओगे ? क्या तुम अपने प्राणोको लेकर फिर लौट आ सकोगे वहाँसे ? ”

इतना कहकर प्यारी अकस्मात् रोने लगी और आँसुओंकी अविरल धारा बहाने लगी । मैं विह्वल-सा होकर चुपचाप उसकी ओर देखता रह गया । क्या करूँ, क्या जवाब दूँ, कुछ सोच ही न सका । सोच न सकनेमें अचरजकी बात ही क्या थी ? जिससे जान नहीं, पहिचान नहीं, वह यदि हिताकाशासे आधी रातको बुलाकर ख्वाहमख्वाह रोना शुरू कर दे,—तो कौन है ऐसा जो हत-बुद्धि न हो जाय ? मेरा जवाब न पाकर प्यारीने आँखें पोंछते हुए कहा, “ तुम क्या

किसी दिन भी शान्त-शिष्ट नहीं होओगे ? ऐसे हठी बने रहकर ही जिन्दगी बिता दोगे ? जाओ, देखूँ तुम कैसे जाते हो ? मैं भी फिर तुम्हारे साथ चलूँगी ।” इतना कहकर उसने शाल उठाकर अपने शरीरपर डालनेकी तैयारी कर दी ।

मैने सक्षेपमें कहा, “ अच्छा है, चलो । ” मेरे इस छिपे हुए तानेसे जल-भुनकर प्यारी बोली, “ आहा ! देश-विदेशमें तब तो तुम्हारी सुख्यातिकी सीमा-परिसीमा न रहेगी !—बाबू शिकार खेलनेके लिए आकर, एक नाचनेवालीको साथ लेकर, आधी रातको भूत देखने गये थे ! वाह ! मैं पूछती हूँ, घरसे क्या बिल्कुल ही ‘ आऊट ’ होकर आये हो ? घृणा-विरक्ति, लाज-शरम आदि क्या कुछ भी नहीं रह गई ? ” यह कहते कहते उसका तीव्र कण्ठ मानों आर्द्र होकर भारी हो गया । बोली, “ कभी तो तुम ऐसे नहीं थे । तुम्हारा इतना अधःपतन होगा, सो तो किसीने भी कभी सोचा-समझा न था । ” उसकी पिछली बातपर और कोई समय होता तो मैं इतना खीझ उठता कि जिसका पार न रहता, परन्तु, इस समय क्रोध नहीं आया । मन ही मन मुझे लगा कि प्यारीको मानो मैने पहिचान लिया है । ऐसा क्यों मनमें आया सो फिर कहूँगा । उस समय मैं बोला, “ लोगोंके सोचने-समझनेका मूल्य कितना है, सो तो तुम खुद भी जानती हो । तुम भी इतने अधःपतनके रास्ते जाओगी, सो भी क्या कभी किसीने सोचा था ? ”

क्षण-भरके लिए प्यारीके मुखके ऊपर गरत् ऋतुकी बदलीवाली चोंदनीके समान हँसीकी एक सहज आभा दिखाई दी । किन्तु, वह क्षण-भरके लिए ही । दूसरे ही क्षण उसने डरती हुई आवाजसे कहा, “ मेरे विषयमें तुम क्या जानते हो ? कौन हूँ मैं, ब्रताओ ? ”

“ तुम हो प्यारी । ”

“ सो तो सभी जानते हैं । ”

“ सब जो नहीं जानते, सो भी मैं जानता हूँ,—उसे सुनकर क्या तुम खुश होओगी ? यदि होती तो खुद ही अपना परिचय देती । किन्तु जब नहीं दिया है, तब मेरे मुँहसे भी कोई बात नहीं सुन पाओगी । इस बीच सोचकर देखो, अपने आपको प्रकट करोगी कि नहीं ? किन्तु अब और समय नहीं है,—मैं जाता हूँ । ”

प्यारिने बिजलीकी-सी तेजीके साथ मेरा रास्ता रोककर कहा, “ यदि न जाने दूँ, तो क्या जबरन् चले जाओगे ? ”

“ किन्तु, जाने ही क्यों न दोगी ? ”

प्यारी बोली, “ जाने दूँ ? सचमुचमे क्या भूत नहीं होते जो तुम्हारे ‘ जाने दो ’ कहनेहीसे जाने दूँगी ? मैं कहे देती हूँ कि मैं अभी ही ‘ मैयारी मैया, ’ चिंझाकर हाट लगा दूँगी । ” यह कहकर उसने बन्दूक छीन लेनेकी चेष्टा की । मैं एक कदम पीछे हट गया । कुछ क्षणोंसे मेरी खीझ हँसीके रूपमे परिवर्तित हो रही थी । इस दफे खूब हँसकर कह दिया, “ सचमुचके भूत होते हैं कि नहीं, सो तो मैं नहीं जानता, परन्तु झूठ-मूठके भूत हैं, यह जरूर जानता हूँ । वे सामने खडे होकर बातचीत करते हैं, रोते हैं, रास्ता रोकते हैं,—एसे न जाने कितनी तरहके कीर्तिके काम करते हैं,—और जरूरत पडनेपर गर्दन दबोचकर खा भी जाते हैं । ”

प्यारी मलिन हो गई और क्षण-भरके लिए शायद सोच न सकी कि क्या कहे । इसके बाद बोली, “ यदि ऐसी बात है, तो जो तुम यह कहते हो, कि तुमने मुझे पहचान लिया, सो तुम्हारी भूल है । वे अनेक कीर्तिके काम करते हैं यह सच है, किन्तु गर्दन दबोचनेके लिए रास्ता रोककर नहीं खडे होते । उन्हे अपने-परायेका बोध होता है । ” मैंने फिर भी हँसकर प्रश्न किया, “ यह तो हुई तुम्हारी खुदकी बात, किन्तु तुम क्या भूत हो ? ”

प्यारी बोली, “ भूत ही तो हूँ, और नहीं तो क्या ? जो लोग मरकर भी नहीं मरते, वे ही तो भूत हैं, यही तो तुम्हारे कहनेका मतलब है ? ” थोड़ी देर ठहरकर वह स्वयं ही फिर कहने लगी, “ एक हिसाबसे तो, जो मैं मर चुकी हूँ सो सत्य है । किन्तु, सच हो चोहे झूठ, अपने मरनेकी बात मैंने प्रसिद्ध नहीं की, मामाके जरिये मॉने फैलाई थी । सुनना चाहते हो सब हाल ? ” मरनेकी यह बात सुनते ही मेरा सशय दूर हो गया । मैंने ठीक पहिचान लिया कि यह राजलक्ष्मी है । बहुत दिन पहले यह अपनी माताके सग तीर्थयात्रा करने गई थी और फिर लौटकर नहीं आई । मॉने गॉवमें आकर यह बात प्रसिद्ध कर दी कि काशीमें हैजेकी बीमारीसे वह मर गई ।—उसे मैंने कभी देखा है, यह बात अवश्य ही मुझे याद न आ रही थी किन्तु उसकी एक आदतपर, मैं जबसे यहाँ आया था, तभीसे, ध्यान दे रहा था । जब वह गुस्से होती थी तब दाँतोंके नीचे अधर दबा लिया करती थी । कभी कहीं किसीको मानों ठीक इसी तरह करते अनेक बार देखा है, केवल यही बात बार बार मनमे आती थी । किन्तु वह कौन था, कहाँ देखा था, कब देखा था,—सो कुछ भी याद नहीं आता था । वही राजलक्ष्मी आज ऐसी हो गई है, यह देखकर मैं क्षण-भरके लिए अचरजसे अभिभूत हो गया । मैं

जब अपने गाँवके मनसा पडितकी पाठशालामें सब छात्रोंका सरदार था,—तब इसके दो पुस्तके कुलीन बापने अपना एक और ब्याह करके इसकी माँको घरसे निकाल दिया । पतिके द्वारा परित्यक्ता माता, सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मी नामक दोनों कन्याओंको लेकर अपने बापके घर चली आई । उम्र इसकी उस समय आठ-नौकी होगी और सुरलक्ष्मीकी बारह-तेरहकी । इसका रङ्ग तो अर्धश्य ही खूब उज्ज्वल था किन्तु मलेरिया और प्लीहाके मारे पेट मटकेकी तरह, हाथ पैर लकड़ीकी तरह, सिरके बाल तौब्रेकी सलाहयोंके समान थे और कितने थे सो भी गिने जा सकते थे । मेरी मारके डरसे यह लड़की करोदेकी झाड़ीमें घुसकर करोंदोंकी माला गूथ लाकर मुझे दिया करती थी । यदि वह माला किसी दिन छोटी होती तो, मैं पुराना पाठ पूछकर, इसे जी भरकर चपतियाता था । मार खाकर यह लड़की होठ चबाती हुई गुम-सुम होकर बैठ रहती, किन्तु किसी तरह भी यह नहीं कहती कि रोज रोज करोंदे सग्रह करना उसके लिए कितना कठिन है । जो कुछ भी हो, इतने दिनोतक तो मैं यही समझता था कि वह मारके भयसे ही इतना क्लेश स्वीकार करती थी, किन्तु आज मानो हठात् कुछ सशय उत्पन्न हुआ । खैर जाने दो । उसके बाद इसका विवाह हो गया । वह विवाह भी एक विचित्र व्यापार था । बेचारा मामा भानजियोंके ब्याहकी चिंताके मारे मरा जा रहा था । दैवात् कहींसे यह खबर आई कि विराचि दत्तका रसोइया कुलीनकी सतान है । इस कुलीनकी सन्तानको दत्त महाशय बाँकुड़ेसे अपनी बदली होते समय साथ ही लिवा लाये थे । विराचि दत्तके द्वारपर मामा धन्ना देकर पढ़ गये,—ब्राह्मणकी जाति-रक्षा करनी ही होगी ! इतने दिन तक तो सब यही जानते थे कि दत्तमहाशयका रसोइया भोला-भाला भला आदमी हैं परन्तु मतलबके समय देखा गया कि रसोइया महाराजकी सासारिक बुद्धि किसीसे भी कम नहीं है । सिर्फ इक्यावन रुपये देहेजकी बात सुनकर वह जोरसे सिर हिलाकर बोला, “ इतने सस्तेमें नहीं हो सकता महाशय,—बाजार जाँच देखिए । पचास और एक रुपयेमें तो एक जोड़ी बड़े बकर भी नहीं मिलते—और इतनेमें आप जमाई खोजते हैं ! एकसौ और एक रुपये दो, तो एक टफे इस पाटेपर और एक बार उस पाटेपर बैठकर दो फूल छोब देंगा । दोनों ही बहिनें एक ही साथ ‘पार’ हो जायँगी । क्या एक सौ रुपये,—दो सौ खरीदनेका खर्च—भी आप न देंगे ? ” बात कुछ असङ्गत नहीं थी । फिर भी अनेक मोल-तोल और बड़ी सही-सिफारिशके बाद सत्तर रुपयेमें तय होकर एक

ही रातमें एक साथ सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मीका विवाह हो गया। दो दिन बाद सत्तर रुपया नकद लेकर दो पुस्तका वह कुलीन जमाई बाँकुवा चल दिया। इसके बाद फिर किसीने उसे नहीं देखा। डेढेक वर्ष बाद प्रीहाके ज्वरसे सुरलक्ष्मी मर गई और उसके भी वर्ष डेढ़ वर्ष पीछे इस राजलक्ष्मीने काशीमें मरकर गिवत्व प्राप्त किया। यही है प्यारी बाईजीका सक्षित इतिहास।

बाईजीने कहा, “तुम क्या सोच रहे हो, ब्रताऊँ क्या ?”

“क्या सोच रहा हूँ ?”

“तुम सोच रहे हो,—आहा ! लड़कपनमें मैंने इसे कितना कष्ट दिया है ! कौटोके वनमें भेजकर रोज रोज करोदे मँगवाया किया हूँ, और उसके बदले केवल मार-पीट ही करता रहा हूँ। मार खाकर यह गुप-चुप हमेशा रोया ही की है, परन्तु चाहा कभी कुछ नहीं। आज यदि यह कुछ बात कहती है तो सुन ही न लँ। न सही, न गया आज श्मशानको।—यही न ?”

मैं हँस पड़ा।

प्यारीने भी हँसकर कहा, “यह तो होना ही चाहिए। बचपनमें जिससे एक दफे प्यार हो जाता है, क्या वह कभी भूलता है ? वह यदि अनुरोध करे तो फिर क्या उसे पैरसे ठोकर मारकर टाला जा सकता है ? संसारमें ऐसा निष्ठुर कौन है ? चलो, थोड़ा बैठ लो, बहुत-सी बातें करनी हैं। रतन, बावजूकी जूते तो खोल जा।—अरे हँसते हो ?”

“हँसता हूँ यह देखकर, कि तुम लोग मनुष्यको भुलाकर किस तरह वगमें कर लिया करती हो।”

प्यारीने भी हँस दिया, बोली, “यह देखकर हँसते हो ! दूसरोको तो बातोंमें भुलाकर वगमें किया जा सकता है, किन्तु, होश सँभालते ही स्वयं जिसके वगमें रही हूँ, उसे भी क्या बातोंमें भुलाया जा सकता है ? अच्छा, आज तो जैसे मैं बात करती हूँ, किन्तु रोज जब कौटोंमें क्षत-विक्षत होकर माला गूथ देती थी, तब कितनी बात किया करती थी, कहो न ? वह क्या तुम्हारी मारके डरसे ?—यह बात भूलकर भी मनमें मत लाना। राजलक्ष्मी ऐसी नहीं है।—किन्तु राम राम ! तुम तो मुझे बिल्कुल ही भूल गये थे,—देखकर पहिचान भी न सके !” या कहकर हँसते ही, सिर हिलानेसे उसके दोनों कानोंके हीरे तक हिलकर हँस उठे।

मैंने कहा, “मैंने तुम्हें मनमें स्थान ही कब दिया था, जो भूलता नहीं ? वरन्

आज मैंने तुम्हें पहिचान लिया, यह देखकर मुझे खुद ही अचरज हो रहा है । अच्छा, बारह बज चुके,—जाता हूँ ।”

प्यारीका हँसता हुआ चेहरा पल-भरमें बिल्कुल फीका पड गया । तनिक-सँभलकर उसने कहा, “अच्छा, भूत-प्रेत मत मानो, किंतु साँप-बिच्छू, नाघ-भाँडू, जगली सुअर आदि भी तो वन-जगलमें अँधेरी रातमें फिरते रहते हैं, उन्हें तो मानना चाहिए ?”

मैंने कहा, “इनको तो मैं मानता ही हूँ, और इनसे खूब सावधान रहकर चलता हूँ ।”

मुझे जानेको उद्यत देखकर वह धीरेसे बोली,, तुम जिस घातके बने आदमी हो, उससे मैं जानती थी कि तुम्हें अटका न सकूँगी । यह भय मुझे खूब ही हो रहा था, फिर भी मैंने सोचा कि रो-धोकर, हाथ पैर जोड़कर, अन्त अन्त तक शायद तुम्हें रोक सकूँ । किन्तु, देखती हूँ, रोना ही सार रहा ।” मुझे जवाब देते न देख वह फिर बोली, “अच्छा, जाओ, पीछे लौटाकर अब और असगुन न करूँगी । किन्तु, यदि कुछ हो जायगा तो इस विदेशमें, पराई जगह, राजे-रजवाड़े या मित्र-दोस्त, कोई काम नहीं आवेंगे, तब मुझे ही भुगतना पड़ेगा । मुझे पहिचान नहीं सकते, यह मेरे मुँहपर ही कहकर तुम तो अपने पौरुषकी डींग हँककर चल दिये, किन्तु हमारा तो स्त्रियोंका मन है । विपत्तिके समय मैं तो यह कह न सकूँगी कि, ‘मैं तुम्हें पहिचानती ही नहीं ।’ यह कहकर उसने एक दीर्घ निःश्वास दबा लिया । जाते जाते मैंने लौटकर, खड़े होकर, हँस दिया । न जाने क्यों मानो मुझे कुछ कष्टका अनुभव हुआ । मैं बोला, अच्छा तो है बाईजी, यह भी तो मुझे एक बड़ा लाभ होगा । मेरा तो कोई कहीं है नहीं, तब ही तो मैं जान सकूँगा कि हाँ, मेरा भी कहीं कोई है,—जो मुझे छोड़कर नहीं जा सकता ।”

प्यारी बोली, “सो क्या तुम जानते नहीं हो ? एक सौ बार ‘बाईजी’ कहकर तुम मेरा चाहे जितना अपमान क्यों न करो, राजलक्ष्मी तुम्हें छोड़कर न जा सकेगी,—यह बात क्या तुम मन ही मन नहीं समझ रहे हो ?—किन्तु यदि मैं तुम्हें छोड़कर जा सकती, तो अच्छा होता । तुम्हें एक सीख मिल जाती । किन्तु, कितनी बुरी है यह स्त्रियोंकी जाति, एक दफे भी किसीको प्यार किया कि मरी !”

मैं बोला, “प्यारी, भले सन्यासीको भी भीख नहीं मिलती, जानती हो, क्यों ?”

प्यारी बोली, “जानती हूँ, किन्तु, तुम्हारे इस व्यगमें इतनी धार नहीं रही



हैं कि इससे तुम मुझे वेध सको। यह मेरा ईश्वर-दत्त धन है। और, जब कि मुझे ससारके भले बुरेका ज्ञान तक नहीं था, उस समयका यह है,—आजका नहीं।” मैं कुछ नरम होकर बोला, “अच्छी बात है,—चाहता हूँ कि आज मुझपर कोई आफत आवे और तब तुम्हारे इस ईश्वर-दत्त धनकी हाथों-हाथ जाँच हो जाय।”

प्यारी बोली, “राम राम। ऐसी बात मत कहो। अच्छे-भले लौट आओ,—इस सच्चाईकी जाँच करनेकी जरूरत नहीं है। मेरे ऐसे भाग कहो कि बक्त-मौकेपर अपने हाथ हिला डुलाकर तुम्हें स्वस्थ सबल कर सकूँ। यदि ऐसा हो, तो समझूँगी कि इस जन्मके एक कर्तव्यको पूरा कर डाला।” इतना कहकर उसने मुँह फेरकर अपने आँसू छिपा लिये, यह हरीकेनके क्षीण प्रकाशमे भी मैं अच्छी तरह जान गया।

“अच्छा, भगवान् तुम्हारी इस साधको कभी किसी दिन पूरा करें,” कहकर और अधिक देर न करके मैं तम्बूके बाहर आ खड़ा हुआ। कौन जानता था कि हँसी-हँसीमे ही मुँहसे एक प्रचण्ड सत्य बाहर निकल जायगा।

तम्बूके भीतरसे आँसुओंसे रुंधे हुए कण्ठसे निकली हुई ‘दुर्गा ! दुर्गा !’ की कातर पुकार कानमें आई और मैं तेज चालसे चल दिया।

मेरा सारा मन प्यारीकी ही बातोंसे ढँक गया। कब मैं आमके बगीचेके बड़े अधियारे मार्गको पार कर गया, और कब नदीके किनारेके सरकारी बाँधके ऊपर आ खड़ा हुआ, यह मैं जान ही न सका। सारी राह सिर्फ यही एक बात सोचता सोचता आया कि स्त्री-जातिका मन भी कैसा विराट् अचिन्तनीय व्यापार है ! इस पिलहीके रोगवाली लड़कीने, अपने मटके जैसे पेट और लकड़ी जैसे हाथ पॉव लेकर, सबसे पहले किस समय मुझे चाहा था और करोंदोकी मालासे अपनी दरिद्र-पूजाको सपन्न किया था, सो मैं बिल्कुल जान ही न सका। और आज जब मैं जान सका, तब मेरे अचरजका पार नहीं रहा। अचरज कुछ इस लिए भी नहीं था,—उपन्यास-नाटकोमें बाल्य-प्रणयकी अनेकों कथाएँ पढ़ी हैं,—किन्तु जिस वस्तुको गर्वके साथ, अपनी ईश्वरदत्त संपत्ति कहकर प्रकट करते हुए भी वह कुण्ठित नहीं हुई, उसे उसने, इतने दिनोंतक, अपने इस घृणित जीवनके सैकड़ों मिथ्या प्रणयभिनयोंके बीच, किस कोनेमे जीवित रख छोड़ा था ? कहाँसे इसके लिए वह खुराक जुटाती रही ? किस रास्ते प्रवेश करके वह उसका लालन-पालन करती रही ?

- “ बाप् ! ”

मैं एकदम चौक पड़ा। सामने आँख उठाकर देखा, भूरे रंगकी बालूका विस्तीर्ण मैदान है और उसे भी चीरती हुई एक शीर्ण नदीकी वक्र रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई सुदूरमें अतर्हित हो गई है। समस्त मैदानमें जगह जगह काँसके पेड़ोंके छुण्ड उग रहे हैं। अधकारमें एकाएक जान पड़ा कि मानों ये सब एक एक आदमी हैं, जो आजकी इस भयङ्कर अमावास्याकी रात्रिको प्रेतात्माका नृत्य देखनेके लिए आमंत्रित होकर आये हैं और बालूके बिछे हुए फर्शपर मानों अपना अपना आसन ग्रहण करके सन्नाटेमें प्रतीक्षा कर रहे हैं। सिरके ऊपर, घने काले आकाशमें, सख्यातीत गृह-तारे भी, उत्सुकताके साथ अपनी आँखोंको एक साथ खोले हुए ताक रहे हैं। वायु नहीं, शब्द नहीं, अपनी छातीके भीतर छोड़कर, जितनी दूर दृष्टि जाती थी वहाँ तक कहीं भी प्राणोंकी जरा-सी भी आहट अनुभव करनेकी गुजाइश नहीं। जो रात्रि-चर पक्षी ‘बाप्’ कहकर थम गया, वह भी और कुछ नहीं बोला। मैं पश्चिमकी ओर धीरे धीरे चला। उसी ओर वह महा श्मशान था। एक दिन शिकारके लिए आकर, जिस सेमरके झाड़ोंके छुण्डको देख गया था, कुछ दूर चलनेपर उनके काले काले डाल-पत्र दिखाई दिये। यही थे उस महा श्मशानके द्वारपाल। इन्हींको पार करके आगे बढ़ना होगा। इसी समयसे प्राणोंकी अस्पष्ट आहट मिलने लगी, परन्तु वह ऐसी नहीं थी जिससे कि चित्त कुछ प्रसन्न हो। कुछ और दूर चलनेपर वह कुछ और साफ हुई। किसी माँके ‘कुम्भकर्णी निद्रा’ में सो जानेपर उसका छोटा बच्चा, रोते रोते अतमें बिल्कुल निर्जीव-सा होकर, जिस प्रकार रह-रह-कर रिरियाना शुरू कर देता है, ऐसा मालूम हुआ कि ठीक उसी तरह श्मशानके एकान्तमें कोई रिरिया रहा है। मैं बाजी लगाकर कह सकता हूँ कि, जिसने उस रोनेका इतिहास पहले कभी जाना-सुना न हो, वह ऐसी गहरी अँधेरी अमावास्याकी रात्रिमें अकेला उस ओर एक पैर भी आगे नहीं बढ़ाना चाहेगा। वह मनुष्यका बच्चा नहीं, चमगीदड़का बच्चा था, जो अँधेरेमें अपनी माँको न देख सकनेके कारण रो रहा था,—यह बात, पहलेसे जाने बिना, संभव नहीं है कि कोई अपने आप निश्चयपूर्वक कह सके कि यह आवाज़ मनुष्यके बच्चेकी है। और भी नजदीक जाकर देखा, ठीक यही बात थी। झोलोंकी तरह सेमरकी डाल-डालमें लटकते हुए, असंख्य चमगीदड़ रात्रि-वास कर रहे हैं और उन्हींमेंका कोई शैतान बच्चा इस तरह आर्त्त कण्ठसे रो रहा है।

झाड़के ऊपर वह रोता ही रहा और उसके नीचेसे आगे बढ़ता हुआ मैं उस महा श्मशानके एक हिस्सेमे जा खड़ा हुआ। सुबह उस वृद्धने जो यह कहा था कि यहाँ लाखों नर-मुण्ड गिने जा सकते हैं,—मैंने देखा, कि, उसके कथनमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है—सारा ही स्थान नर-ककालोद्वारा खचित हो रहा है। गेंद खेलनेके लिए नर-कपाल तो वहाँ असख्य पड़े हुए थे, फिर भी, खिलाड़ी उस समय तक भी आकर नहीं जुट पाये थे। मेरे सिवाय कोई और अशरीरी दर्शक वहाँ उपस्थित था या, नहीं, सो भी मैं इन दो नश्वर चक्षुओंसे आविष्कृत नहीं कर सका। उस समय घोर अमावास्या थी। इसलिए, खेल शुरू होनेमे और अधिक देरी नहीं है, यह सोच करके मैं एक रेतके टीलेपर जाकर बैठ गया। बन्दूक खोलकर, उसके टोटेकी और एक बार जाँच करके तथा फिर उसे यथास्थान लगाकर, मैंने उसे गोदमें रख लिया और तैयार हो रहा। पर हाय रे टोटे ! विपत्तिके समय, उसने जरा भी सहायता नहीं की।

प्यारीकी बात याद आ गई। उसने कहा था, “ यदि निष्कपट भावसे सचमुच ही तुम्हे भूतपर विश्वास नहीं है, तो फिर, वहाँ कर्म-भोग करने जाते ही क्यों हो ? और यदि विश्वासमें जोर नहीं है, तो फिर मैं, भूत-प्रेत चाहे हो चाहे न हो, तुम्हे किसी तरह जाने न दूँगी।” सच तो है,—यहाँ आया आखिर क्या देखने हूँ ? पाप मनसे अगोचर तो है नहीं। मैं वास्तवमें कुछ भी देखने नहीं आया हूँ। केवल यही दिखाने आया हूँ कि मुझमें कितना साहस है। सुबह जिन लोगोंने कहा था, “ कायर बगाली कामके समय भाग जाते हैं, ” मुझे तो उनके निकट प्रमाणसहित सिर्फ यही बताना है कि बङ्गाली लोग बड़े वीर होते हैं।

मेरा यह बहुत दिनोका दृढ विश्वास है कि मनुष्यके मरनेपर फिर उसका अस्तित्व नहीं रहता। और यदि रहता भी हो, तो भी, जिस श्मशानमे उसकी पार्थिव देहको पीड़ा पहुँचानेमे कुछ भी कसर नहीं रखी जाती वहाँ, उसी जगह, लौटकर अपनी ही खोपड़ीमे लाते मार मारकर उसे लुढ़काते फिरनेकी इच्छा होना उसके लिए न तो स्वाभाविक ही है और न उचित ही। कमसे कम मैं अपने लिए तो ऐसा ही समझता हूँ। यह बात दूसरी है कि मनुष्यकी रुचि भिन्न भिन्न होती है। यदि किसीकी होती हो तो, इस बढिया रातको, रात्रि जागरण करके, मेरा इतनी दूरतकका आना-निष्फल नहीं होगा। और फिर, आज उस वृद्ध व्यक्तिने इसकी बड़ी भारी आशा भी तो दिलाई है।

एकाएक हवाका एक झोका कितनी ही रेत उड़ाता हुआ मेरे शरीरपरसे होकर निकल गया, और वह खत्म भी नहीं होने पाया कि दूसरा, और फिर तीसरा भी, ऊपरसे होकर निकल गया। मनमें सोचने लगा कि भला यह क्या है ? इतनी देर तक तो लेश-भर भी हवा न थी। अपने आप चाहे कितना ही क्यों न समझूँ और समझाऊँ, फिर भी यह संस्कार, कि मरनेके बाद भी कुछ अजात तरीखा रहता है, हमारे हाड-मांसमे ही भिदा हुआ है, और जबतक हाड-मांस है तबतक वह भी है, फिर चाहे मैं उसे स्वीकार करूँ चाहे न करूँ। इसलिए उस हवाके झोंकेने केवल रेत और धूल ही नहीं उड़ाई, किन्तु मेरे उस मजागत गुप्त संस्कारपर भी चोट पहुँचाई। क्रमशः धीरे धीरे कुछ और जोरसे हवा चलने लगी। बहुतसे आदमी शायद यह नहीं जानते कि मृत मनुष्यकी खोपड़ीमेंसे हवाके गुजरनेसे ठीक दीर्घ श्वास छोड़नेका-सा शब्द होता है। देखते ही देखते आसपास, सामने, पीछे, चारों ओरसे दीर्घ उसासोंकी झड़ी-सी लग गई। ठीक ऐसा लगने लगा कि मानों कितने ही आदमी मुझे घेरकर बैठे हैं और लगातार जोर जोरसे हाय हाय करके उसास ले रहे हैं, और अंग्रेजीमें जिसे 'अनकैनी फीलिंग' (अनमना-सा लगना) कहते हैं, ठीक उसी किस्मकी एक अस्वस्ति-बेचैनी मेरे शरीरको झकझोर गई। चमगीदड़का वह बच्चा तब भी चुप नहीं हुआ था। पीछे पीछे मानों वह और भी अधिक रिरियाने लगा। मुझे अब मालूम होने लगा कि मैं भयभीत हो रहा हूँ। बहुत जानकारीके फलस्वरूप यह खूब जानता था कि जिस स्थानमें आया हूँ वहाँ, समय रहते, यदि भयको दबा न सका, तो मृत्युतक हो जाना असंभव नहीं है। वास्तवमें इस तरहकी भयानक जगहमे, इसके पहले, मैं कभी अकेला नहीं आया था—स्वच्छन्दतासे जो यहाँ अकेला आ सकता था, वह था इन्द्र—मैं नहीं। अनेक बार उसके साथ अनेको भयानक स्थानोंमें जा-आनेके कारण मेरी यह धारणा हो गई थी कि इच्छा करनेपर मैं स्वयं भी उसीके समान ऐसे सभी स्थानोंमें अकेला जा सकता हूँ। किन्तु, वह कितना बड़ा भ्रम था ! और मैं केवल उसी झोंकमें उसका अनुकरण करने चला था ! एक ही क्षणमे आज सब बात सुस्पष्ट हो उठी। मेरी इतनी चौड़ी छाती कहाँ ? मेरे पास वह राम-नामका अभेद कवच कहाँ ? मैं इन्द्र नहीं हूँ जो इस प्रेत-भूमिमें अकेला खड़ा रहूँ, और आँखें गड़ाकर प्रेतात्मार्योंका गेंद खेलना देखूँ। मनमें लगा कि कोई एकाध जीवित बाघ या भालू ही दिखाई पड़ जाय,

तो मैं शायद जीवित बच जाऊँ ! एकाएक किसीने मानो पीछे खड़े होकर मेरे दाहिने कानपर निःश्वास डाली । वह इतनी ठंडी थी कि हिमके कणोंकी तरह मानो उसी जगह जम गई । गर्दन उठाये वगैरे ही मुझे साफ साफ दिखाई पड़ा कि वह निःश्वास जिस नाकके बृहदाकार नकुओंसे होकर बाहर आई है, उसमें न चमड़ा है न मास,—एक बूँद रुधिर भी नहीं है । केवल हाड और छिद्र ही उसमें हैं । आगे-पीछे, दायें-बाएँ अन्धकार था । सन्नाटेकी आधी रात सायें सायें करने लगी । आसपासकी हाथ हाथ क्रम-क्रमसे मानो, हाथोंके पाससे छूती हुई जाने लगी । कानोंके ऊपर वैसी ही अत्यन्त ठण्डी उसासे लगातार आने लगीं और यही मुझे सबसे अधिक परवश करने लगीं । मन ही मन ऐसा मालूम होने लगा कि मानों सारे प्रेत-लोककी ठंडी हवा उस गढ़ेमेसे बाहर आकर मेरे शरीरको लग रही है ।

किन्तु, इस हालतमें भी मुझे यह बात नहीं भूली कि किसी भी तरह अपने होश-हवास गुम कर देनेसे काम न चलेगा । यदि ऐसा हुआ, तो मृत्यु अनिवार्य है । मैंने देखा कि मेरा दाहिना पैर थरथर काँप रहा है । उसे रोकनेकी चेष्टा की, परन्तु वह रुका नहीं, मानों वह मेरा पैर ही न हो ।

ठीक इसी समय बहुत दूरसे बहुत-से कंठोंकी मिली हुई पुकार कानोंमें पहुँची, “ वावूजी ! वावू साहब ! ” सारे शरीरमे काँटे उठ आये । कौन लोग पुकार रहे हैं ? फिर आवाज आई, “ कहीं गोली मत छोड़ दीजिएगा ! ” आवाज क्रमशः आगे आने लगी, तिरछे देखनेसे प्रकाशकी दो क्षीण रेखाएँ आती हुई नजर पड़ीं । एक दफे जान पड़ा मानो उस चिल्लाहटके भीतर रतनके स्वरका आभास है । कुछ देर ठहरकर और भी साफ मालूम हुआ कि जरूर वही है । और भी कुछ दूर अग्रसर होकर, एक सेमरके वृक्षके नीचे आड़में खड़ा होकर वह चिल्लाया “ वावूजी, आप जहाँ भी हैं गोली-ओली मत छोड़िए, मैं हूँ रतन । ” रतन सचमुच ही जातका नाई है, इसमें मुझे जरा भी सदेह नहीं रहा ।

मैंने उल्लाससे चिल्लाकर उत्तर देना चाहा, किन्तु कण्ठसे आवाज नहीं निकली । प्रवाद है कि भूत-प्रेत जाते समय कुछ न कुछ नष्ट कर जाते हैं । जो मेरे पीछे था, वह मेरा कण्ठ स्वर नष्ट करके ही विदा हुआ था ।

रतन तथा और भी तीन आदमी हाथमें दो लालटेनें और लट्ट लिये हुए समीप आ उपस्थित हुए । उनमें एक तो था छट्टलाल जो तबला बजाया करता था, दूसरा था प्यारीका दरवान, और तीसरा गाँवका चौकीदार ।

रतन बोला, “चलिए, तीन बजते हैं।”

‘चलो’ कहकर मैं आगे हो लिया। रास्ता चलते चलते रतन कहने लगा, “बाबूजी, धन्य है आपके साहसको। हम चार-जने हैं फिर भी जिस तरह डरते डरते यहाँ आये हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता।”

“तुम आये ही क्यों?”

रतन बोला, “रूपयोंके लोभसे। हम सबको एक एक महीनेकी तनखाह जो नगद मिली है।” इतना कहकर वह मेरे पास आया और गला धीमा करके बोला, “आपके चले आनेपर देखा, माँ बैठी बैठी रो रही हैं। मुझसे बोलीं, ‘रतन, न जाने क्या होनहार है भइया, तुम लोग पीछे पीछे जाओ। मैं तुम सबको एक एक महीनेकी तनखाह इनाम दूँगी।’ मैं बोला, ‘छट्टूलाल और गणेशको साथ लेकर मैं जा सकता हूँ माँ, परतु रास्ता तो मैंने देखा ही नहीं है।’ इसी समय चौकीदारने हाँक दी। माँ बोलीं, ‘उसे बुला ले रतन, वह जरूर रास्ता जानता होगा।’ बाहर जाकर मैं उसे बुला लाया। चौकीदार जब नगद छः रुपये पा गया, तब रास्ता दिखाता हुआ ले आया। अच्छा बाबूजी, आपने छोटे बच्चेका रोना सुना है?” इतना कहकर काँपते हुए रतनने मेरे कोटके पीछेका छोर पकड़ लिया। कहने लगा, “हमारे-गणेश पाडे ब्राह्मण हैं, इसीसे हम लोग आज बच गये, नहीं तो—”

मैंने कुछ कहा नहीं। प्रतिवाद करके किसीके भ्रमको भग्न करने जैसी अवस्था मेरी नहीं थी। आच्छन्न-अभिभूतकी तरह चुपचाप चलने लगा।

कुछ दूर चलनेके बाद रतनने पूछा, “आज कुछ देखा बाबूजी ? मैं बोला, “नहीं।”

मेरे इस सक्षिप्त उत्तरसे रतन क्षुब्ध होकर बोला, “हमारे आनेसे आप क्या नाराज हो गये, बाबूजी ? किन्तु यदि आप माँका रोना देखते—”

मैं चटपट बोल उठा, “नहीं रतन, मैं जरा भी नाराज नहीं हुआ।”

तम्बूके पास आ जानेपर चौकीदार अपने कामपर चला गया, गणेश और छट्टूलाल नौकरोंके तम्बूमे चले गये। रतनने कहा, “माँने कहा था कि जाते-समय एक बार दर्शन दे जाइएगा।”

मैं ठिठककर खड़ा हो गया, आँखोंके आगे साफ साफ दिखाई पड़ा कि प्यारी दियेके सामने अधीर उत्सुकता और सजल नेत्रोंसे बैठी बैठी प्रतीक्षा कर रही है

और मेरा सारा मन उन्मत्त ऊर्ध्व श्वासें भरता हुआ उस ओर दौड़ों जा रहा है।

रतनने विनयके साथ बुलाया, “आइए।”

क्षण-भरके लिए आँखें मींचकर अपने अन्तरमे डूबकर देखा, वहाँ होश हवासमें कोई नहीं है। सब ही गलेतक शराव पीकर मत्त हो रहे हैं। राम राम, इन मतवालोके दलको लेकर मैं उससे मिलने जाऊँ ? यह मुझसे किसी तरह न होगा।

देर होती देखकर रतन विस्मयसे बोला, “उस जगह अँधेरेमें क्यों खड़े हो रहे हैं बाबूजी,—आइए, न ?”

मैं चटपट बोल उठा, “नहीं रतन, इस समय नहीं,—मैं चलता हूँ।”

रतन कुठित होकर बोला, “मॉ, किन्तु, राह देखती बैठी हैं—”

“राह देखती हैं ? तो देखने दे। उन्हें मेरा असख्य नमस्कार जताकर कहना, कल जानेके पहले मुलाकात होगी,—इस समय नहीं। मुझे बड़ी नींद आ रही है रतन, मैं चलता हूँ।” इतना कहकर विस्मित, क्षुब्ध रतनको जवाब देनेका अवसर दिये वगैर ही मैं, जल्दी जल्दी पैर बढ़ाता हुआ, उस तरफके तम्बूकी ओर चल दिया।

## ९

**म**नुष्यके भीतरकी वस्तुको पहिचान कर उसके न्याय-विचारका भार अन्त-र्यामी भगवान्के ऊपर न छोड़कर मनुष्य जब स्वयं उसे अपने ही ऊपर लेकर कहता है ‘मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, यह कार्य मेरे द्वारा कदापि न होता, वह काम तो मैं मर जानेपर भी न करता, आदि,’—तब ये बातें सुनकर मुझे शर्म आये बिना नहीं रहती। और फिर केवल अपने मनके ही सबधमें नहीं, दूसरोंके सम्बन्धमें भी, मैं देखता हूँ, कि, मनुष्यके अहंकारका मानों अन्त ही नहीं है। एक दफे समालोचकोंके लेखोको पढ़कर देखो, बिना हँसे रहा ही नहीं जाता। कविकों अतिक्रम करके वे काव्यके मनुष्यको चीन्ह लेते हैं और जोरके साथ कहते हैं, “यह चरित्र किसी तरह भी वैसा नहीं हो सकता,—वह चरित्र कभी वैसा नहीं कर सकता,”—ऐसी और कितनी ही बातें हैं। लोग वाहवाही देकर कहते हैं, “वाह इसीको तो कहते हैं क्रिटिसिज्म ! इसीको तो कहते हैं चरित्र-समालोचना ! सच ही तो कहा है ! अमुक समालोचकके होते हुए चाहे जो कुछ लिख देनेसे

कैसे चल सकता है ? देखो, पुस्तकमें जो अटसट भूलें और भ्रान्तियों थीं वे सभी किस तरह छान-बीनकर रख दी गई हैं।” सो रख देने दो। भूल भला किससे नहीं होती ? किन्तु, फिर भी तो मैं अपने जीवनकी आलोचना करके,—यह सब पढ़कर, उन लोगोंकी लजाके मारे अपना सिर ऊपर नहीं उठा सकता। मन ही मन कहता हूँ, “ हायरे दुर्भाग्य ! यह जो कहा जाता है कि, मनुष्यके अन्तरकी वस्तु अनत है सो क्या केवल कहने-भरकी बात है ? दम्भ प्रकट करनेके समय क्या इसकी कानी कौड़ीकी भी कीमत नहीं है ? तुम्हारे कोटि जन्मोंके न जाने कितने असख्य कोटि अद्भुत व्यापार इस अनतमें मग्न रह सकते हैं और एकाएक जागरित होकर तुम्हारी बहुजता, तुम्हारा पढ़ना लिखना, तुम्हारी विद्वत्ता, और तुम्हारे मनुष्यकी जाँच करनेके क्षुद्र ज्ञान-भाण्डको एक मुहूर्तमें चूर्ण कर सकते हैं, यह बात क्या एक दफे भी तुम्हारे मनमें नहीं आती,—यह भी क्या तुम नहीं समझ सकते कि, यह सीमाहीन आत्माका आसन है ? ”

यही तो मैंने अन्नदा जीजीमें अपनी आँखों देखा है। उनकी उज्ज्वल दिव्य मूर्ति इस समय तक भी तो नहीं भूली ! जीजी जब चली गईं तब न जाने कितनी गभीर स्तब्ध रात्रियोंमें आँखोंके पानीसे मेरा तकिया भीग गया है, और मन ही मन मैंने कहा है कि, जीजी, मुझे अपने लिए अब और कुछ सोच नहीं है, तुम्हारे पारस-मणिके स्पर्शसे मेरे अन्तर-बाहिरका समस्त लोहा सोना हो गया है। अब कहीं किसी भी तरहकी आबो हवाकी दुष्टतासे जग लगाकर उसके क्षय होनेका डर नहीं है। परन्तु कहाँ गईं तुम जीजी ? जीजी, और किसीको भी मैं अपने इस सौभाग्यका हिस्सा नहीं दे सका, और कोई भी तुम्हे नहीं देख पाया ! अन्यथा तुम्हारा दर्शन पाकर प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति सच्चरित्र साधु हो जाता, इसमें मुझे लेग-भर भी सदेह नहीं है। यह किस तरह संभव हो सकता है, इस बातको लेकर मैं उस समय बच्चोंकी-सी कल्पनाओंमें सारी रात जागकर बिता देता था। कभी मनमें आता, कि देवी चौधुरानीके समान यदि कहींसे मैं सात घंटे मुहरें पा जाऊँ तो अन्नदा जीजीको एक बड़े भारी सिंहासनपर बैठा दूँ, जंगल काटकर, जगह साफ करके, देशके लोगोंको बुलाऊँ और उन्हें उनके सिंहासनके चारों ओर बसा दूँ। कभी सोचता, एक बड़े भारी बजरेमें उन्हें विराजमान करके बैँड बजाता हुआ उन्हें देश-विदेशमें लिये फिरूँ। ऐसी न जाने कितने विलक्षण आकाश-

\* स्व० वकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके प्रसिद्ध उपन्यास 'देवी चौधुरानी'की मुख्य नायिका।



कुसुमोंकी मैं मालाएँ गूथता रहता,—इस समय उन्हें याद करके भी मुझे हँसी आती है। साथ ही आँखोंमेसे आँसू भी कुछ कम नहीं गिरते।

—उस समय मेरे मनके भीतर यह विश्वास हिमाचलके समान दृढ़ होकर बैठ गया था कि मुझे सुग्ध कर सके ऐसी नारी इस लोकमें तो निश्चयसे नहीं है,—परन्तु परलोकमें भी है या नहीं, इसकी भी मानो मैं कल्पना नहीं कर सकता था ! सोचता था कि जीवनमे जब कभी किसीके मुँहसे ऐसी कोमल बोली, होठोंमें ऐसी मधुर हँसी, ललाटपर ऐसा अलौकिक तेज, आँखोंमें ऐसी सजल करुण दृष्टि पाऊँगा, तभी मैं आँख उठाकर उसकी ओर देखूँगा। जिसे मैं अपना मन दूँगा वह भी मानो ऐसी सती, ऐसी ही साध्वी होगी, उसके भी प्रत्येक कदमपर मानो ऐसी ही अनिर्वचनीय महिमा फूट उठेगी, इसी तरह वह भी मानों ससारका समस्त सुख-दुख, समस्त अच्छा-बुरा, समस्त धर्म-अधर्म त्याग करके ही ग्रहण कर सकेगी।

मैं वही-तो हूँ ! तो भी आज सुबह नींद खुलते ही किसीके मुँहकी वाणी, किसीके होठोंकी हँसी, किसीके चक्षुओंके जलने, याद आकर, हृदयके एकान्तमे थोड़ी-सी पीड़ा उत्पन्न कर दी। मेरी संन्यासिनी जीजीके साथ कहीं किसी भी अन्नमें उसका बिन्दुमात्र भी सादृश्य था ? फिर भी ऐसा ही मालूम हुआ ! छःसात रोज पहले अन्तर्यामी भगवान् भी आकर यदि यह कहते तो, मैं हँसकर उडा देता और कहता—“हे अन्तर्यामी ! इस शुभ कामनाके लिए तुम्हे हजारों धन्यवाद ! किन्तु तुम अपना काम देखो, मेरी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। मेरे हृदयकी कसौटीपर असल सोना कसा जा चुका है, वहाँ अब पीतलकी दूकान खोलनेसे खरीददार नहीं जुटेंगे।”

परन्तु, फिर भी खरीददार जुट गया। मेरे अन्तरमें, जहाँ कि अन्नदा जीजीके आशीर्वादसे खरा सोना भरा पड़ा था, एक अभागा, पीतलका लोभ नहीं सँभाल सका और उसे खरीद बैठे, —यह क्या कुछ कम अचरजकी बात है !

मैं खूब समझता हूँ कि जो लोग कठोर आलोचक हैं वे मेरी आत्म-कथामे इस स्थानपर अधीर होकर बोल उठेंगे कि, “इतना फुलाकर—अतिरञ्जित करके आखिर, बाबू, तुम कहना क्या चाहते हो ? अच्छी तरह स्पष्ट करके ही कह दो न कि वह कौन है ? आज सोकर उठते ही प्यारीका मुँह याद करके तुम व्यथित हो उठे थे,—यही न ? जिसे मनके दरवाजेपरसे ही झाड़ू मारकर विदा

कर देते थे आज उसे ही बुलाकर घरमें बसाना चाहते हो,—यही न ? तो ठीक है । यदि यह सत्य है, तो इसके बीचमें तुम अपनी अन्नदा जीजीका नाम मत लो । क्योंकि, तुम चहे जितनी बातें, चहे जिस तरह बना-सजाकर क्यों न कहो, हम लोग मानव-चरित्र खूब समझते हैं । हम यह जोर देकर कह सकते हैं कि सती-साध्वीका आदर्श तुम्हारे मनके भीतर स्थायी नहीं हुआ, उसे अपनी सारी शक्ति लगाकर तुम कभी ग्रहण नहीं कर सके । यदि कर सके होते तो तुम इस मिथ्यामें अपनेको न मुला सकते । ”

यह ठीक है । किन्तु, अब और तर्क नहीं करूँगा । मैंने समझ लिया है कि मनुष्य अतन्त्र किसी तरह भी अपना पूरा पूरा-परिचय नहीं पाता । वह जो नहीं है, वही अपनेको समझ बैठता है और बाहर प्रचार करके केवल विडम्बनाकी सृष्टि करता है । और जो दण्ड इसका भोगना पड़ता है, वह भी बिल्कुल हलका नहीं होता । किन्तु रहने दो, मैं तो खुद जानता हूँ कि किस नारीके आदर्शपर इतने दिन क्या बात ‘प्रीच’ ( उपदेश ) करता फिरा हूँ । इसलिए, मेरी इस दुर्गातिके इतिहासपर लोग जब कहेंगे कि श्रीकान्त ‘हम्बग-हिपोक्रेट’ है, तब चुपचाप मुझे सुन ही लेना पड़ेगा । फिर भी मैं ‘हिपोक्रेट’ नहीं था, ‘हम्बग’ करनेका मेरा स्वभाव नहीं है । मेरा स्वभाव सिर्फ इतना ही है कि मुझमें जो दुर्बलता अपने आपको छुपाये हुए थी उसकी खबर मैंने नहीं रक्खी । आज जब वह, समय पाकर, सिर उठाकर खड़ी हो गई और जब उसने अपने ही समान और भी एक दुर्बलताको सादर आह्वान करके एकबारगी अपने भीतर बिठा लिया, तब असह्य विस्मयसे मेरी आँखोंमेंसे आँसू गिर पड़े, किन्तु ‘जा’ कहकर उसे बिदा करते भी मुझसे नहीं बन पड़ा । यह भी मैं जानता हूँ कि आज लजाके मारे अपना मुँह छिपानेके लिए मेरे पास कोई स्थान नहीं है, किन्तु हृदयका कोना कोना पुलकसे आज परिपूर्ण जो हो उठा है ! नुकसान जो होना हो सो हो, हृदय तो इसका त्याग करना नहीं चाहता !

“ बाबू साहब ! ” राजाका नौकर आ पहुँचा । शय्यापर मैं सीधा होकर बैठ गया । उसने आदरपूर्वक कहा, “ कुमारसाहब तथा और भी बहुतसे लोग आपकी गत रात्रिकी कहानी सुननेके लिए आपके आनेकी राह देख रहे हैं । ” मैंने पूछा, “ उन्हें मालूम कैसे हुआ ? ” बैरा बोला, “ तम्बूके दरवानने चतलाया है कि आप रातके अंतमें वापिस लौट आये हैं । ”

हाथ-मुँह धो कपड़े बदल, जैसे ही मैं बड़े तम्बूके अन्दर गया कि सब लोगोंने एक साथ शोर मचा दिया। एक ही साथ मानों एक लाख प्रश्न हो गये। मैंने देखा कि कलके वे वृद्ध महाशय भी वहाँ हैं और एक तरफ प्यारी भी अपने दल-बलको लेकर चुपचाप बैठी है। रोजके समान आज उससे चार आँखे नहीं हुईं। मानो वह जान-बूझकर ही और किसी तरफ आँखें फिराये बैठी थी।

आकुल सवालोक़ी लहरके शात होते ही मैंने जवाब देना शुरू किया। कुमारजी बोले, “ धन्य है तुम्हारा साहस, श्रीकान्त। कितनी रातको वहाँ पहुँचे थे ? ”

“ बारह और एकके बीच । ”

वृद्ध महाशय बोले, “ घोर अमावास्या !—साढ़े ग्यारह बजेके बाद अमावस पड़ी थी । ”

चारों तरफसे अचरजसूचक ध्वनि उठकर क्रमशः शान्त होते ही कुमारजीने फिर प्रश्न किया, “ उसके बाद क्या देखा ? ”

मैं बोला, “ दूरतक फैले हुए हाड़-पिंजर और खोपडियों । ”

कुमारजी बोले, “ उफ, कैसा भयङ्कर साहस है ! श्मशानके भीतर गये थे य बाहर खड़े रहे थे ? ”

मैं बोला, “ भीतर जाकर एक बालूके ढूँहपर जाकर बैठ गया था । ”

“ उसके बाद—उसके बाद ? बैठकर क्या देखा ? ”

“ बालूके टीले साँप साँप कर रहे हैं । ”

“ और ? ”

“ कॉसके झुरमुट और सेमरके वृक्ष । ”

“ और ? ”

“ नदीका पानी । ”

कुमारजी अधीर होकर बोले, “ यह सब तो जानता हूँजी ! पूछता हूँ कि वह सब कुछ—”

मैं हँस पड़ा और बोला, “ और दो एक बड़े चमगादड़ सिरके ऊपरसे उड़कर जाते हुए देखे थे । ”

वृद्ध महाशयने स्वयं उस समय आगे बढ़कर पूछा, “ और कुछ नहीं देखा ? ”

मैं बोला, “ नहीं । ”

उत्तर सुनकर तम्बू-भरके सब आदमी मानो निराश हो गये। उस समय वृद्ध

महाशय एकाएक क्रुद्ध हो उठे, “ ऐसा कभी हो नहीं सकता । आप गये ही नहीं । ” उनके गुस्सेको देखकर मैंने सिर्फ हँस दिया । क्योंकि बात ही गुस्से होनेकी थी । कुमारजी मेरा हाथ दबाकर मिन्नतभरे स्वरसे बोले, “ तुम्हें कसम है श्रीकान्त, क्या देखा, सच सच कह दो । ”

“ सच ही कहता हूँ, कुछ नहीं देखा । ”

“ कितनी देर ठहरे वहाँपर । ”

“ तीनेक घण्टे । ”

“ अच्छा, देखा नहीं, कुछ सुना भी नहीं ? ”

“ सुना । ”

क्षण-भरमें ही सबका मुँह उत्साहसे प्रदीप्त हो उठा । क्या सुना, उसे सुननेके लिए लोग कुछ और भी आगे सरक आये । तब मैंने कहना शुरू किया कि किस तरह रास्तेके ऊपर एक रात्रि-चर पक्षी ‘ वाप् ’ कहकर उड़ गया, किस तरह बच्चेकी-सी आवाजमें एक पक्षीके बच्चेने सेमरके वृक्षपर रिरिया-रिरिया कर रोना शुरू कर दिया; किस तरह एकाएक आँधी उठी और मृत मनुष्योंकी खोपड़ियाँ दीर्घ श्वास छोड़ने लगीं और सबके अन्तमें किस तरह मानों कोई मेरे पीछे खड़ा होकर लगातार बरफ सरीखी ठंडी साँस दाहिने कानमें छोड़ने लगा । मेरा कथन समाप्त हो गया किन्तु देरतक किसीके मुँहसे एक भी शब्द बाहर न निकला । सारा तम्बू मानों सन्न हो रहा । अन्तमें वह वृद्ध व्यक्ति एक लम्बी उसास छोड़कर मेरे कन्धेपर एक हाथ रखकर, धीरे धीरे बोला, “ बाबूजी, आप सचमुच ही ब्राह्मणके बच्चे हैं, इसीलिए कल अपनी जान लिये लौट आये । नहीं तो और कोई जिन्दा नहीं लौट सकता था । किन्तु, आजसे इस बुद्धेकी कसम है बाबूजी, फिर कभी ऐसा दुःसाहस न कीजिएगा । आपके माँ-बापके चरणोंमें मेरे कोटि कोटि प्रणाम,—केवल उन्हींके पुण्य-प्रतापसे आप बच गये हैं । ” इतना कहकर उसने झोंकमें आकर चटसे मेरे पैर छू लिये ।

पहले कह चुका हूँ कि यह मनुष्य बात कहना खूब जानता था । इस दफे उसने कहना शुरू किया । आँखोंकी पुतलियाँ और भौहें, कभी सिकोडकर और कभी फैलाकर, कभी बुझाकर और कभी प्रज्वलित करके उसने पक्षीके रोनेसे शुरू करके कानपर टडी उसासके छोड़ने पर्यन्तकी ऐसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या जुटाई कि, दिनके समय, इतने लोगोंके बीच बैठे हुए भी, मेरे सिरके बालतक

कॉटोकी तरह खड़े हो गये। कल सुबहकी तरह आज भी प्यारी गुप-चुप कब सरक कर समीप आ बैठी थी, इसपर मेरा ध्यान नहीं गया। एकाएक एक उसासके शब्दसे गर्दन घुमाकर मैंने देखा कि वह ठीक मेरी पीठके पीछे बैठी हुई निर्निमेष दृष्टिसे बोलनेवालेके मुँहकी ओर देख रही है और उसके दोनों चिकने उजले गालोपर झट्टे हुए अश्रुओकी दो धाराएँ सूखकर फूट उठी हैं। कब और किस लिए वह आँखोंका जल वह निकला था, शायद वह बिल्कुल ही जान नहीं सकी; नहीं तो उन्हें पोंछ डालती। किन्तु, उसी अश्रुकल्पित तल्लीन मुखका पल-भरका दृष्टिपात ही मेरे हृदयमें एक अग्निकी रेखा अङ्कित कर गया। बात समाप्त होते ही वह उठकर खड़ी हो गई और कुमारजीको सलाम करके, अनुमति माँगकर, धीरे धीरे बाहर हो गई।

आज सुबह ही मेरे विदा होनेकी बात थी। परन्तु, शरीर स्वस्थ नहीं था, इसलिए कुमारजीका अनुरोध स्वीकार करके मैं उस समय, जाना स्थगित करके, अपने तम्बूमें वापिस लौट आया। इतने दिनोंके बाद आज प्यारीके आचरणमें पहले पहल मैंने दूसरा भाव देखा। इतने दिन उसने परिहास किया है, व्यग्य किया है, और कलहका आभास तक भी उसके दोनों नेत्रोंकी दृष्टिमें कुछ दिन घनीभूत हो गया है,—यह सब मैंने अनुभव किया है। परन्तु, इस तरहकी उदासीनता पहले कभी नहीं देखी। फिर भी, व्यथित होनेके बदले मैं खुश ही हुआ। क्यों, सो जानता हूँ। यद्यपि युवती स्त्रियोंके मनकी गति-विधिको लेकर माथापच्ची करना मेरा पेशा नहीं है, और न इसके पहले यह काम मैंने कभी किया ही है, पर मेरे मनके भीतर जो बहुत जन्मोंकी अखण्ड धारावाहिकता छिपी हुई मौजूद है, उसके बहुदर्शनकी अभिज्ञतासे रमणी-हृदयका गूढ़ तात्पर्य स्पष्ट प्रतिभासित हो उठा। वह उसे अपना अपमान समझकर क्षुब्ध नहीं हुआ वरन् उसे प्रणय-अभिमान समझकर पुलकित हो उठा। शायद, इसी छिपी हुई धारावाहिकताके ही गुप्त इशारेसे मैंने अपनी श्मशान-यात्राके यहाँ तकके इतिहासमें, इस ज्ञातका उल्लेख तक नहीं किया कि प्यारीने कल-रातको मुझे श्मशानसे लौटा लानेके लिए आदमी भेजे थे और वह स्वयं भी बात पूरी होते ही उसी तरह गुप-चुप बाहर चली गई थी। इसीलिए है यह अभिमान! कल रातको लौटकर उससे मुलाकात करके मैंने यह नहीं कहा कि वहाँ क्या हुआ था। उसे जिस बातको अकेले बैठकर सुननेका सबसे पहले अधिकार था उसीको आज वह सबसे

पीछे बैठकर मानों दैवात् ही सुन सकी है। परन्तु, अभिमान भी इतना मीठा होता है!—जीवनमें उसके स्वादको उस दिन सबसे पहले उपलब्ध करके मैं बच्चेकी तरह एकातमें बैठ गया और लगातार चख-चखकर उसका उपभोग करने लगा।

आज दोपहरको मैं सो जाना चाहता था। विस्तरोंपर लेटे लेटे बीच बीचमें तन्द्रा भी आने लगी, परतु रतनके आनेकी आशा बार बार हिला हिलाकर उसे तोड़ देने लगी। इस तरह समय तो निकल गया परंतु रतन नहीं आया। वह आयगा अवश्य, यह विश्वास मेरे दिलमें ऐसा दृढ़ हो रहा था कि, जब विस्तर छोड़ बाहर आकर मैंने देखा कि सूर्य पश्चिमकी ओर डुल पड़ा है, तब मुझे मन ही मन यह निश्चय हो गया कि जब मैं तन्द्रामें पड़ा हुआ था तब रतन, मेरे यहाँ आया है और मुझे निद्रित समझकर, लौट गया है।—मूर्ख! एक दफे पुकार ही लेता तो क्या हो जाता! दोपहरका निर्जन समय यों ही निरर्थक चला गया, यह सोचकर मैं क्रुद्ध हो उठा, परतु सध्याके बाद वह फिर आयगा और एक छोटा-सा अनुरोध,—नहीं तो लिखा हुआ एक पुर्जा,—जो कुछ भी हो, गुप-चुप हाथमें थमा जायगा, इसमें मुझे जरा भी सशय नहीं था। किन्तु यह समय कटे किस तरह? सामनेकी ओर देखते ही कुछ दूरपर बहुत-सी जल-राशि एक दम मेरी आँखोंके ऊपर झक् झक् कर उठी। वह किसी विस्मृत जमीन्दारका विशाल यश था। वह तालाब करीब आध कोस विस्तृत था। उत्तरकी ओरसे वह खिसलकर पुर गया था और घने जंगलसे ढँक गया था। गाँवके बाहर होनेके कारण गाँवकी स्त्रियाँ उसके जलका उपयोग नहीं कर पाती थीं। बातों ही बातोंमें सुना था कि यह तालाब कितना पुराना है और किसने बर्नवाया था, इसका पता किसीको नहीं है। एक पुराना टूटा घाट था, उसीके एकान्तमें जाकर मैं बैठ गया। एक समय इसके चारों ओर बढ़ता हुआ गाँव था जो न जाने कब हैजे और महामारीके प्रकोपसे ऊजड़ होकर, फिर अपने वर्तमान स्थानमें, सरक आया है। छोड़े हुए मकानोंके बहुत-से निशान चारों ओर विद्यमान हैं। डूबते हुए सूर्यकी तिरछी किरणोंकी छटाने धीरे धीरे झुककर तालाबके काले पानीमें सोना मथ दिया; मैं एकटक होकर देखता रहा।

इसके बाद धीरे धीरे सूर्य डूब गया। तालाबका काला पानी और भी काला हो गया। पासके ही जगलमेंसे दो-एक प्यासे सियार बाहर निकल कर डरते डरते

पानी पीकर चले गये । वहाँसे भेरे उठनेका समय हो गया है,—जिस समयको काटनेके लिए मैं वहाँ गया था वह कट गया है, यह सत्र अनुभव करके भी मैं वहाँसे उठ न सका,—मानों उस टूटे घाटने मुझ ज़बरन वहाँ बिठा रखा ।

खयाल आया कि जहाँ पैर रखकर मैं बैठा हुआ हूँ वहाँपर पैर रखकर न जाने कितने आदमी कितनी दफे आये हैं, गये हैं । इसी घाटपर वे स्नान करते थे, मुँह धोते थे, कपड़े छाँटते और जल भरते थे । इस समय वे कहाँके किस जलाशयमें ये समस्त नित्य-कर्म पूर्ण करते होंगे ? यह गाँव जब जीवित था तब निश्चयसे वे लोग इस समय यहाँ आकर बैठते थे । कितने ही गान गाकर और कितनी ही बात करके दिन-भरकी थकावट दूर करते थे । इसके बाद अकस्मात् एक दिन जब महाकाल महामारीका रूप धारण करके मारे गाँवको नोच ले गया तब न जाने कितने मरणोन्मुख व्यक्ति प्यासके मारे यहाँ दौड़े आये हैं और इसी घाटके ऊपर अपना अंतिम श्वास छोड़कर उसके साथ-चले गये हैं । शायद उनकी पिपासातुर आत्मा आज भी यहाँपर चक्कर काटती फिरती होगी । यह भी कौन जोर देकर कह सकता है कि जो आँखोंसे नहीं दिखाई देता वह है ही नहीं ? आज सुबह ही उस बृद्धने कहा था, “ बाबूजी, मनमें यह कभी मत सोचना कि मृत्युके उपरान्त कुछ श्रेय नहीं रहता,—असहाय प्रेतात्माएँ हमारे ही समान सुख-दुख दुधा-तृष्णा लेकर विचरण नहीं करतीं । ” इतना कहकर उसने वीर विक्रमाजीतकी कथा, और न जाने कितनी ही तांत्रिक साधु-संन्यासियोंकी कहानियाँ विस्तारसे कह सुनाई थीं । और कहा था कि, “ यह भी मत सोचना कि समय और सुयोग मिलनेपर वे दिखाई नहीं देती हैं या बात नहीं कर सकती हैं,—अथवा नहीं करती हैं । तुम्हें उस स्थानपर और कभी जानेके लिए मैं नहीं कहता, परन्तु जो लोग यह काम कर सकते हैं उनके समस्त दुःख किसी भी दिन सार्थक नहीं होते, इस बातपर स्वामें भी कभी अविश्वास मत करना । ”

उस समय, सुबहके प्रकाशमें, जिन कहानियोंने केवल निरर्थक हँसीका उपादान जुटा दिया था, इस समय वे ही कहानियाँ इस निर्जन गहरे अंधकारके बीच और ही दूसरे किस्मके चेहरे धारण करके दिखाई दीं । मनमें आने लगा कि जगत्में प्रत्यक्ष सत्य यदि कोई वस्तु है तो वह मृत्यु ही है । भली-भुरी सुख-दुखकी ये जीवनव्यापी अवस्थाएँ मानों आतिशवाजी हैं, जो तरह तरहके साज-सरजामके समान केवल किसी एक विशेष दिन जलकर राख हो जानेके लिए ही इतने यत्न

और इतने कौशलके साथ बनकर तैयार हुई हैं। तब मृत्युके उस पारका इतिहास यदि किसी तरह सुन लिया जा सके तो उसकी अपेक्षा बड़ा लाभ और क्या है ? फिर उसे कोई भी कहे और कैसे भी कहे।

हठात् किसीके पैरोंके शब्दसे मेरा ध्यान भग हो गया। पलट कर देखा, केवल अधकार है, कहीं कोई नहीं है। मैं बदन झाड़कर उठ खड़ा हुआ। गत रात्रिकी बात याद करके मन ही मन हँसकर बोला, नहीं अब और यहाँ नहीं बैठ रहना चाहिए। कल दाहिने कानके ऊपर उसास छोड़ गया था आज आकर यदि बाँयें कानपर छोड़ना शुरू कर दे तो यह कुछ अधिक सहज न होगा।

वहाँ बैठे बैठे कितनी देर हो गई थी और अब कितनी रात है, यह मैं ठीक तौरसे निश्चित नहीं कर सका। मालूम होता है कि आधी रातके आसपासका समय होगा। परतु अरे यह क्या ! चला जा रहा हूँ तो चला ही जा रहा हूँ, उस सकरी पगडंडीका जैसे अन्त ही नहीं होता ! इतने बहुतसे तम्बुओंमेंसे एक दीपकका भी प्रकाश नजर नहीं आता ! बहुत देरसे सामने एक बाँसका वृक्ष नजर रोककर खड़ा था, एकाएक खयाल आया कि इसे तो आते समय देखा नहीं था ! दिशा भूलकर, कहीं और किसी ओर तो नहीं चल दिया हूँ ? कुछ और चलनेपर मालूम हुआ कि वह बाँसका वृक्ष नहीं है, किन्तु, कुछ इमलीके पेड़, एक दूसरेसे सटे हुए, दिशाओंको ढके जमात बाँधकर खड़े हैं और उन्हींके नीचेसे होकर रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा जाकर अदृश्य हो गया है। स्थान इतना अधकारपूर्ण है कि अपना हाथ भी अपनेको नहीं दिखाई देता। छाती घड़घड़ाने लगी।—अरे मैं जा कहाँ रहा हूँ ? आँख-कान बन्द करके किसी तरह उन इमलीके वृक्षोंके पार जाकर देखता हूँ कि सामने अनन्त काल आकाश, जितनी दूर नजर जाती है उतनी दूरतक, विस्तृत हो रहा है। किन्तु, सामने वह ऊँची-सी जगह क्या है ? नदीके किनारेका सरकारी बाँध तो नहीं है ? दोनों पैर मानों टूटनेसे लगे, फिर भी उन्हें किसी तरह घसीटकर मैं उसके ऊपर चढ़ गया। जो सोचा था ठीक वही हुआ। उसके ठीक नीचे ही वह महा श्मशान था ! फिर किसीके कदमोंका शब्द सामनेसे होकर नीचे श्मशानमें जाकर विलीन हो गया। इस बार मैं किसी तरह लड़खड़ाता हुआ चला और उसी धूल-रेतीके ऊपर बेहोशकी तरह धपसे बैठ गया। अब मुझे लेश-भर भी सदेह नहीं रहा कि कोई मुझे एक महा श्मशानसे लेकर दूसरे महा श्मशानतक रास्ता दिखाता हुआ पहुँचा गया है। जिसके पद-शब्द सुनकर, उस फूटे घाटपर,



शरीर झाड़कर मैं उठ खड़ा हुआ था उसीके पद-शब्द, इतनी देर बाद, उस तरफ, सामनेकी ओर, विलीन हो गये ।

## १०

हरेक घटनाका कारण जाननेकी जिद मनुष्यको जिस अवस्थामें होती है उस अवस्थाको मैं पार कर गया हूँ । इसलिए, किस तरह उस सूचीभेद्य अधिकार-पूर्ण आधी रातको मैं अकेला, रास्तेको पहिचानता हुआ, तालाबके टूटे घाटसे इस महा इमजानके समीप आ उपस्थित हुआ, और किसके कदमोंकी वह आवाज, उस स्थानसे बुलाती और इशारा करती हुई, इतनी ही देरमें सामने विलीन हो गई, इन सब प्रश्नोंकी मीमासा करने-जैसी बुद्धि मुझमें नहीं है । पाटकोंके समीप अपनं इस दैन्यको स्वीकार करनेमें मुझे चरा भी लजा नहीं है । यह रहस्य आज भी मेरे समीप उतने ही अधिकारसे ढँका हुआ है । परन्तु, इसीलिए, प्रेत योनिको स्वीकार करना भी इस स्वीकारोक्तिका प्रच्छन्न तात्पर्य नहीं है । क्यों कि, अपनी आँखों मैंने देखा है,—हमारे गाँवमें एक पागल था । वह दिनको, घर घर घूमकर, भीख माँगकर खाता था और रातको बाँसके ऊपर कपड़ा डालकर, और उसे सामनेकी ओर ऊँचा करके, रास्ते रास्ते बगीचोंके झाड़ोंकी छायामें, घूमता फिरता था । उसके चेहरेको देखकर अँधेरेमें न जाने कितने लोगोंकी दँतौरी बंध बंध गई है ! इसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं था, फिर भी यह उसका अँधेरी रातका नित्यका काण्ड था । मनुष्यको व्यर्थ ही डर दिखानेके लिए और भी जितने प्रकारके अद्भुत ढँग वह करता था उनकी सीमा नहीं थी । सूखी लकड़ियोंके गट्टेको पेड़की डालसे बाँधकर उसमें आग लगा देता, मुखपर काली स्याही पोतकर विशालाक्षी देवीके मंदिरमें बहुत क्लेश सहते हुए खड़ा रहता और उठा-बैठा करता, गहरी रातके समय घरके पिछवाड़े बैठकर नाकके सुरसे किसानोंके नाम ले-लेकर पुकारा करता,—परन्तु, फिर भी, कोई किसी दिन उसे पकड़ न पाया । दिनके समय उसकी चाल-चलन, स्वभाव-चरित्र आदि देखकर उसपर जरा-सा भी सन्देह करनेकी बात किसीके भी मनमें उदय नहीं हुई । और यह केवल हमारे ही गाँवमें नहीं,—पासके आठ-दस गाँवोंमें भी वह यही करता फिरता था । मरते समय वह अपनी बदजाती खुद ही स्वीकार कर गया और उसके मरनेके बाद भूतका उपद्रव भी वहाँ बन्द हो गया । इस क्षेत्रमें भी शायद वैसा ही कुछ

था,—शायद नहीं भी हो। परन्तु जाने दो इस बातको।

हाँ, कह रहा था कि, उस धूल और रेतीसे भरे हुए बाँधके ऊपर जब मैं हतबुद्धि-सा होकर बैठ गया तब केवल दो लघु पद-ध्वनियों भीतर जाकर धीरे धीरे विलीन हो गईं। खयाल आया, मानों उसने स्पष्ट करके बता दिया हो,—“राम राम, तूने यह क्या किया ? तुझे इतनी दूरतक रास्ता बताकर ले आया, सो क्या वहाँ बैठ जानेके लिए ? आ, आ ! एक दफे हम लोगोके भीतर चला आ। इस तरह अपवित्र अपृथ्यके समान प्रागणके एकान्तमें मत बैठ,—हम सबके बीचमे आकर बैठ।” यह बात मैंने कानोंसे सुनी थी या हृदयके भीतर अनुभव की थी, सो अब याद नहीं कर सकता। परन्तु, उस समय भी जो मुझे होश बना रहा, इसका कारण यह है कि चैतन्यको जबर्दस्ती पकड़ रखनेसे वह यों ही एक प्रकारसे बचा रहता है, बिल्कुल ही नहीं चला जाता, यह मैंने अच्छी तरह देखा है। इसीलिए, यद्यपि दोनों आँखोंको खोलकर मैं देखता रहा, परन्तु वह मानो तन्द्राका देखना था। वह न तो नींद ही थी और न जागरण ही था। उसमें निद्रितका विश्राम भी नहीं रहता और जाग्रतका उद्यम भी नहीं आता।

फिर भी मैं इस बातको नहीं भूला कि बहुत रात बीत गई है, मुझे तम्बूमें लौटना है और उसके लिए क्रमसे कम एक बार चेष्टा तो करनी चाहिए, किन्तु, मनमे लगा कि यह सब व्यर्थ है। यहाँपर मैं अपनी इच्छासे तो आया नहीं हूँ, आनेकी कल्पना भी नहीं की, इसलिए, जो मुझे इस दुर्गम रास्तेपर रास्ता दिखलाकर लाया है, उसका कुछ विगेष प्रयोजन है। वह मुझे यों ही न लौट जाने देगा। पहले मैंने सुना था कि अपनी इच्छासे इनके हाथोंसे छुटकारा नहीं मिलता। चाहे जिस रास्ते चाहे जिस तरह जोर करके क्यों न निकलो, सब रास्ते गोरख-धधेकी तरह धुमा-फिराकर पुरानी जगहपर ही लाकर हाजिर कर देते हैं।

इसलिए, चंचल होकर छटपटाना सम्पूर्ण तौरसे अनावश्यक समझकर, मैं किसी तरहकी हिलने-डुलनेकी भी चेष्टा किये बिना, जब स्थिर होकर बैठ गया तब जो वस्तु अकस्मात् मेरी नजर पड़ी, वह मुझे किसी दिन भी विस्मृत नहीं हुई।

रात्रिका भी एक स्वतंत्र रूप होता है और उसे, पृथिवीके झाड़-पाले, गिरि-पर्वत आदि जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं उनसे, अलग करके देखा जा सकता है, यह मानों आज पहले ही पहल मेरी दृष्टिमे आया। मैंने आँख उठाकर देखा,

अन्तहीन काले आकाशके नीचे, सारी पृथिवीपर आसन जमाये, गभीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये बैठी है और सम्पूर्ण चराचर विश्व मुख बन्द किये, साँस रोके, अत्यन्त सावधानीसे स्तब्ध होकर उस अटल शान्तिकी रक्षा कर रहा है। एकाएक आँखोके ऊपरसे मानो सौन्दर्यकी एक लहर दौड़ गई। मनमें आया कि किस मिथ्यावादीने यह बात फैलाई है कि केवल प्रकाशका ही रूप होता है, अन्धकारका नहीं ? भला, इतनी बड़ी झूठ मनुष्यने किस तरह चुपचाप मान ली होगी ! यह तो आकाश और वायु, स्वर्ग और मर्त्य, सबको परिव्याप्त करके, दृष्टिसे भीतर-बाहर, अन्धकारका पूर बढा आ रहा है। वाह वाह ! ऐसा सुन्दर रूपका झरना और कब देखा है ! इस ब्रह्माण्डमे जो जितना गभीर, जितना अचिन्त्य, जितना सीमाहीन है,—वह उतना ही अन्धकारमय है। अगाध समुद्र स्थाही जैसा काला है; अगम्य गहन अरण्यानी, भीषण अन्धकारमय है, सर्व-लोकोका आश्रय, प्रकाशका भी प्रकाश, गतिकी भी गति, जीवनका भी जीवन, सम्पूर्ण सौन्दर्यका प्राण-पुरुष भी, मनुष्यकी दृष्टिमें, निबिड अन्धकारमय है। परन्तु, सो क्या रूपके अभावमें ? जिसे समझते नहीं, जानते नहीं, जिसके अन्तरमें प्रवेश करनेका पथ नहीं पाते,—वह उतना ही अन्धकारमय है। मृत्यु इसीलिए मनुष्यकी दृष्टिमें इतनी काली है, और इसीलिए उसका परलोक-पथ इतने दुस्तर अधेरेमे मग्न है ! इसीलिए राधाके दोनो नेत्रोमे समाकर जिस रूपने प्रेमके पूरमें जगत्को बहा दिया, वह भी घनश्याम है। मैने कभी ये सब बाते सोचीं नहीं, किसी दिन भी इस रास्ते चला नहीं, फिर भी, न जाने किस तरह इस भयसे भरे हुए महाश्मशानके समीप बैठकर, अपने इस निरुपाय निःसङ्ग अकेलेपनको लोचकर, आज सारे हृदयमे एक अकारण रूपका आनन्द खेलता फिरने लगा और बिल्कुल एकाएक यह बात मनमें आई कि कालेमें इतना रूप है, सो पहले तो किसी दिन समझा-नहीं ! तब तो शायद मृत्यु भी काली होनेके कारण कुत्सित नहीं है, एक दिन जब वह मुझे दर्शन देने आवेगी तब शायद उसके इस प्रकारके, कभी समाप्त न होनेवाले, सुन्दर रूपसे मेरी दोनो आँखें जुड़ा जायँगी। और अगर वह दर्शन देनेका दिन आज ही आ गया हो, तो हे मेरे काले ! ओ मेरी समीपस्थ पदध्वनि ! हे मेरे सर्व-दुःख-भय-व्यथाहारी अनन्त सुन्दर ! तुम अपने अनादि अन्धकारसे सर्वाङ्ग भरकर मेरी इन दोनों आँखोकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष होओ, मैं तुम्हारे इस अन्ध अन्धकारसे धिरे हुए निर्जन मृत्यु-

मंदिरके द्वारपर, तुम्हें निर्भयतासे वरण करके, बड़े आनन्दसे तुम्हारा अनुकरण करता हूँ। सहसा मेरे मनमें आया,—तब उसके इस निर्वाक आह्वानकी उपेक्षा करके अत्यन्त हीन अन्तेवासीके समान, मैं यहाँ बाहर किस लिए बैठा हूँ? एक दफे भीतर बीचमें जाकर क्यों न जा बैठूँ।

नीचे उतरकर मैं श्मशानके ठीक बीचों बीच बिलकुल जमकर बैठ गया। कितनी देरतक इस तरह स्थिर बैठा रहा, इसका मुझे उस समय होश नहीं था। होश आनेपर देखा कि उतना अन्धकार अब नहीं रहा है,—आकाशका एक प्रान्त मानों स्वच्छ हो गया है, और, उसके पास ही शुक्र तारा चमक रहा है। कुछ दबी हुई-सी बातचीतका कोलाहल मेरे कानोंमें पहुँचा। अच्छी तरह निरीक्षण करके देखा, कि दूरपर सेमरके वृक्षकी आड़में, बाँधके ऊपरसे होकर, कुछ लोग चले आ रहे हैं; और उनकी दो-चार लालटेनोंका प्रकाश भी आसपासे इधर-उधर हुल रहा है। फिरसे, बाँधके ऊपर चढ़कर, उस प्रकाशमें ही मैंने देखा कि दो बैलगाड़ियोंके आगे-पीछे कुछ लोग इसी ओर बढ़े आ रहे हैं। समझ पड़ा कि कुछ लोग इस रास्ते होकर स्टेशनकी ओर जा रहे हैं।

मुझे उस समय यह सुबुद्धि सूझ आई कि रास्ता छोड़कर मेरा दूर-खिसक जाना आवश्यक है। क्योंकि, आगतुकोंका दल चाहे कितना भी बुद्धिमान् और साहसी क्यों न हो, एकाएक इस अंधेरी रात्रिमें, इस तरहके स्थानमें, मुझे अकेला भूतकी तरह खड़ा देख कर चाहे और कुछ न करे, परन्तु, एक विकट चीख-पुकार अवश्य मचा देगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मैं लौटकर अपनी पुरानी जगहपर जा खड़ा हुआ, और थोड़े समय बाद ही दो चटाई लगी हुई बैलगाड़ियाँ, पाँच छह आदमियोंके पहरेमें, मेरे सामने आ पहुँचीं। एक बार खयाल आया कि आगे चलनेवाले दो आदमी मेरी ओर देखकर, क्षण कालके लिए स्थिर हो, खड़े रहे और अत्यधिक धीमे स्वरमें मानों कुछ कह-सुनकर आगे चले गये, और थोड़ी-सी ही देरमें वह सारा दल, बाँधके किनारेकी एक झाड़ीकी ओटमें, अदृश्य हो गया। यह अनुभव करके कि रात अब अधिक बाकी नहीं रही है, जब मैं लौटनेकी तैयारी कर रहा था, ठीक उसी समय उन वृक्षोंकी ओटमेंसे आती हुई खूब ऊँचे कण्ठकी पुकार कानोंमें आई, “श्रीकान्त बाबू—”

मैंने उत्तर दिया, “कौन है रे, रतन ?”

“ हॉ बाबू, मैं ही हूँ । जरा आंगे बढ़ आइए । ” जल्दीसे बाँधके ऊपर चढ़कर पुकारा, “ रतन, तुम लोग क्या घर जा रहे हो ? ”

रतनने उत्तर दिया, “ हॉ, घर जा रहे हैं,—मॉ गाड़ीमें हैं । ”

मेरे निकट पहुँचते ही प्यारीने पर्देमेसे मुँह बाहर निकालकर कहा, “ दर-बानकी बात सुनकर ही मैं समझ गई थी कि तुम्हें छोड़ और कोई नहीं है, गाड़ी-पर आओ, कुछ बात करनी है । ”

मैंने निकट आकर पूछा, “ क्या बात है ? ”

“ कहती हूँ, ऊपर आ जाओ । ”

“ नहीं, ऐसा नहीं कर सकता, समय नहीं है । सुबह होनेके पहले ही मुझे तम्बूमे पहुँचना है । ” प्यारीने हाथ बढ़ाकर चटसे मेरा दाहिना हाथ पकड़ लिया और तेज जिदके स्वरमे कहा, “ नौकर-चाकरोके सामने छीना-झपटी मत करो,—तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, चुपचाप ऊपर चढ़ आओ—”

उसकी अस्वाभाविक उतेजनासे मानो कुछ हत-बुद्धि-सा होकर मैं गाड़ीपर चढ़ गया । प्यारीने गाड़ीको हॉकनेकी आज्ञा देकर कहा, “ आज फिर इस जगह क्यों आये ? ”

मैंने सच सच बात कह दी, “ नहीं मालूम, क्यों आया । ”

प्यारीने अब तक भी मेरा हाथ नहीं छोड़ा था । बोली, तुम्हें नहीं मालूम ? अच्छा, ठीक, परन्तु छिपकर क्यों आये थे ? ”

मैं बोला, “ यह ठीक है कि यहाँ आनेकी बात किसीको मालूम नहीं है, किन्तु छिपकर नहीं आया हूँ । ”

“ यह झूठ है । ”

“ नहीं । ”

“ इसका मतलब ? ”

“ मतलब यदि खोलकर बता दूँगा तो विश्वास करोगी ? न तो मैं छिपकर ही आया हूँ, और न मेरी इच्छा ही आनेकी थी । ”

प्यारीने व्यगके स्वरमे कहा, “ तो फिर तुम्हें तम्बूमेंसे भूत उडा ले आया है,—मालूम होता है, यही कहना चाहते हो, क्यों ? ”

“ नहीं, सो नहीं कहना चाहता । उडाकर कोई नहीं लाया, अपने ही पैरों चलकर आया हूँ, यह भी सच है । किन्तु क्यों आया, कब आया, सो नहीं कह सकता । ”

प्यारी चुप हो रही। मैं बोला, “ राजलक्ष्मी, नहीं जानता कि तुम विश्वास कर सकोगी या नहीं, परन्तु, वास्तवमें जो कुछ हुआ है, सो एक अचरज-भरा च्यापार है। ” इतना कहकर मैंने सारी घटना अथसे इतिपर्यन्त कह दी।

सुनते सुनते मेरे हाथमें रखा हुआ उसका हाथ कई बार सिहर उठा; परन्तु, उसने एक भी बात नहीं कही। पर्दा उठा हुआ था, पीछेकी ओर नजर डालकर देखा, आकाश उज्ज्वल हो गया है। बोला, अब मैं जाऊँ ? ”

प्यारीने स्वप्नाविष्टकी तरह कहा “ नहीं ! ”

“ नहीं कैसे ? इस तरह चले जानेका अर्थ क्या होगा, सो जानती हो ? ”

“ जानती हूँ,—सब जानती हूँ। परन्तु, ये लोग तुम्हारे अभिभावक या सरक्षक तो हैं नहीं, जो तुम्हें अपने मानके लिए प्राण दे देंगे होंगे। ” इतना कहकर उसने हाथको छोड़कर पैर पकड़ लिये और रुद्ध स्वरमें कहा “ कान्त दादा, वहाँ लौटकर जाओगे तो जीते न बचोगे। तुम्हें मेरे साथ न चलना पड़ेगा, परन्तु वहाँ भी वापिस न लौटने दूँगी। तुम्हारा टिकिट खरीदे देती हूँ, तुम घर लौट जाओ, वहाँ एक घड़ी-भरके लिए भी मत ठहरो। ”

मैं बोला, “ मेरे कपड़े-बिस्तर आदि जो वहाँ पड़े हैं ! ”

प्यारी बोली, “ पड़े रहने दो। उनकी इच्छा होगी तो भेज देंगे, नहीं तो जाने दो। उनका मूल्य अधिक नहीं है। ”

मैं बोला, “ उनका दाम अधिक नहीं है यह सच है, परन्तु, मेरी जो मिथ्या चदनामी होगी, उसका दाम तो कम नहीं है। ”

प्यारी मेरे पैर छोड़कर चुप हो रही। गाड़ी इसी समय एक मोड़पर फिरी, जिससे पीछेका दृश्य मेरे सामने आ गया। एकाएक याद आया कि सामनेके उस पूर्व दिशाके आकाशके साथ इस पतिताके मुखकी मानों एक गहरी समानता है। दोनोंके ही बीचसे मानो एक विराट् अभि-पिंड अन्धकारको भेद करता हुआ आ रहा है, उसीका आभास मुझे दिखाई दिया है। मैं बोला, “ चुप क्यों हो रही ? ”

प्यारी एक म्लान हँसी हँसकर बोली, “ तुम क्या जानो कान्त बाबू, कि जिस कलमसे जीवन-भर केवल जाली खत लिखती रही हूँ, उसी कलमसे आज दान-पत्र लिखनेको हाथ नहीं चल रहा है। जाते हो ? अच्छा जाओ। किन्तु वचन दो कि आज बारह बजनेके पहले ही वहाँसे चल दोगे ? ”

“ अच्छा, देता हूँ। ”

“ किसीके कितने ही अनुरोधसे आजकी रात वहाँ न काटोगे, बोले ? ”

“ नहीं, नहीं काटूँगा । ”

प्यारीने अपनी अँगूठी उतारकर मेरे पैरोंपर रख दी, गल-बल्ल होकर प्रणाम किया और पैरोंकी धूल अपने सिरपर लेकर उस अँगूठीको मेरी जेबमें डाल दिया । बोली, “ तब जाओ—मैं समझती हूँ कि डेढेक कोस जगह तुम्हें अधिक चलना होगा । ”

बैलगाड़ीसे उतर पड़ा । उस समय प्रभात हो गया था ।

प्यारीने अनुनय करके कहा, “ मेरी और भी एक बात तुम्हे रखनी होगी । घर लौटते ही मुझे एक पत्र लिखना होगा । ”

मैंने मजूर करके प्रस्थान किया । एक दफे भी लौटकर पीछेकी ओर नहीं देखा कि वे लोग खडे हैं अथवा आगे चल दिये हैं । परंतु, बड़ी दूरतक अनुभव करता रहा कि उन दो चक्षुओंकी सजल-करुण दृष्टि मेरी पीठके ऊपर बार बार पछाड़ खा खाकर गिर रही है ।

अड्डेपर पहुँचते ही प्रायः आठ बज गये । रास्तेके किनारे, प्यारीके दूटे हुए तम्बूकी, त्रिखरी हुई परित्यक्त वस्तुओपर मेरी नजर पड़ते ही एक निष्फल क्षोभ छातीमें मानो हाहाकार कर उठा । मुँह फेरकर जल्दी जल्दी पैर रखते हुए मैंने अपने तम्बूमें प्रवेश किया ।

पुरुषोत्तमने पूछा, “ आप बड़े भोर ही घूमने बाहर चले गये थे ? ”

हॉ-ना किसी तरहका जवाब दिये वगैर ही मैं विस्तरोंपर आँखें बन्द करके लेट रहा ।

## ११

प्यारीके निकट जो वादा किया था उसकी मैंने रक्षा भी की थी, घर लौटते ही मैंने यह खबर जताकर उसे एक चिट्ठी लिख दी । जवाब भी जल्द ही आ गया । मैं एक बातपर बराबर ध्यान दे रहा था कि किसी भी दिन प्यारीने मुझे अपने पटनेके मकानपर आनेके लिए, जोर डालना तो दूर रहा, साधारण तौरसे मौखिक निमंत्रण भी नहीं दिया । इस पत्रमें भी इसका कोई इशारा न था । सिर्फ नीचेकी ओर एक निवेदन था, जिसे कि आज भी मैं नहीं भूला हूँ, “ सुखके दिनोंमें नहीं, तो दुःखके दिनोंमें मुझे न भूलिए,—यही मेरी प्रार्थना है । ”

दिन कटने लगे । प्यारीकी स्मृति धुंधली होकर प्रायः विलीन हो गई । परन्तु एक अचरज-भरी बात बीच बीचमें मेरी दृष्टिमें पड़ने लगी कि अबकी दफे शिकारसे वापिस लौटनेके बादसे मेरा मन मानों कुछ अनमना-सा रहने लगा है, जैसे मानो एक अभावकी वेदना, दबी हुई सर्दिके समान, शरीरके रोम-रोममें परिव्याप्त हो गई है । बिस्तरोंपर जाते ही वह चुभने लगती है ।

याद आता है कि वह होलीकी रात थी । माथेपरसे अबीरका चूर्ण साबुनसे धोकर तबतक साफ नहीं किया था । क्लान्त विवश शरीरसे बिस्तरोंपर पड़ा था । पासकी खिड़की खुली हुई थी, उसीमेंसे सामनेके पीपलके पत्तोंकी फाँकोंमेंसे आकाशव्यापी ज्योत्स्नाकी ओर ताक रहा था । इतना ही याद आ रहा है । परन्तु क्यों दरवाजा खोलकर सीधा स्टेशनकी ओर चल दिया और पटनाका टिकिट कटाकर ट्रेनपर चढ़ गया,—यह याद नहीं आता । रात बीत गई । परन्तु दिनको जैसे ही मैंने सुना कि 'बाढ़' स्टेशन है और पटना आनेमें अब अधिक विलम्ब नहीं है, वैसे ही एकाएक वहीं उतर पड़ा । जेबमें हाथ डालकर देखा तो घबड़ानेका कोई कारण नजर नहीं आया,—एक दुअत्री और दसेक पैसे उस समय भी मौजूद थे । खुश होकर दूकानकी खोजमें स्टेशनसे बाहिर हो गया । दूकान मिल गई । चिवड़ा, दही और शक्करके सयोगसे अत्युत्कृष्ट भोजन सम्पन्न करनेमें करीब आधा खर्च हो गया । होने दो, जीवनमें इस तरह कितना ही खर्च हुआ करता है,—इसके लिए रज करना कायरता है ।

गाँव घूमनेके लिए बाहर हुआ । घण्टे-भर भी न घूमा था कि, अनुभव हुआ, उस गाँवका दही और चिवड़ा जिस परिमाणमें उपादेय है उसी परिमाणमें पीनेका पानी निकृष्ट है । मेरे इतने प्रचुर भोजनको इतने-से समयमें इस तरह पचाकर उसने नष्ट कर दिया कि, ऐसा मालूम होने लगा कि, मानों दस-बीस दिनसे अन्नका एक दाना भी मुँहमें नहीं पड़ा है । ऐसे खराब स्थानमें वास करना एक सुहूर्त-भरके लिए भी उचित नहीं है, ऐसा सोचकर स्थान त्याग करनेकी कल्पना कर ही रहा था कि,—देखता हूँ, पासमें ही एक आमके बगीचेके भीतरसे धुआँ निकल रहा है ।

मैंने न्याय-शास्त्र सीखा था । धुआँको देखकर अग्निका निश्चयसे अनुमान कर लिया, इतना ही नहीं, वरन् अग्निके हेतुका अनुमान करते भी मुझे देर नहीं लगी । इसलिए सीधा उसी ओर चल दिया । पहले ही कह चुका हूँ कि पानी यहाँका बहुत ही खराब है ।



वाह, यही तो चाहिए था ! सच्चे सन्यासीका आश्रम मिल गया ! बड़ी भारी धूनीके ऊपर लोटेमे चाहके लिए पानी चढा है। 'बाबा' आधी आँखे मूँदे सामने बैठे हैं, उनके आसपास गॉजेकी सामग्री रक्खी है। एक सन्यासी बच्चा बकरी दुह रहा है, सेवाके लिए 'चाय' चाहिए। दो ऊँट, दो टट्टू और एक बछड़ेवाली गाय, पास पास वृक्षोकी डालोसे बंधे हुए हैं। पासहीमे एक छोटा-सा तम्बू है। ढूँककर देखा, भीतर मेरी ही उम्रका एक चेला दोनो पैरोके बीच पत्थरका खल दबाये नीमके सोटेसे भङ्ग तैयार कर रहा है। देखकर मैं भक्तिसे सरावाँर हो गया और पलक मारते ही बाबाजीके पद-तलमे एकवारगी लोट गया। पद धूलि मस्तकपर धारण कर हाथ जोड मन ही मन बोला, "कैसी असीम करुणा है भगवान् तुम्हारी ! कैसे स्थानमे मुझे ले आये ! चूल्हेमे जाय प्यारी, — मुक्ति-मार्गके इस सिंह-द्वारको छोडकर तिलार्ध भी यदि और कहीं जाऊँ तो, मेरे लिए, अनन्त नरकमें भी और जगह न रहे।"

साधुजी बोले, "क्यो बेटा ?"

मैंने निवेदन किया, "मैं गृहत्यागी, मुक्तिपथान्वेषी, हतभाग्य शिशु हूँ, मुझ-पर दया करके अपनी चरण-सेवाका अधिकार दीजिए।"

साधुजीने मृदु हँसी हँसकर दो दफे सिर हिलाकर सक्षेपमे कहा, "बेटा, घर लौट जा, यह पथ अति दुर्गम है।"

मैंने करुण कंठसे उसी क्षण उत्तर दिया, "बाबा, महाभारतमें लिखा है, महापापिष्ठ जगाई और माधाई वसिष्ठ मुनिके चरण पकडकर स्वर्ग चले गये, तो क्या मै आपके पैर पकडकर मुक्ति भी नहीं पाऊँगा ? निश्चयसे पाऊँगा।"

साधुजी प्रसन्न होकर बोले, "बात तेरा सच्चा हय। अच्छा बेटा, रामजीका खुसी।" जो दूध दुह रहा था उसने आकर चाय तैयार करके बाबाजीको दी। उसकी 'सेवा' हो गई, हम लोगोने प्रसाद पाया।

भाँग तैयार हो रही थी सध्याकालके लिए। परतु, उस समय भी बेला बाकी थी इसलिए और तरहके आनदका उद्योग करते हुए 'बाबा'ने अपने दूसरे चेलेको गॉजेकी चिलम इगारेसे दिखा दी, तथा उसे भरनेमे देर न हो इसके लिए विशेष 'उपदेश' दे दिया।

आध घण्टा बीत गया। सर्वदर्शी बाबाजी मेरे प्रति परम सतुष्ट होकर बोले, "हाँ बेटा, तुममें अनेक गुण हैं। तुम मेरे चेला होनेके अति उपयुक्त पात्र हो।"

मैंने, परम आनन्दके साथ, और एक दफे बाबाजीके चरणोंकी धूलि मस्तक-  
पर धारण कर ली ।

दूसरे दिन मैं प्रातःस्नान करके आया । देखा कि गुरुजीके आशीर्वादसे अभाव  
किसी चीजका नहीं है । प्रधान चेला जो थे उन्होंने, एक नया टटका गेरुए  
कपड़ोंका सूट, दस जोड़ी छोटी बड़ी रुद्राक्षकी मालाएँ और एक जोड़ा पीतलके  
कढ़े बाहर निकाल दिये । जहाँ जो वस्तु धारण करनेकी थी उसे उस स्थानपर  
सजाकर, थोड़ी-सी धूनीकी राख मस्तकपर और मुँहपर मल ली । आँखें मीचकर  
मैंने कहा, “ बाबाजी, शीशा-बीसा कुछ है ? एक दफे मुँह देखनेकी प्रबल इच्छा  
हो रही है । ” मैंने देखा कि उन्हें भी रसका ज्ञान है । फिर भी उन्होंने कुछ  
गभीर होकर उपेक्षासे कहा, “ है एक ठो । ”

“ तो फिर, छुपाकर ले न आइए एक दफे । ”

दो भिनटके बाद आईना लेकर मैं एक वृक्षकी आड़में चला गया । पश्चिमके  
नाई जिस तरहका आईना हाथमें देकर क्षौर-कर्म सपादित करते हैं, उसी तरहकी  
यह छोटी टीन चढ़ी हुई आरसी थी । खैर, जैसी भी हो, मैंने देखा कि वह  
विशेष तरद्दुद किये जाने और सदा व्यवहारमें आनेके कारण खूब साफ सुथरी  
थी । चेहरा देखकर हँसे बिना न रहा गया । कौन कह सकता था कि मैं वही  
श्रीकान्त हूँ जो कुछ ही समय पूर्व राजे-रजवाड़ोंकी मजलिसमें बैठकर बाईजीका गान  
सुना करता था । खैर, जाने दो ।

मैं घण्टे-भरके बाद गुरुमहाराजके समीप दीक्षाके लिए लाया गया । महाराज  
चेहरा देखकर अतिशय प्रीतिके साथ बोले, “ बेटा, एकाध महीना ठहर जाओ । ”

मैं धीरे-से ‘ बहुत अच्छा ’ कहकर उनकी पद-धूलि ग्रहण करके, हाथ जोड़-  
कर, भाक्तिसे भरकर एक तरफ बैठ गया ।

आज बातों ही बातोंमें उन्होंने आध्यात्मिकताके अनेक उपदेश दिये । इसकी  
दुरुहताके विषयमें, गभीर वैराग्य और कठोर साधनाके विषयमें,—आजकलके  
भण्ड पाखण्डी लोग इसे किस तरह कलङ्कित करते हैं उसका विशेष विवरण,  
तथा भगवत्के पाद-पद्मोंमें मतिको स्थिर करनेके लिए क्या क्या करना आवश्यक  
है,—इस काममें वृक्षजातीय शुष्क वस्तु विशेषके धुँएँको बार बार मुख-विवरके  
द्वारा शोषण करके नासा-रन्ध्र-पथसे शनैः शनैः विनिर्गत करनेसे कितना आश्चर्य-  
कारी उपकार होता है,—आदि सब उन्होंने अच्छी तरह समझा दिया, और इस

विषयमे मेरी अवस्था अत्यन्त आशाप्रद है यह इशारेसे बताकर उन्होने मेरे उत्साहको खूब बढ़ाया। इस तरह उस दिन मोक्ष-पथके अनेक निगूढ़ तात्पर्योंको जानकर मैं, गुरुमहाराजके तीसरे चेलेके रूपमें, बहाल हो गया।

गहरे वैराग्य और कठोर साधनाके लिए, महाराजके आदेशसे, हम लोगोंकी सेवाकी व्यवस्था कुछ कठोर किस्मकी थी। परिमाणमें वह जैसी थी स्वादमें भी वैसी ही थी। चाय, रोटी, घी, दूध, दही, चिवडा, शक्कर इत्यादि कठोर सात्विक भोजन और उन्हे पचानेके अनुपान। भगवत्पादारविंदोसे भी हमारा चित्त विक्षिप्त न हो, इस ओर भी हम लोगोंकी लेशमात्र लपरवाही नहीं थी। इसके फलस्वरूप मेरे सूखे काठमें फूल लग गये और कुछ तोद बढ़नेके लक्षण भी दिखाई देने लगे।

एक काम था,—भिक्षाके लिए बाहर जाना। संन्यासीके लिए यह सर्वप्रधान कार्य न होनेपर भी प्रधान कार्य था। क्यों कि, सात्विक भोजनके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध था। किन्तु, महाराज स्वयं यह नहीं करते थे, उनके सेवक ही पारी पारीसे किया करते थे। संन्यासीके अन्य दूसरे कर्तव्योंमें तो उनके दूसरे दो चेलोंको मैं बहुत जल्द लाँघ गया, परंतु, केवल इस काममें बराबर लँगड़ाता रहा। इमे किसी दिन भी अपने लिए सहज और रुचिकर न बना सका। फिर भी, एक सुभीता यह था कि, वह हिन्दुस्तानियोका देश था। मैं भले-बुरेकी बात नहीं कहता,— मैं सिर्फ यही कहता हूँ कि, बङ्गाल देशकी नाई वहाँकी औरतें 'बाबा हाथ जोडती हूँ, और एक घर आगे जाकर देखो' कहकर उपदेश नहीं देतीं, और पुरुष भी 'नौकरी न करके तुम भिक्षा क्यों माँगते हो?' यह कैफियत तलब नहीं करते। धनी-निर्धन, बिना किसी भेद-भावके सब ही, प्रत्येक घरसे, भिक्षा देते हैं,— कोई विमुख नहीं जाता। इसी तरह दिन जाने लगे, पन्द्रह दिन तो उसी आमके बागमे ही कट गये। दिनके समय तो कोई आपत-विपत नहीं थी, केवल रात्रिको मच्छरोंके काटनेकी जलनके मारे मन ही मन लगता था कि, भाड़में जाय मोक्ष-साधना। यदि शरीरके चमडेको कुछ और मोटा न किया जायगा, तो अब जान न बचेगी। अन्यान्य विषयोंमें बगाली लोग चाहे जितने भी श्रेष्ठ क्यों न हो, परंतु बगाली चमडेकी अपेक्षा हिन्दुस्तानी चमडा, इस विषयमें, सन्यासके लिए बहुत अधिक अनुकूल है, यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। उस दिन प्रातःस्नान करके सात्विक भोजन प्राप्त करनेके प्रयत्नमे बाहर जा ही रहा था कि गुरुमहाराजने

बुलाकर कहा,—

“ भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा ।

जिनहिं रामपद अति अनुरागा ॥ ”

अर्थात् “ स्ट्राईक दि टेण्ट ” ( तम्बू उखाड लो ),—प्रयागकी यात्रा करनी होगी । परन्तु, यह कार्य कुछ सहज नहीं है ! सन्यासीकी यात्रा जो ठहरी ! सधे हुए टट्टुओंको खोजते और उनपर सामान लादते, ऊँटपर महाराजकी जीन कसते, गाय-बकरियोंको साथ लेते, गट्टे-गठरियों बाँधते, सिलसिलेसे लगाते लगाते, एक पहर बीत गया । इसके बाद खाना खाकर दो कोस दूर सध्याके पहले ही बिठौरा गाँवके गेँवडे एक विराट् बटवृक्षके नीचे डेरा जमाया गया । जगह बहुत ही सुन्दर थी, गुरुमहाराजको खूब पसद आई । यह तो हुआ, परन्तु भरद्वाज मुनिके उस स्थान तक पहुँचते पहुँचते कितने महीने लग जायँगे, इसका मैं अनुमान नहीं कर सका ।

इस बिठौरा गाँवका नाम अभक्तिक मुझे क्यों याद रहा आया है सो यहाँ कहता हूँ । उस दिन पूर्णिमा तिथि थी, इसलिए, गुरुके आदेशसे हम तीनों जनें तीन दिशाओंमें भिक्षाके लिए बाहर निकल पड़े थे । अकेला होता तो उदर-पूर्तिके लिए कम कोशिश न करता । परन्तु, आज मेरी वह चाल नहीं थी, इसलिए बहुत कुछ निरर्थक यहाँ वहाँ घूम रहा था । एकाएक एक मकानके खुले हुए दरवाजेके भीतरसे मुझे एक बगाली लड़कीका चेहरा दिखाई पड़ गया । उसके कपड़े यद्यपि देशी करघेपर बुने हुए टाटकी तरह मोटे थे, किन्तु उन्हें पहिननेके विशेष ढगने ही मेरे कुतूहलको उत्तेजित कर दिया । मैंने सोचा, पाँच-छः दिनसे इस गाँवमें हूँ, करीब करीब सब घरोंमें हो आया हूँ, परन्तु बङ्गाली स्त्री तो दूरकी बात, बङ्गाली पुरुषका चेहरा तक भी नजर नहीं आया । साधु-संन्यासियोंके लिए कहीं रोक-टोक नहीं । भीतर प्रवेश करते ही वह स्त्री मेरी ओर देखने लगी । उसका मुँह मैं आज भी याद कर सकता हूँ । इसका कारण यह है कि दश-ग्यारह वर्षकी लड़कीकी आँखोंमें इतनी करुण, इतनी मलिन—उदास दृष्टि मैंने और कहीं कभी देखी है, ऐसा मुझे याद नहीं आता । उसके मुँहसे, उसके होठोंसे, उसकी आँखोंसे,—उसके सर्वांगसे मानों दुःख और निराशा फूटी पड़ती थी । मैंने एकबारगी बङ्गलामें कहा, “ कुछ भिक्षा देना, मा । ” पहले तो वह कुछ न बोली । इसके बाद उसके होठ एक दो बार काँपकर फूल उठे—और वह भर-भराकर रो उठी ।

मैं मन ही मन कुछ लजाकर रह गया। क्यों कि, सामने कोई न था तो भी, पासके घरमेंसे बिहारी औरतोकी बातचीत सुनाई पड रही थी। उनमेंसे यदि कोई एकाएक बाहर आकर इस अवस्थामे हम दोनोको देख ले, तो वह क्या सोचेगी, क्या कहेगी, यह कुछ भी मैं न सोच सका।—खड़ा रहूँ, या प्रस्थान कर जाऊँ, यह निश्चय कर सकनेके पूर्व ही उस लडकीने रोते रोते एक साँसमे ही हजार प्रश्न पूछ डाले, “तुम कहाँसे आ रहे हो ? कहाँ रहते हो ? तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेमे है ? तुम वहाँ कब जाओगे ? तुम्हें क्या राजापुर मालूम है ? वहाँके गौरी तिवारीको चीन्हते हो ?”

मैं बोला, “तुम्हारा घर क्या वर्द्धमान जिलेके राजापुरमे है ?”

उस लडकीने हाथोंसे आँखोका जल पोंछते हुए कहा, “हाँ, मेरे पिताका नाम गौरी तिवारी है, और भाईका नाम रामलाल तिवारी है। उन्हे क्या तुम चीन्हते हो ? तीन महीने हुए, मैं ससुराल आई हूँ,—अभीतक एक भी चिट्ठी मुझे नहीं मिली,—पिता, भाई, मा, गिरिबाला और बाबू कैसे हैं, कुछ भी नहीं जानती। वह जो पीपलका वृक्ष है,—उसके नीचे मेरी बहिनकी ससुरालका भकान है। उस सोमवारको जीजी गलेमें फाँसी लगाकर मर गई,—पर ये लोग कहते हैं कि—नहीं, वे हैजैसे मरी हैं।”

मैं विस्मयके मारे हतबुद्धि-सा हो गया। यह क्या बान है ? ये लोग, देखता हूँ कि, पूरे हिन्दुस्तानी हैं, परन्तु, लडकी एकवारगी शुद्ध बगालिन है। इतनी दूर, इन घरोंमे, इन लडकियोंकी ससुरालें क्यों कर हुई, और इनके पति, सास-ससुर आदि यहाँ क्या करने आये ?

मैंने पूछा, “तुम्हारी बहिनने गलेमें फाँसी क्यों लगाई ?”

वह बोली, “जीजी राजापुर जानेके लिए रात-दिन रोती थीं, खाती नहीं थीं, सोती नहीं थीं। इसीलिए उनके बाल धत्रीसे बाँधकर उन्हे सारे दिन और सारी रात खड़ा कर रक्खा था। इसीलिए जीजी गलेमें रस्सी डालकर मर गई।”

मैंने पूछा, “तुम्हारे भी सास-ससुर क्या हिन्दुस्तानी हैं ?”

उस लडकीने फिर एक बार रोकर कहा, “हाँ। मैं उन लोगोंकी बातचीत कुछ भी नहीं समझ पाती, उन लोगोंका खाना भी मैं मुँहमें नहीं डाल सकती,—मैं तो दिन-रात रोया करती हूँ। परन्तु, पिता न तो हमें चिट्ठी ही लिखते हैं और न लिवा ही ले जाते हैं।”

मैंने पूछा, “ अच्छा, तुम्हारे पिताने तुम्हें इतनी दूर ब्याहा ही क्यों ? ”

लड़की बोली, “ हम लोग तिवारी जो हैं । हमारी जातिके ब्याह-योग्य लड़के उस देशमें तो मिलते नहीं । ”

“ तुम्हें क्या वे मारते-पीटते भी हैं ? ”

“ और नहीं तो क्या ? यह देखो न ! ” इतना कहकर उस लड़कीने भुजा-ओंमें, पीठके ऊपर, गालोंपर, मारके निशान दिखाये और फफक फफक कर रोते हुए कहा, “ मैं भी जीजीकी ही तरह गलेमें फाँसी लगाकर मर जाऊँगी । ”

उसका रोना देखकर मेरे नेत्र भी सजल हो उठे और प्रश्नोत्तर या भीखकी अपेक्षा किये बगैरे ही मैं बाहर हो गया । किन्तु, वह लड़की मेरे पीछे पीछे चली आई और कहने लगी, “ मेरे पिताके पास जाकर तुम कहोगे न ? वे मुझे यहाँसे एक दफे ले जायें,—नहीं तो मैं—” मैं किसी तरह थोड़ा-सा सिर हिलाकर स्वीकार करके तेज चालसे अदृश्य हो गया । उस लड़कीका हृदयभेदी आवेदन मेरे दोनो कानोंमें गूँजने लगा ।

रास्तेके मोड़के ऊपर ही एक बनिएकी दूकान थी । प्रवेश करते ही दूकानदारने आदरके साथ मेरी अभ्यर्थना की । खाद्य द्रव्यकी भीख न माँगकर जब मैं एक चिठी लिखनेका कागज और कलम दावात माँग बैठा, तब उसने कुछ आश्चर्य तो किया, परन्तु इन्कार नहीं किया । उसी जगह बैठकर मैंने गौरी तिवारीके नामपर एक पत्र लिखकर डाल दिया । समस्त विवरण विवृत्त करनेके बाद अन्तमें यह बात लिखना भी मैं नहीं भूला कि “ लड़कीकी बहिन हालमें ही फाँसी लगा कर मर गई है और वह खुद भी, मार पीट अत्याचार सहन न कर सकनेके कारण उसी पथपर जानेका सकल्प कर चुकी है । तुम खुद आकर कुछ उपाय न करोगे तो क्या हो जायगा, सो कहा नहीं जा सकता । बहुत संभव है कि तुम्हारी चिठी-पत्री ये लोग तुम्हारी लड़कीको न देते हैं । ” उसपर ठिकाना लिखा, वर्धमान जिलेमें राजापुर ग्राम । मालूम नहीं कि वह पत्र गौरी तिवारीको पहुँचा या नहीं, और पहुँचा भी, तो उसने कुछ किया या नहीं । परन्तु वह घटना मेरे मनपर इस तरह मुद्रित हो गई है कि, इतने समयके बाद भी, पूरी तरह याद बनी हुई है, तथा, इस आदर्श हिन्दू समाजके सूक्ष्मातिसूक्ष्म जाति-भेदके विरुद्ध एक विद्रोहका भाव आज भी मेरे मनसे नहीं जाता ।

संभव है, यह जाति-भेदका सिद्धान्त बहुत ही अच्छा हो, जब कि इसी उपा-

यसे सनातन हिन्दू जाति आज तक बची हुई है, तब इसकी प्रचण्ड उपकारिताके सम्बन्धमें सशय करनेके लिए या प्रश्न करनेके लिए और कुछ शेष नहीं रहता। कहीं कोई दो बदनसीब लड़कियाँ दुःख न सह सकनेके कारण गलेमें फाँसी लगाकर मर जायँगी, इस डरसे इसका कठोर बन्धन बिन्दुमात्र शिथिल करनेकी कल्पना करना भी पागलपान है। किन्तु, उस लड़कीका रोना जो मनुष्य अपनी आँखों देख आया है, उसके लिए यह साध्य नहीं हो सकता कि, वह इस प्रश्नको अपने पासमें आनेसे रोक सके कि किसी तरह टिके रहना,—अपना अस्तित्वमात्र बनाये रखना, ही क्या जीवनकी चरम सार्थकता है? इस तरहकी तो बहुत-सी जातियाँ अपना अस्तित्व बनाये हुए मौजूद हैं। कोरकू हैं, कोल-भील-सथाल हैं, प्रशान्त महासागरके अनेक छोटे-मोटे द्वीपोंकी अनेक छोटी-मोटी जातियोंकी मनुष्य-सृष्टि शुरूसे अभीतक वैसी ही बनी हुई है। आफ्रिकामें हैं, अमेरिकामें हैं,—उन जातियोंमें भी इस तरहके सब कठोर सामाजिक आईन-कानून मौजूद हैं जिन्हें सुनकर शरीरका रक्त पानी हो जाता है। उम्रके लिहाजसे वे जातियाँ यूरोपकी अनेक जातियोंके अति वृद्ध प्रपितामहोंकी अपेक्षा भी प्राचीन हैं, और हमसे भी अधिक पुरातन हैं। किन्तु इसीलिए ये जातियाँ हमारी अपेक्षा सामाजिक आचार-व्यवहारमें श्रेष्ठ हैं, ऐसा अद्भुत सगय, मैं समझता हूँ, किसीके मनमें न उठता होगा। सामाजिक समस्याएँ झुड बाँधकर सामने नहीं आतीं। यो ही एकाध क्वचित् कदाचित् ही आविर्भूत होती है। अपनी दोनो बगाली लड़कियोंको हिन्दुस्तानियोंके घर ब्याहते समय गौरी तिवारीके मनमें शायद इस तरहका प्रश्न आया था। किन्तु, वह बेचारा इस दुरूह प्रश्नमेंसे छुटकारा पानेका कोई रास्ता न खोज सकनेके कारण ही अन्तमें सामाजिक यूप-काठके ऊपर दोनों कन्याओंका बलिदान देनेके लिए बाध्य हुआ था। जो समाज इन दोनो निरुपाय क्षुद्र बालिकाओंके लिए भी स्थान न दे सका, जो समाज अपनेको इतना-सा भी उदार बनानेकी शक्ति नहीं रखता, उस लँगड़े निर्जीव समाजके लिए अपने मनमें मैं किंचित्-मात्र भी गौरवका अनुभव नहीं कर सका। कहीं किसी एक बड़े भारी लेखकके लेखमें पढ़ा था कि हमारे समाजने जिस एक बड़े सामाजिक प्रश्नका उत्तर जगत्के सामने 'जाति-भेद' के रूपमें उपस्थित किया है, उसका अन्तिम फैसला आज तक भी नहीं हुआ है।—ऐसा ही कुछ उसमें कहा गया था। किन्तु उस समस्त युक्तिहीन उच्छ्वासका उत्तर देनेकी भी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। 'हुआ

नहीं है' और 'होगा नहीं' ऐसा प्रबल कण्ठसे घोषित करके जो लोग अपने ही प्रश्नके उत्तरको खुद ही दबा देते हैं उनको जवाब देनेकी भी प्रवृत्ति नहीं होती। खैर, जाने दो।

दूकानसे उठकर और हँद-खोजकर डाक-बक्समें उस बैरग पत्रको डाल कर जब मैं अपने डेरेपर आ पहुँचा, तब मेरे अन्यान्य सहयोगी आटा, दाल आदि संग्रह करके लौटे न थे।

मैंने देखा कि 'साधु-बाबा' आज मानों कुछ खीझे हुए हैं। कारण भी उन्होंने स्वयं प्रकट कर दिया, बोले, "यह गाँव साधु-सन्यासियोंके प्रति उतना अनुरक्त नहीं है, सेवादिकी व्यवस्था भी वैसी संतोषजनक नहीं करता, इसलिए कल ही इस स्थानका त्याग कर देना होगा।" 'जो आज्ञा' कहकर मैंने उसी क्षण उसका अनुमोदन कर दिया। मनके भीतर पटना देखनेका जो प्रबल कुतूहल छिपा था, अपने पास आज मैं उसे और अधिक ढँककर न रख सका।

सिवाय इसके, बिहारके इन गाँवोंमें किसी तरहका आकर्षण भी ढूँढे नहीं मिलता था। इसके पहले मैं बगालके अनेक गाँवोंमें विचरण कर चुका हूँ, किंतु, उनके साथ इनकी कोई तुलना ही नहीं हो सकती। नर-नारी, पेड़ पत्ते, जल-चायु,—कोई भी चीज अपनी सी नहीं मालूम होती थी। सारा मन सुबहसे लेकर रात्रिपर्यंत केवल 'भागू भागू' किया करता था।

सन्ध्याके समय महल्ले महल्लेसे उस तरह झाँझ-करतालके साथ कीर्तनका सुर कानोंमें नहीं आता। देव-मंदिरोंमें आरतीके काँसेके घण्टे आदि भी उस तरहका गम्भीर मधुर शब्द नहीं करते। इस देशकी स्त्रियों शङ्खोंको भी वैसी मीठी तरहसे बजाना नहीं जानतीं, तब यहाँ मनुष्य किस सुखके लिए रहते हैं? और मन ही मन ऐसा लगाने लगा कि यदि इन सब गाँवोंमें मैं न आ पड़ा होता तो अपने गाँवोंका मूल्य किसी दिन भी इस तरह न जान पाता। हमारे यहाँके पानीमें काई भरी रहती है, हवामें मलेरिया है, प्रायः सभी मनुष्योंके पेटमें पिलही बढ़ी हुई है, घर-घर मुकदमे-मामले हुआ करते हैं, महल्ले महल्लेमें दलबन्धियाँ हैं, सो सब रहने दो, परंतु फिर भी उसके बीच भी कितना रस, कितनी तृप्ति थी।—इस समय मानों, उसके विषयमें कुछ न जानते हुए भी, मैं सब कुछ जानने लगा।

दूसरे दिन तम्बू उखाड़कर यात्रा शुरू कर दी गई, और साधु बाबा



यथाशक्ति भरद्वाज मुनिके आश्रमकी ओर दलबल-सहित अग्रसर होने लगे । किंतु चाहे रास्ता सीधा पड़ेगा इस खयालसे हो, अथवा- मुनिने मेरे मनकी बात जान ली,—इस कारणसे हो, पटनाके दस कोसके भीतर उन्होंने और-फिर कहीं तम्बू नहीं गाडा । मनमे एक वासना थी ।—खैर, उसे इस समय रहने दो । पाप-ताप तो मैंने बहुत-से किये हैं, साधु-संग भी कुछ दिन करके पवित्र हो लूँ ।

एक दिन संध्याके कुछ पहले जिस जगह हमारा डेरा पडा, उसका नाम था छोटी बगिया । आरा स्टेशनसे यह स्थान आठ कोस दूर है ।- इस गाँवके एक प्रसिद्ध बंगाली सज्जनसे मेरा परिचय हो गया था । उनकी सदाशयताका यहाँ कुछ वर्णन करूँगा । उनके पैतृक नामको गुप्त रखकर ' राम बाबू ' कहना ही अच्छा है, क्यों कि अब तक वे जीवित हैं । और बादमे, अन्यत्र यद्यपि उनसे मेरा साक्षात्कार हुआ था, फिर भी वे मुझे पहिचान नहीं सके थे । इसमें कुछ अचरज भी नहीं है । परन्तु उनका-स्वभाव मैं जानता हूँ । गुप्त रूपसे उन्होंने जो सत्कार्य किये हैं उनका प्रकाश्य रूपमें उल्लेख किये जानेपर वे विनयसे सकुचित हो उठेंगे, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ । इस लिए उनका नाम है ' राम बाबू ' । किस तरह राम बाबू उस गाँवमे आये थे और किस तरह उन्होंने जमा-जमीन संग्रह करके खेती-बारी की थी, सो मुझे नहीं मालूम । इतना ही मैं जानता हूँ कि उन्होने दूसरे दफे विवाह किया था और तीन-चार पुत्र-कन्याओंके साथ वे वहाँ सुखसे वास करते थे ।

सुब्रह्मेके समय सुना गया कि इन्हीं छोटी बगिया और बड़ी बगिया नामक गाँवोमे, उस समय शीतलाने महामारीके रूपमें दर्शन दिये हैं । देखा गया है कि गाँवके दुःसमयमे ही साधु-संन्यासियोकी सेवा विशेष सन्तोषजनक होती है । इसी-लिए साधु बाबाने अविचलित चित्तसे वहाँपर अवस्थान करनेका सकल्प कर लिया ।

अच्छी बात है । संन्यासी जीवनके सम्बन्धमे यहाँपर मैं एक बात कह देना चाहता हूँ । जीवनमे इनमेंसे मैंने अनेकोको देखा है । चारके दफे मैं उनके साथ ऐसे ही घनिष्ठ भावसे घुल-मिलकर भी रहा हूँ । दोष जो उनमें हैं सो हैं ही, मैं तो गुणोंकी बात ही कहूँगा । ' केवल पेटके लिए साधूजी ' तो आपमेसे अनेक जानते होंगे, परन्तु इन लोगोमे भी ये दो दोष मेरी नजर नहीं आये,—और मेरी नजर भी कुछ बहुत स्थूल नहीं है । स्त्रियोके सम्बन्धमे इन लोगोका समय कहो या उत्साहकी स्वल्पता कहो,—खूब अधिक है, और प्राणोका भय भी इन लोगोमे

त्रिंशुल ही कम होता है । ' यावजीवेत् सुख जीवेत् ' तो है, परतु क्या करनेसे ' बहु दिनं जीवेत् ' यह ख्याल नहीं होता । हमारे साधू बाबा भी ऐसे ही थे । पहली वस्तु याने ' सुख ' के लिए दूसरी अर्थात् ' जीवेत् ' को उन्होंने तुच्छ कर दिया था ।

थोड़ी-सी धूनीकी राख और दो बूँद क्रमडलुके जलके बदलेमें जो सब वस्तुएँ टनादन डेरेमें आने लगीं वह, क्या तो सन्यासी और क्या गृहस्थ, किसीके लिए भी विरक्तिका कारण नहीं हो सकतीं ।

राम बाबू स्त्रीसहित रोते हुए आये । चार रोजके बुखारके बाद आज सुबह बड़े लड़केको गीतला दिखाई पड़ी हैं और छोटा बच्चा कल रातसे ज्वरमें बेहोश पड़ा है । यह जानकर कि वे बंगाली हैं मैंने स्वयं उनके निकट जाकर उनसे परिचय किया ।

इसके बाद कथाके सिलसिलेमें महीने-भरका विच्छेद मैं कर देना चाहता हूँ । क्योंकि किस तरह यह परिचय घनिष्ठ होता गया, किस तरह दोनों बच्चे चगे हुए,—इसकी बहुत लम्बी कथा है । कहते कहते मेरा ही धीरज छूट जायगा, फिर पाठकोंकी बात तो दूर रही । फिर भी, बीचकी एक बात कहे देता हूँ । करीब पंद्रह दिन बाद, जब कि रोगका प्रकोप बहुत बढ़ा चढ़ा था, साधुजीने अपना डेरा उठानेका प्रस्ताव किया । राम बाबूकी स्त्री रोकर बोल उठी, " सन्यासी भइया, तुम तो सचमुचके सन्यासी नहीं हो,—तुम्हारे शरीरमें तो दया-माया है । नवीन और जीवनको यदि तुम छोड़कर चले जाओगे, तो वे कभी नहीं बचेंगे । कहाँ, जाओ देखूँ, कैसे जाते हो ? " इतना कहकर उसने मेरे पैर पकड़ लिये । मेरी आँखोंसे भी आँसू निकल पड़े । राम बाबू भी स्त्रीकी प्रार्थनामे योग देकर अनुनय-विनय करने लगे । इसलिए मैं नहीं जा सका । साधु बाबासे मैं बोला, " प्रभो, आप अग्रसर हूजिए, मैं रास्तेके बीचमें, नहीं तो प्रयागमें पहुँचकर, आपकी पद-धूलि अवश्य ही माथे चढा सकूँगा, इसमे कोई सदेह नहीं है । " प्रभु कुछ धुण्ण हुए । अतमें बार बार अनुरोध करके, अकारण कहीं विलम्ब न लगा देना, इस सबधमे बार बार सावधान करके,—वे सदल-बल यात्रा कर गये । मैं राम बाबूके घरमें ही रह गया । इन थोड़ेसे दिनोंके बीचमें ही मैं इस तरह प्रभुका सबसे अधिक स्नेह-पात्र हो गया था कि, यदि और टिका रहता तो, उनकी सन्यास-लीलाके अवसानपर, उत्तराधिकार-सूत्रसे मैं उस टुकू और दोनों ऊँटोंपर

दखल प्राप्त कर सकता, इसमें कोई संदेह नहीं रह गया था। खैर जाने दो,— हाथकी लक्ष्मी पैसे ठेलकर, गई बातको लेकर, परिताप करनेमें अब कोई लाभ नहीं है।

दोनों लडके चगे हो गये। मारी इस दफे सचमुच ही महामारीके रूपमें दिखाई दी। वह कैसा व्यापार था यह जिसने अपनी आँखों नहीं देखा, वह किसीका लिखा हुआ पढ़कर, कहानी सुनकर या कल्पना करके हृदयगम कर सके यह असंभव है। अतएव इस असंभव कार्यको सभव करनेका प्रयास मैं नहीं करूँगा। लोगोंने भागना शुरू किया, इसमें और कोई विवेक-विचार नहीं रहा। जिस घरमें मनुष्यका चिह्न दिखाई देता था उसमें झॉककर देखनेसे नजर आता था कि केवल मों अपनी पीड़ित सतानको आगे लिये हुए बैठी हुई है।

राम बाबूने भी अपनी घरू बैलगाडीमें माल असबाब लदा दिया। वे तो कई दिन पहले ही ऐसा करना चाहते थे, किन्तु, बाध्य होकर ही न कर सके। पाँच-छः दिन पहलेसे ही मेरी सारी देह एक ऐसे बुरे आलस्यसे भर गई थी कि कुछ भी भल नहीं लगता था। मालूम होता था कि रात्रि-जागरण और परिश्रमके कारण ही ऐसा हो रहा है। उस दिन सुबहसे ही सिर दुखने लगा। बिल्कुल अरुचि होते हुए भी दोपहरके समय जो कुछ खाया शामके वक्त उसे कै कर दिया। रातके ९-१० बजे मालूम हुआ कि बुखार चढ़ आया है। उस दिन सारी रात, उन लोगोंका उद्योग आयोजन चल रहा था, सभी जाग रहे थे। बहुत रात बीते राम बाबूकी स्त्री बाहरसे मेरे कमरेके भीतर झॉककर बोली, 'सन्यासी भइया, तुम क्या हमारे साथ ही आरातक नहीं चलोगे ?'

मैं बोला, "जरूर चलूँगा। किन्तु तुम्हारी गाड़ीमें मुझे थोड़ी-सी जगह देनी होगी।"

बहिनेने उत्सुक होकर प्रश्न किया, "सो कैसे सन्यासी भइया ? गाड़ियों तो दोसे अधिक नहीं मिल सकीं। उनमें तो हम लोगों भरके लिए भी जगह नहीं है।"

मैंने कहा, "मुझमें तो चलनेकी ताकत नहीं है बहिन, सुबहसे ही खूब बुखार चढ़ा है।"

"बुखार ? कहते क्या हो ?" इतना कहकर उत्तरकी भी अपेक्षा न करके मेरी नूतन बहिन अपना मुँह श्याम करके चली गई।

कितनी देरतक मैं सोता रहा, सो नहीं कह सकता। जागकर देखा तो दिन

चढ़ आया है। मकानके भीतरके सभी कमरोंमें ताला लगा हुआ है, मनुष्य-प्राणीका नाम भी नहीं है।

बाहरके जिस कमरेमें मैं था उसके सामनेसे ही इस गाँवका कच्चा रास्ता आरा स्टेशनतक गया है। इस रास्तेपरसे प्रतिदिन कमसे कम ५-६ बैलगाड़ियाँ, मृत्यु-भीत नर-नारियोंका माल-असबाब लादकर, स्टेगन जाया करती थीं। दिन-भर अनेक प्रयत्न करनेके बाद मैं शामको इनमेंसे एकमें स्थान पाकर जा बैठा। जिन वृद्ध बिहारी सज्जनने दया करके मुझे अपने साथ ले लिया था उन्होंने बड़े तड़के ही मुझे स्टेशनके पास एक वृक्षके नीचे उतार दिया। उस समय बैठनेका भी मुझमें सामर्थ्य नहीं था। वहीं मैं लेट गया। पासमें ही एक टीनका परित्यक्त शेड था। पहले वह मुसाफिर-खानेके काममें आता था, किन्तु, वर्तमान समयमें झड़-बादलके दिन गाय-बछड़ोंके उपयोगमें आनेके सिवाय, और किसी काममें नहीं आता था। ये वृद्ध सज्जन स्टेशनसे एक बगाली युवकको बुला लाये। मैं उसीकी दयासे, कई एक कुलियोंकी सहायतासे, उस शेडके नीचे लाया गया।

मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि मैं उस युवकका कोई परिचय नहीं दे सकता, क्योंकि, मैं उस समय उसकी कुछ भी पूछताछ नहीं कर सका था। पाँच-छह महीने-बाद, पूछनेका जब सुयोग और शक्ति मिली तब, मालूम हुआ कि गीतलाके रोगसे पीड़ित होकर इस बीचमें ही वह इस लोकसे कूच कर गया है। उसके सत्रधमें पूछनेपर इतना ही मालूम हो सका कि वह पूर्वीय बगालका था और पन्द्रह रुपये महीना वेतनपर स्टेशनमें नौकरी करता था। कुछ देर ठहरकर अपना सैकड़ों जगहसे फटा हुआ बिछौना लाकर उसने हाजिर किया और वह बार बार कहने लगा कि मैं अपने हाथसे पकाकर खाता हूँ और दूसरेके घर रहता हूँ। दोपहरके समय एक कटोरा गरम दूध लाकर उसने ज्वरन पिलाकर कहा, “डरनेकी बात नहीं है, अच्छे हो जाओगे। परतु आत्मीय बन्धु बान्धव आदि किसीको भी यदि खबर देनी हो तो, ठिकाना बतानेपर, मैं तार दे सकता हूँ।”

उस समय तक मैं खूब होशमें था। इसलिए यह भी अच्छी तरह समझता था कि ऐसी अवस्था बहुत देर तक नहीं रहेगी। इस तरहका ज्वर यदि और भी ५-६ घण्टे स्थायी बना रहा तो होश अवश्य गवाँना पड़ेगा। अतएव, जो कुछ करना है वह, इतने समयके भीतर न करनेपर, फिर नहीं किया जा सकेगा।

सो तो ठीक, परन्तु खबर देनेके प्रस्तावपर मैं सोच विचारमे पढ गया। क्यों, सो खोलकर बतानेकी जरूरत नहीं। परन्तु सोचा, गरीबका पैसा टेलिग्राममे अपव्यय करनेसे लाभ ही क्या है ?

शामके बाद वह भद्र पुरुष अपनी ड्यूटीसे अवकाश लेकर एक घड़ा पानी और एक किरासिनकी डिब्बी लेकर उपस्थित हुआ। उस समय ज्वरकी यत्रणासे मस्तक क्रमशः बिगड़ रहा था। उसे पासमे बुलाकर मैंने कहा, “जबतक मुझे होगा है तबतक बीच बीचमे आकर देख जाना, इसके बाद जो होना हो सो हो, आप और कोई कष्ट न करना।”

वह अत्यन्त मुँह-चोर प्रकृतिका भद्र पुरुष था। बात बनाकर कहनेकी उसमे क्षमता नहीं थी। जवाबमे केवल ‘नहीं नहीं’ कहकर ही वह चुप हो रहा।

मैंने कहा, “आपने चाहा था कि किसीको खबर करा दूँ। मैं सन्यासी आदमी हूँ, वास्तवमे मेरा कोई भी नहीं है। फिर भी पटनेमें प्यारी बाईजीके ठिकानेपर यदि एक पोस्ट कार्ड लिख दोगे कि श्रीकान्त आरा स्टेशनके बाहर एक टीन-शेडके नीचे मरणापन्न होकर पड़ा है तो—”

वह युवक अत्यन्त व्यस्त होकर बोल उठा। “मैं अभी दिये देता हूँ, चिठी और टेलिग्राफ दोनों ही भेजे देता हूँ,” इतना कहकर वह उठकर चला गया। मैंने मन ही मन कहा, “भगवान्, वह खबर पा जाय।”

\* \* \* \*

होश आनेपर पहले तो मैं अपनी अवस्था अच्छी तरह समझ भी न सका। मस्तकपर हाथ ले जाकर अनुभव किया कि वह तो आईस-बैग है। आँखें मिल-मिलाकर देखा कि मकानके भीतर एक खाटपर पड़ा हूँ। सामने स्टूलके ऊपर एक दीपकके पास दो-तीन दवाकी शीशियाँ और उसके पास एक रस्सीकी खाटपर कोई मनुष्य लाल चेकका रैपर शरीरपर लपेटे हुए सो रहा है। बहुत देर तक मैं कुछ भी याद न कर सका। इसके बाद, एक एक करके, जान पड़ने लगा, मानों नींदमें कितने ही स्वप्न देखे हैं। अनेक लोगोका आना-जाना, उठाकर मुझे डोलीमे खालना, मस्तक उठाकर दवाई पिलाना, ऐसे कितने ही व्यापार दिखाई पड़े।

कुछ देर बाद, जब वह मनुष्य उठकर बैठ गया तब, देखा कि कोई बगाली सज्जन है, उम्र अठारह-उन्नीससे अधिक नहीं। उस समय मेरे सिरहानेके निकटसे मृदु-स्वरमे जिसने उसको सबोधन किया उसका स्वर मैंने पहचान लिया।

प्यारीने अति मृदु कण्ठसे पुकारा, “ बड़्कू, बरफको एक बार और बदल क्यों नहीं दिया बेटा ! ”

लड़का बोला, “ बदले देता हूँ, तुम थोड़ा-सा सो लो न माँ । डाक्टर बाबू जब कह गये हैं कि शीतला नहीं है, तब डरनेकी तो कोई बात नहीं है माँ । ”

प्यारी बोली, “ अरे भइया, डॉक्टरके कहनेसे, कि डरकी कोई बात नहीं है, औरतोंका भय कहीं जाता है ? तुझे चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है बड़्कू, तू तो बरफ बदलकर सो जा,—फिर रातको मत जागना । ”

बकूने आकर बरफ बदल दिया और लौटकर वह फिर उसी खटियापर जा पडा । थोड़ी ही देर बाद जब उसकी नाक बजने लगी तब मैंने धीरेसे पुकारा “ प्यारी ! ”

प्यारीने मुँहके ऊपर झुक पड़कर, सिरपरके जल-बिन्दु आँचलसे पोंछते हुए, कहा, “ मुझे क्या तुम चीन्ह सकते हो ? अब कैसे हो ? कल—”

“ अच्छा हूँ । कब आई ? यह क्या आरा है ? ”

“ हाँ आरा ही है । कल हम लोग घर चलेंगे । ”

“ कहाँ ? ”

“ पटने । सिवाय अपने घर ले जानेके, अभी क्या और कहाँ, मैं तुम्हें छोड़ जा सकती हूँ ? ”

“ यह लड़का कौन है, राजलक्ष्मी ? ”

“ मेरी सौतका लड़का है । किन्तु, बड़्कू मेरे पेटका लडका-सा ही है । मेरे पास रहकर ही पटना-कालेजमें पढ़ता है । आज अब और बात मत करो, सो जाओ,—कल सब बात कहूँगी । ” इतना कहकर उसने मेरे मुँहपर हथेली रखकर मेरा मुँह बन्द कर दिया ।

मैं हाथ बढ़ाकर राजलक्ष्मीके दाहिने हाथको मुट्टीमें लेकर करवट बदलकर सो रहा ।

१२

**जि**स ज्वरसे पीड़ित होकर मैं बेहोश हो शय्यागत हो गया था वह शीतलाका नहीं था, कुछ और ही था । डॉक्टरी शास्त्रमें निश्चयसे ही उसका कोई चढा भारी कठिन नाम था, परन्तु मुझे वह याद नहीं रहा । खबर पाकर प्यारी,

अपने लडके, दो नौकर और दासीको लेकर, आ उपस्थित हुई। उसी दिन एक ठहरनेका स्थान किरायेपर लेकर मुझे उसमें स्थानान्तरित कर दिया और शहरके भले-बुरे सब चिकित्सकोंको बुलाकर वहाँ इकट्ठा कर लिया। अच्छा ही किया। नहीं तो, और कोई नुकसान चाहे भले ही न होता, परन्तु 'भारत-वर्ष'के पाठक-पाठिकाओके धैर्यकी महिमा तो ससारमें अविदित ही रह जाती।

सुबह प्यारीने कहा, "बंकू, और देरी मत कर बेटा, इसी समय एक सेकण्ड क्लासका डब्बा रिजर्व करा आ। मैं एक क्षण भी इन्हें यहाँ रखनेका साहस नहीं कर सकती।"

बकूकी अतृप्त निद्रा उस समय भी उसके दोनों नेत्रोंमें भर रही थी, उसने, उन्हें मूँदे ही मूँदे, अव्यक्त स्वरमें जवाब दिया, "तुम पगला गई हो माँ, ऐसी अवस्थामें क्या रोगीको यहाँसे वहाँ ले जाया जा सकता है?"

प्यारीने कुछ हँसकर कहा, "पहले तू उठ, आँख-मुँहपर जल डाल, देखू। इसके बाद यहाँ-वहाँ ले जानेकी बात समझ ली जावेगी। राजा बेटा मेरे, उठ।"

बकू, और कोई उपाय न देख, शय्या त्याग, मुँह-हाथ धो, कपड़े बदल स्टेशन चला गया। उस समय भी बहुत जल्दी थी,—घरमें और कोई नहीं था। धीरे धीरे पुकारा, "प्यारी।" मेरे सिरहानेकी ओर एक खटिया सटकर बिछी हुई थी। उसीपर थकावटके कारण, शायद इसी बीच, वह कुछ आँखें मूँदकर लेट गई थी। चटपट उठ बैठी और मेरे मुँहपर झुक गई। कोमल कण्ठसे उसने पूछा, "नींद खुल गई?"

"मैं तो जाग ही रहा हूँ।" प्यारीने उत्कण्ठित यत्नके साथ मेरे सिर और कपालपर हाथ फेरते फेरते कहा, "ज्वर इस समय बहुत कम है। आँखें मूँदकर थोड़ा-सा सोनेकी चेष्टा क्यों नहीं करते?"

"सो तो मैं बराबर ही करता हूँ प्यारी, आज ज्वरको कितने दिन हुए?"

"तेरह दिन", कहकर उसने बड़ी बूढ़ी पुरखिनकी तरह गभीर भावसे कहा, "देखो, लडके-बालोंके सामने मुझे यह नाम लेकर मत पुकारा करो। बहुत दिनोतक 'लक्ष्मी' कहकर पुकारा किये हो, वही नाम लेकर क्यों नहीं पुकारते?"

---

\* श्रीकान्तका यह भ्रमण-वृत्तान्त पहले बंगालके प्रसिद्ध मासिकपत्र 'भारतवर्ष' में धारावाहिक रूपमें प्रकाशित हुआ था।

दो दिनसे मैं खूब होशमें था। मुझे भी सब बातें याद आ गई थीं। मैंने कहा, “अच्छा।” इसके बाद, जिस बातके कहनेके लिए बुलाया था उसे मन ही मन अच्छी तरह सजाकर कहा, “मुझे ले जानेकी चेष्टा कर रही हो, किन्तु, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं, अब और नहीं देना चाहता।”

“तो फिर क्या करना चाहते हो?”

“मैं सोचता हूँ, अब जैसा मैं हूँ, उससे जान पड़ता है कि तीन-चार दिनमें ही, अच्छा हो जाऊँगा। तुम लोग चाहे तो इतने दिन और ठहरकर घर चले जाओ।”

“तब तुम क्या करोगे, सुनो तो?”

“जो कुछ होना होगा सो हो जायगा।”

‘सो हो जायगा’ कहकर प्यारी कुछ हँस दी। इसके बाद सामने आकर, खाटपर एक ओर बैठकर, मेरे मुँहकी ओर देखकर, क्षण-भर चुप रहकर फिर कुछ हँसकर बोली, “तीन चार दिनमें तो नहीं, दस बारह दिनमें यह रोग चला जायगा, यह मैं जानती हूँ, परन्तु, असली रोग कितने दिनोंमें दूर होगा सो क्या मुझे बता सकते हो?”

“असली रोग और क्या?”

प्यारीने कहा, “सोचोगे कुछ, कहोगे कुछ, और—करोगे कुछ, हमेशासे तुम्हें यही एक रोग है। तुम जानते हो कि एक महीनेके पहले मैं तुम्हें आँखोंकी ओट न कर सकूँगी,—फिर भी कहोगे ‘तुम्हें कष्ट दिया, तुम जाओ,’ अरे ओ दयामय! मेरा यदि तुम्हें इतना अधिक दर्द है तो, और चाहे जो होओ पर,—सन्यासी तो तुम नहीं हो—सन्यासी बनकर यह क्या हंगामा खड़ा किया है! आकर देखती हूँ, तो जमीनपर फटी कथरीपर घोर बेहोशीमें पड़े हो! धूल-कीचड़में जटायें सन गई हैं। सारे अगमें रुद्राक्षकी मालायें और दोनो हाथोंमें पीतलके कड़े हैं। मैया री मैया! चेहरा देखकर रोये बिना न रह सकी!” इतना कहते कहते उमड़ा हुआ अश्रुजल उसकी दोनो आँखोंमें झलक आया। चटपट उसे हाथसे पोछकर वह बोली, “बकू बोला, ये कौन हैं मों? मन ही मन बोली—तू बच्चा है, तेरे आगे वह बात क्या कहूँ भइया! ओह, वह दिन भी कैसी विपत्तिका था! मैया री, कैसी शुभ घड़ीमें पाठशालामें हमारी चार आँखें हुई थीं! जो दुःख तुमने मुझे दिया है, उतना दुख दुनिया-भरमें किसीने कभी किसीको नहीं-दिया होगा,



—और न देगा ही । शहरमें शीतला दिखाई दी हैं,—सबको लेकर अच्छी-भली भाग जा सकूँ तो जानमें जान आवे ।” इतना कहकर उसने एक दीर्घ श्वास छोड़ी ।

उसी रातको आरा छोड़ दिया । एक कम उम्रका डाक्टर अनेक तरहकी ओषधियाँ लेकर हम लोगोंको पटनातक पहुँचानेके लिए साथ गया ।

पटना पहुँचकर बारह-तेरह दिनके भीतर ही एक तरहसे मैं चगा हो गया । एक दिन सुबह अकेला प्यारीके मकानके प्रत्येक कमरेमें घूम आया । उसका माल-असबाब देखकर मैं कुछ विस्मित हुआ । मैंने इसके पहले वैसा देखा न हो सो बात नहीं थी । चीजें सब अच्छी और कीमती थीं, यह ठीक है, परन्तु, इस मारवाड़ी मुहल्लेके बीच, इन सब धनी और अल्पशिक्षित शौकीन मनुष्योंके संसर्गमें, इतनी साधारण चीजोंसे वह सन्तुष्ट कैसे रहती थी ? इसके पहले मैंने इस तरहके जितने घर-द्वार देखे थे उनके साथ कहीं किसी भी अशमें इसकी समानता नहीं थी । उनमें अन्दर घुसते ही विचार होता था कि इनमें मनुष्य क्षण-भर भी रहता कैसे होगा ? उन मकानोंके झाड़ फानूस, चित्र, दीवालगीरी, आईना और ग्लास-केसोंमें आनदके बदले आशङ्का ही उत्पन्न होती थी,—सहज श्वास प्रश्वास तकके लिए भी, मालूम होता था कि, अवकाश न मिलेगा ।—बहुतसे लोगोंकी बहुविध कामना-साधनाकी उपहार-राशि इस तरह ठसाठस एकके ऊपर एक भरी हुई नजर आती थी कि देखते ही ऐसा मालूम होता था कि इन अचेतन वस्तुओंके समान ही उनके सचेतन दाता भी मानों इस मकानके भीतर जरा-सी जगहके लिए ऐसी ही भीड़ करके परस्पर एक दूसरेके साथ ठेलमठेल संघर्ष कर रहे हैं । किन्तु, इस मकानके किसी भी कमरेमें आवश्यकीय चीजोंके अतिरिक्त एक भी फालतू चीज़ नजर नहीं आई । और जो भी चीजें नजर आई वे स्वयं गृहस्वामिनीके कामके लिए लाई गई हैं, और उनकी निजी इच्छा और अभिसचिको लॉघकर, और किसीकी भी प्रलुब्ध अभिलाषासे अनधिकार-प्रवेश करके जगह छेके नहीं बैठी हैं, यह बात सहजमें ही मालूम हो गई । और भी एक बातने मेरी दृष्टिको आकर्षित किया । इतनी सुप्रसिद्ध ‘बाईजी’के घरमें गाने-बजानेका कहीं कोई अयोजन भी नहीं है । इस कमरे उस कमरेमें घूमता हुआ दूसरे मंजिलके एक कोनेके कमरेके सामने आकर मैं खड़ा हो गया । यह बाईजीका खुदका शयन-मन्दिर है, यह उसके भीतर झँकते ही मालूम हो

गया । परन्तु मेरी कल्पनाके साथ इसका कितना अन्तर था ! जो कुछ सोच रखा था, उसमेंका कुछ भी नहीं था । मेज सफेद पत्थरकी थी, दीवालें दूधकी तरह सफेद चमचमा रही थीं । कमरेके एक किनारे एक छोटेसे तख्तके ऊपर बिस्तर बिछे थे, एक लकड़ीकी अरगनीपर कुछ वस्त्र पड़े थे और उसके पीछे एक लोहेकी आलमारी थी । और कहीं कुछ नहीं था । जूते पहिने हुए अन्दर प्रवेश करनेमें भी मानो मुझे एक तरहके सकोचका अनुभव हुआ, उन्हे चौखटके बाहर खोलकर मैंने भीतर प्रवेश किया । मालूम होता है, थकावटके कारण ही उसकी शय्यापर मैं जाकर बैठ गया था । यदि कमरेमें और कोई वस्तु बैठनेके लिए होती तो मैं उसीपर बैठता । सामनेकी ओर खुली हुई खिडकीको ढँके हुए एक बड़ा नीमका पेड़ था । उसीमेंसे छन छन कर हवा आ रही थी । उस ओर देखता हुआ मैं हठात् जैसे कुछ अन्यमनस्क-सा हो गया था । एक मीठी आवाजसे चौँककर मैंने देखा, गुनगुन गाना गाती गाती प्यारी कमरेमे घुस आई है । वह गगाजीमें स्नान करने गई थी और वहाँसे लौटकर अपने कमरेमें गीले कपड़े उतारने आई है । उसने इस ओर एक दफे भी नहीं देखा है । उसके सीधे अरगनीके पास जाकर सूखे वस्त्रपर हाथ डालते ही मैंने व्यस्त होकर आवाज दी, “ घाटपर कपड़े लेकर क्यों नहीं जाती ? ”

प्यारीने चौँककर हँस दिया । बोली, “ तैं ! चोरकी तरह मेरे कमरेमें घुसे बैठे हो ? नहीं नहीं, बैठे रहो, बैठे रहो,—जाओ मत । मैं उस कमरेमेंसे कपड़े बदले आती हूँ । ” इतना कहकर वह हलके पैरों गरदकी धोती हाथमें लेकर बाहर चली गई ।

पाँचेक मिनटके बाद वह प्रसन्न मुखसे लौट आई और हँसकर बोली, “ मेरे कमरेमें तो कुछ भी नहीं है, तब क्या चुराने आये हो, बोलो तो ? मुझे तो नहीं ? ” मैं बोला, “ तुमने क्या मुझे ऐसा अकृतज्ञ समझ रखा है ? तुमने मेरे लिए इतना किया, और अंतमें मैं तुम्हारी ही चोरी करूँ, मैं इतना लोभी नहीं हूँ । ”

प्यारीका मुँह मलीन हो गया । बोलते समय मैंने नहीं सोचा था कि इस बातसे उसे व्यथा पहुँचेगी । उसे व्यथा पहुँचानेकी न तो मेरी इच्छा ही थी, और न ऐसी इच्छा होना स्वाभाविक ही था । खास तौरसे तब जब कि मैंने दो एक दिनमें वहाँसे प्रस्थान करनेका सकल्प कर लिया था । बिगड़ी हुई बातको किसी

तरह बना लेनेकी गंभीरता मैंने जबर्दस्ती हँसकर कहा, “ अपनी वस्तुकी भी क्या कोई चोरी करने जाता है ? तुममें इतनी भी बुद्धि नहीं है ? ”

किन्तु इतने सहजमें उसे भुलाया न जा सका । उसने मलीन मुखसे कहा, “ तुम्हें और अधिक कृतज्ञ होनेकी जरूरत नहीं, दया करके तुमने जो उस समय खबर लगा दी, मेरे लिए वही बहुत है । ”

उसके शुद्ध-स्नात, प्रसन्न हँसते चेहरेको इस धूपसे उज्ज्वल प्रभात-कालमे ही मैंने म्लान कर दिया, यह देखकर हृदयमें एक वेदना-सी जाग उठी । उस थोड़ी-सी हँसीके भीतर जो एक माधुर्य था उसके नष्ट होते ही हानि सुस्पष्ट हो उठी । उसे वापिस लौटानेकी आशासे मैं उसी क्षण अनुत्तम स्वरमें बोल उठा, “ लक्ष्मी, तुम्हारे निकट तो कुछ भी छिपा नहीं है,—सब कुछ तो जानती हो । तुम वहाँ नहीं गई होती तो मुझे उसी धूल और रेतीके ऊपर ही मर जाना पडता, कोई उतनी दूर जाकर एक दफे अस्पतालमे भेजनेकी भी चेष्टा न करता । वह जो तुमने पत्रमे लिखा था कि, ‘ सुखके दिनोंमे न सही, तो दुःखके दिनोंमें ही मुझे याद कर लना, ’ यह बात मुझे मेरी आयु बाकी थी इसीलिए याद आ गई, यह मैं इस समय अच्छी तरह अनुभव कर रहा हूँ । ”

“ कर रहे हो ? ”

“ निश्चयसे । ”

“ तो फिर कहो कि मेरे ही लिए तुमने पुनः प्राण पाये हैं ? ”

“ इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है । ”

“ तो क्या मैं उनपर दावा कर सकती हूँ, बोलो ? ”

“ कर सकती हो । परन्तु मेरे प्राण इतने तुच्छ है कि उनपर तुम्हारा लोभ होना ही उचित नहीं है । ”

प्यारिने इतनी देर बाद कुछ हँसकर कहा, “ फिर भी गनीमत है कि, अपने मूल्यको इतने दिनोंमें तुमने समझ तो लिया । ” किन्तु दूसरे ही क्षण गभीर होकर कहा, “ दिहोगी रहने दो, बीमारी तो एक तरहसे अच्छी हो गई, अब जानेकी कब सोच रहे हो ? ”

उसके प्रश्नको अच्छी तरह न समझ सका । मैंने गभीर होकर कहा, “ कहीं जानेकी तो मुझे जल्दी है नहीं । इसलिए यही सोचता हूँ, और भी कुछ दिन ठहर जाऊँ । ”

प्यारी बोली, “ किन्तु मेरा लड़का आजकल अक्सर बाँकीपुरसे आया करता है। बहुत दिन ठहरोगे तो शायद वह कुछ खयाल करने लगे। ”

मैंने कहा, “ करने दो न। उससे डरकर तो कुछ तुम चलती नहीं ? ” ऐसा आराम छोड़कर यहाँसे शीघ्र ही तो मैं कहीं जाता नहीं। ”

प्यारीने विषण्ण मुखसे कहा, “ यह भी कहीं हो सकता है। ” इतना कह वह एकाएक वहाँसे उठकर चल दी।

दूसरे दिन शामके वक्त मैं अपने कमरेके पश्चिमकी तरफके बरामदेमें एक इजी चैअरपर लेटा हुआ सूर्यास्त देख रहा था। इसी समय बंकू आ उपस्थित हुआ। अभी तक उसके साथ अच्छी तरह बातचीत करनेका सुयोग नहीं मिला था। एक चैअरपर बैठनेका इशारा करके मैं बोला, “ बंकू, क्या पढ़ते हो तुम ? ”

लड़का अत्यंत सीधा-सादा भलामानुस था। बोला “ गये साल मैंने एन्ट्रेन्स पास किया है। ”

“ तो अब बाँकीपुर-कालेजमें पढ़ते हो ? ”

“ जी हाँ। ”

“ तुम कितने भाई बहिन हो ? ”

“ भाई और नहीं है। चार बहिने हैं। ”

“ उनका ब्याह हो गया ? ”

“ जी हाँ, मॉने ही उनको ब्याह दिया है। ”

“ तुम्हारी अपनी माँ जीती हैं ? ”

“ जी हाँ, वे देशके ही मकानमें रहती हैं। ”

“ तुम्हारी ये माँ, कभी तुम्हारे देशके मकानमें गई हैं ? ”

“ बहुत बार, अभी ही तो पाँच छः महीने हुए, आई हैं। ”

“ इससे देशमें कोई गड़बड़ नहीं मचती ? ”

बंकू कुछ देर चुप रहकर बोला, “ मचती रहे। हम लोगोंको ‘जातिसे अलग’ कर रखा है, सो इससे कुछ हम अपनी माँको छोड़ थोड़े ही सकते हैं ? और ऐसी माँ भी कितने लोगोंको नसीब होती है। ”

मुँहमें आया कि पूँछ, “ माँके ऊपर इतनी भक्ति हुई कैसे ? ” किन्तु दबा गया।

बंकू कहने लगा, “ अच्छा, आप कष्टिए, गाँव क्या कोई दोष है ? ”

हमारी माँ केवल यह करती है। कुछ पराई निन्दा, पराई चर्चा तो करती नहीं ? बल्कि, गाँवमें जो लोग हमारे परम शत्रु हैं उन्हींके आठ दस लड़कोंको पढ़ाई-लिखाईका खर्च देती हैं, गीत-कालमें कितने ही लोगोंको कपड़े देती हैं, कम्बल देती हैं, यह क्या बुरा करती हैं ?”

मैंने कहा, “नहीं, यह तो बहुत ही भला काम है।”

बंकूने उत्साहित होकर कहा, “तब कहिए, हमारे गाँवके समान पाजी गाँव क्या और कोई है ? यही देखो न, उस वर्ष ईंटें पकाकर हम लोगोंने मकान बनवाया। गाँवमें पानीकी भयानक तकलीफ देखकर माँ मेरी माँसे बोलीं, जीजी, और कुछ रुपये खर्च करके ईंट पकानेके भट्टेकी जगह ही एक तालाब ही न बनवा दिया जाय ? तीन-चार हजार रुपये खर्च करके तालाब बनवा दिया। घाट भी बँधवा दिया। किंतु, गाँवके लोगोंने माँको उस तालाबकी प्रतिष्ठा न करने दी। ऐसा बँधवा पानी—किन्तु कोई पीएगा नहीं, कोई छुएगा नहीं, ऐसे बँदजात आदमी हैं। केवल इसी ईर्ष्याके मारे सब मरे जाते हैं कि हमारा पक्का मकान बन गया। आप समझे न ?”

मैंने अचरजसे कहा, “कहते क्या हो जी ! पानीका ऐसा दारुण कष्ट भोगा करोगे, फिर भी ऐसे पानीका व्यवहार न करेंगे ?”

बंकूने जरा-सा हँसकर कहा, “यही तो, किन्तु वह क्या अधिक समय चल सकता है ? पहले साल तो डरके मारे किसीने पानी छुआ नहीं, किन्तु अब छोटी जातिके सब ही लोग लेते हैं और पीते हैं,—ब्राह्मण और कायस्थ भी चैत्र-वैशाखके महीनोंमें लुक-छिपकर पानी ले जाते हैं,—परंतु फिर भी उन्हींने तालाबकी प्रतिष्ठा नहीं करने दी। यह क्या माँके लिए कम कष्टकी बात है ?”

मैंने कहा, “अपनी नाक काटके पराया अपशकुन करनेकी जो कहावत सुनी जाती है, वह यही है।”

बंकू जोरसे बोल उठा, “ठीक यही बात है। ऐसे गाँवमें अलहदा एक घरसे रहना शापके रूपमें भी वरदानके समान है। आपकी क्या राय है ?” जवाबमें मैंने भी केवल हँसकर सिर हिला दिया। हाँ या नहीं,—स्पष्ट कुछ नहीं कहा। परन्तु, इससे बंकूके उत्साहमें बाधा नहीं पड़ी। मैंने देखा कि लड़का अपनी विमाताको सचमुच ही प्यार करता है। अनुकूल श्रोता पाकर भक्तिके आवेगमें

वह देखते देखते पागल हो उठा और उसके लगातारके स्तुति-वादन से मुझे करीब करीब व्याकुल कर दिया ।

हठात् एकाएक उसे होश आया कि इतनी देरमें मैंने उसकी एक भी बातमें योग नहीं दिया । तब वह कुछ अप्रतिभन्सा होकर किसी तरह प्रसङ्गको दबा देनेकी गरजसे बोला, “ आप यहाँपर और भी कुछ दिन हैं न ? ”

मैंने हँसकर कहा, “ नहीं, कल सुबह ही चला जाऊँगा । ”

“ कल ही ? ”

“ हाँ, कल ही । ”

“ परन्तु आपका शरीर तो अभी तक सबल हुआ नहीं । क्या आप समझते हैं कि बीमारी एकबारगी चली गई ? ”

मैंने कहा, “ सुबह तक तो मैं यही समझता था कि बीमारी चली गई, परन्तु अब सोचता हूँ कि नहीं । आज दोपहरसे ही मेरा सिर दुख रहा है । ”

“ तो फिर क्यों इतने शीघ्र जाते हैं ? यहाँ तो आपको किसी प्रकारका कष्ट है नहीं । ” इतना कहकर वह लड़का चिन्तित मुखसे मेरी ओर देखने लगा ।

मैंने भी कुछ देर चुप हो, उसके चेहरेकी ओर देखते हुए, उसके मुँहपर उसके भीतरके यथार्थ भावको पढ़नेकी कोशिश की । जितना भी मैंने उसे पढा उससे उसकी ओरसे सत्य-गोपनकी कोई भी चेष्टा होती हुई मैं अनुभव नहीं कर सका । इसपर लड़का लजा अवश्य गया और उस लज्जाको ढँकनेकी भी उसने कोशिश की । वह बोला, “ आप यहाँसे मत जाइए । ”

“ क्यों न जाऊँ, बताओ ? ”

“ आपके रहनेसे मैं बड़े आनन्दसे रहती हूँ । ” यह कह तो दिया,—पर इससे उसका सुँह लाल हो गया । वह चटसे उठकर चल दिया । मैंने देखा, लड़का अन्यन्त भोला और सरल प्रकृतिका जरूर है, परन्तु बेवकूफ नहीं है । प्यारीने कहा था, कि “ और अधिक दिन रहोगे तो मेरा लड़का क्या खयाल करेगा ? ” इस बातके साथ उस लड़केके व्यवहारकी आलोचनाका अर्थ भी मानो मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ ऐसा मुझे मालूम पड़ा, और मानृत्वकी इस एक नयी तस्वीरके दृष्टिगोचर होनेसे मानों मैंने एक नूतन ज्ञान संपादित किया । प्यारीके हृदयकी एकाग्र वासनाका अनुमान करना हमारे लिए कठिन नहीं है और वह संसारमें सब ओरसे सब तरह स्वाधीन है, यह कल्पना करना भी, मैं समझता हूँ

कि, पाप नहीं है। उसने जिस मुहूर्त्तसे एक दरिद्र बालकके मातृ-पदको स्वेच्छासे ग्रहण किया है तभीसे मानों अपने दोनो पैरोको लोहेकी सॉकलोंसे जकड़ लिया है। वह स्वयं चाहे जो हो, परन्तु, उसे अपनेतई माताका सम्मान तो अब देना ही होगा। उसकी असयत कामना, उच्छृंखल प्रवृत्ति, उसे चाहे जितने अधःपातकी ओर क्यों न ठेलना चाहे, परन्तु यह बात भी तो उससे भूली नहीं जाती कि वह एक लड़केकी माँ है। और उस सन्तानकी भक्ति-नत दृष्टिके सामने तो वह उस माँको किसी तरह भी अपमानित नहीं होने देगी। उसके विह्वल यौवनके लालसामत्त वसन्तके दिनोंमें प्यारके साथ किसने उसका नाम 'प्यारी' रखा था यह तो मैं नहीं जानता, किन्तु, यह नाम भी वह अपने लड़केके सामने छुपा रखना चाहती है, यह बात मुझे याद आ गई।

देखते देखते सूर्य अस्त हो गया। उस ओर ताकते ताकते मेरा सारा अन्तःकरण मानो पिघलकर लाल हो उठा। मन ही मन बोला कि राजलक्ष्मीको अब तो मैं नीची निगाहसे-देख नहीं सकता। हम दोनोंका बाहरी बर्ताव इतने दिनोंतक चाहे जितने बड़े स्वातन्त्र्यकी रक्षा करते हुए क्यों न चलता रहा हो, स्नेह चाहे जितना माधुर्य क्यों न ढाल दे, परतु, -इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि दोनोकी कामनाएँ एकत्र सम्मिलित होनेके लिए प्रत्येक क्षण दुर्निवार वेगके साथ एक दूसरेकी ओर दौड़ रही हैं। परतु आज मैंने देखा कि यह असंभव है। एकाएक 'बकूकी माँ' आकाश-भेदी हिमालय पर्वतकी नाई रास्ता रोककर राजलक्ष्मी और मेरे बीच आकर खड़ी है। मन ही मन मैंने कहा, कल सुबह ही तो मैं यहाँसे जा रहा हूँ—किन्तु तब कहीं ऐसा न हो कि मनमें फायदे-नुकसानका हिसाब लगाने जाकर कुछ बचा रखनेकी चेष्टा करने लगूँ। मेरा यह जाना अन्तिम जाना ही हो। देख न पानेका बहाना करके एक अतिसूक्ष्म वासनाका बन्धन मैं यहाँ न रख जाऊँ, जिसका सहारा लेकर फिर कभी मुझे यहाँ आकर उपस्थित होना पड़े।

अन्यमनस्क होकर उसी जगह बैठा हुआ था। संध्याके समय धूपदानीमें धूप डालकर उसे अपने हाथोंमें लिये हुए राजलक्ष्मी उसी बरामदेमेंसे और एक कमरेमें जा रही थी कि चौंककर खड़ी हो गई और बोली, "सिर दर्द कर रहा है, ओसमें क्यों बैठे हुए हो? कमरेमें जाओ।"

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, "अवाक् कर दिया तुमने लक्ष्मी! ओस

यहाँ कहाँ है ? ”

राजलक्ष्मी बोली, “ओस न सही, ठण्ठी हवा तो चल रही है। वही क्या अच्छी होती है ? ”

“नहीं, यह तुम्हारी भूल है। ठण्ठी-गरम कोई हवा नहीं चल रही है। राजलक्ष्मी बोली, “मेरी तो सब भूल ही भूल है, परतु सिर दर्द कर रहा है य तो मेरी भूल नहीं है,—यह तो सत्य है न ? कमरेमें जाकर थोड़ी देर सो रहें न ? रतन क्या करता है ? वह क्या थोड़ा ओ’डिकोलोन सिरमें नहीं लगा सकता इस घरके नौकर चाकरोंके समान नवाब नौकर पृथ्वीमें और कहीं नहीं हैं। इतना कहकर राजलक्ष्मी अपने कामपर चली गई।

रतन जब घबराकर और लजित हो ओ’डिकोलोन, पानी आदि लेकर हाजि हुआ और अपनी भूलके लिए बार बार अनुताप प्रकट करने लगा तब मुझसे हँस बिना न रहा गया।

रतनने इससे साहस पाकर धीरे धीरे कहा, “इसमें मेरा दोष नहीं है बाबू यह क्या मैं नहीं जानता ? परन्तु मैंसे यह कहनेका उपाय ही नहीं कि जब तुम गुस्सा आता है, तब झूठ-मूठ ही घर-भरके लोगोंके दोष देखने लगती हो। ”

कुतूहलसे मैंने पूछा, “गुस्सा क्यों है ? ”

रतन बोला, “यह जाननेका क्या कोई उपाय है ? बड़े लोगोंको गुस्सा चाबूजी, यो ही आ जाता है और यों ही चला जाता है। उस समय यदि अपने मुँह छिपाकर न रहा जा सके, तो नौकर-चाकरोंके प्राण गये समझो। ” दरवाजे समीपसे एकाएक सवाल आया, “तब तुम लोगोंका मैं सिर काट लेती हूँ, क्या रतन ? और फिर बड़े लोगोके घरमें यदि इतनी मुसीबत है तो और कहीं क्या नहीं चला जाता ? ”

मालिकके सवालसे रतन कुण्ठित हो नीचा सिर किये चुपचाप बैठा रहा राजलक्ष्मीने कहा, “तेरा काम क्या है ? उनका सिर दर्द करता है, यह बकू मुँहसे सुनकर मैंने तुझसे कहा। इसीसे अब रातके आठ बजे यहाँ आकर मे बंदाई कर रहा है। कलसे कहीं और नौकरी खोज लेना,—अब यहाँ काम न है। समझा ? ”

राजलक्ष्मीके चले जानेपर रतन ओ’डिकोलोन पानी मिलाकर मेरे सिर रखकर हवा करने लगा। राजलक्ष्मीने उसी क्षण लौटकर पूछा, “क्या क



सुबह ही घर जाओगे ? मेरी जानेका इरादा जरूर था, परतु घर लौट जे नहीं । इसीलिए सवालका जवाब मैंने और ही तरहसे दिया, “ हाँ, कल सु ही जाऊँगा । ”

“ सुबह कितने बजेकी गाड़ीसे जाओगे ? ”

“ सुबह ही निकल पडूँगा, — फिर जो भी गाड़ी मिल जावे । ”

“ अच्छा । न हो तो टाइमटेबुलके लिए किसीको स्टेशन भेजे देती हूँ । ” इतना कहकर वह चली गई ।

इसके बाद यथासमय रतनने काम समाप्त करके प्रस्थान किया । नीचेसे नौकर चाकरोका शब्द आना बन्द हो गया । मैं समझ गया कि सभीने इस समय निद्राके लिए शय्याका आश्रय ग्रहण कर लिया है ।

मुझे किन्तु किसी तरह नाँद नहीं आई । घूम फिरकर केवल एक ही बात बार बार मनमे आने लगी कि प्यारी नाराज क्यों हो गई ? ऐसा मैंने क्या किया है जिससे कि वह मुझे खाना करनेके लिए अधीर हो उठी है ? रतनने कहा था कि बड़े आदमियोंको क्रोध यों ही आ जाया करता है । यह बात और और बड़े आदमियोंके सम्बन्धमे ठीक उतरती है या नहीं, सो नहीं मालूम, परन्तु प्यारीके सम्बन्धमे तो किसी तरह भी ठीक नहीं उतरती । वह अत्यन्त सयमी और बुद्धिमती है, इसका परिचय मुझे बहुत बार मिल चुका है; और मुझमे भी, और बुद्धि चाहे भले ही न हो, प्रवृत्तिके सम्बन्धमें सयम उससे कम नहीं है, — मैं तो समझता हूँ किसीसे भी कम नहीं है । मेरे हृदयमे चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसे मुहसे बाहर निकालना, अत्यन्त विकारकी बेहोशीमे भी मैं अपने लिए संभव नहीं मानता । व्यवहारमे भी किसी दिन ऐसा किया हो, सो भी मुझे याद नहीं । खुद उसके किसी कार्यके कारण लज्जाका कुछ कारण घटित हुआ हो, तो वह अलग बात है, परन्तु मेरे ऊपर उसे गुस्सा होनेका कोई कारण नहीं है । इसलिए, बिदाके समयका उसका यह उदासीन भाव मुझे जो वेदना देने लगा, वह अकिंचित्कर नहीं था ।

बहुत रात बीते एकाएक तन्द्रा टूट गई और मैंने आँख खोलकर देखा कि राजलक्ष्मी गुपचुप कमरेमे आई और उसने टेबलके ऊपरका लेम्प बुझाकर उसे दरवाजेके कोनेकी आड़में रख दिया । खिडकी खुली हुई थी, उसे बन्द करके, मेरी शय्याके समीप आकर क्षण-भर चुप खडी रहकर उसने कुछ सोचा । इसके

बाद मशहरीके भीतर हाथ डालकर उसने पहले मेरे सिरका उत्ताप अनुभव किया। इसके बाद कुरतेके बटन खोलकर वह छातीके उत्तापको बार बार देखने लगी। एकान्तमें आनेवाली नारीके इस गुप्त कर-स्पर्शसे पहले तो मैं कुण्ठित और लजित हो उठा, परन्तु, उसी समय मनमें आया कि रोगकी बेहोशीकी हालतमें सेवा करके जिसने चैतन्यको लौटाकर ला दिया था, उसके नजदीक मेरे लिए लाज करनेकी बात ही कौन-सी है ! इसके बाद उसने बटन बंद कर दिये, ओढ़नेका कपड़ा खिसक गया था उसे गलतक उड़ा दिया, अंतमें मशहरीके किनारोंको अच्छी तरह ठीक करके अत्यन्त सावधानीसे किवाड़ बन्द करके वह बाहर चली गई।

मैंने सब कुछ देखा और सब कुछ समझा। जो छिपे छिपे आई थी उसे छिपे छिपे ही जाने दिया। परन्तु इस निर्जन आधी रातको वह अपना कितना मेरे निकट छोड़ गई, सो वह कुछ भी न जान सकी। सुबह जब नींद खुली तब बुखार चढ़ा हुआ था। आँखें और मुँह जल रहे थे, सिर इतना भारी था कि शय्या त्याग करते क्लेश मालूम हुआ। फिर भी जाना ही होगा। इस घरमें मुझे अब अपने ऊपर जरा भी विश्वास नहीं था, न जाने वह किस क्षण धोखा दे जाय। फिर भी यह डर मुझे अपने लिए उतना नहीं था। परन्तु, राजलक्ष्मीके लिए ही मुझे राजलक्ष्मीको छोड़ जाना होगा, इसमें अब जरा-सी भी आनाकानी करनेसे काम न चलेगा।

मन ही मन सोच कर देखा कि उसने अपने विगत जीवनकी कालिमाको बहुत कुछ धोकर साफ कर डाला है। आज अनेक लड़के बच्चे माँ माँ कहते हुए उसे चारों ओरसे घेरे खड़े हैं। इस भक्ति और प्रीतिके आनन्द-धामसे उसे अपमानके साथ छीनकर बाहर निकाल लाऊँ ?—इतने बड़े प्रेमकी क्या यही सार्थकता अन्तमें मेरे जीवनके अध्यायमें चिरकालके लिए लिपिबद्ध हो रहेगी ?”

प्यारिने कमरेमें प्रवेश करके पूछा, “ इस समय तबीयत कैसी है ? ”

मैं बोला, “ ऐसी कुछ विशेष खराब नहीं है। जा सकूँगा। ”

“ आज न जानेसे क्या न चलेगा ? ”

“ नहीं, आज तो जाना ही चाहिए। ”

“ तो फिर घर पहुँचते ही खबर देना। नहीं तो हम लोगोंको बहुत चिन्ता होगी। ”

उसके अविचलित धैर्यको देखकर मैं मुग्ध हो गया। उसी क्षण सम्मत होकर

बोला, “अच्छा, मैं घर ही जाऊँगा और पहुँचते ही तुम्हें खबर दूँगा।”

प्यारीने कहा, “जरूर देना। मैं भी चिट्ठी लिखकर तुमसे दो-एक बातें पूछूँगी।”

जब मैं बाहर पालकीमें बैठने जा रहा था तब देखा कि दूसरे मजिलके बरामदेमें प्यारी चुपचाप खड़ी है। उसकी छातीके भीतर क्या हो रहा है, सो उसका मुँह देखकर मैं न जान सका।

मुझे अपनी अज्ञात जीजी याद आ गई। बहुत समय पहले एक अंतिम दिन वे भी मानों ठीक ऐसी ही गंभीर, ऐसी ही स्तब्ध, होकर खड़ी थीं। उस समयकी उनकी दोनो करुण आँखोंकी दृष्टिको मैं आज भी नहीं भूला हूँ; परन्तु उस दृष्टिमें निकटवर्ती जुदाईकी कितनी बड़ी व्यथा घनभूत हो रही थी सो मैं उस समय नहीं पढ़ सका था। क्या जानूँ, आज भी उसी तरहका कुछ उन दोनों निश्चिड़ काली आँखोंमें है-या नहीं।

उसास छोड़कर मैं पालकीमें जा बैठा। देखा कि बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता,—दूर भी ठेल देता है। छोटे-मोटे प्रेमके लिए यह साध्य ही नहीं था कि वह इस सुखैश्वर्यसे भरे-पूरे स्नेह-स्वर्गसे मुझे, मङ्गलके लिए, कल्याणके लिए, एक डग भी आगे बढ़ाने देता। कहार पालकी लेकर स्टेशनकी ओर जल्दीसे चल दिये। मन ही मन मैं बारबार कहने लगा कि, लक्ष्मी, दुःख मत करना। यह अच्छा ही हुआ कि मैं यहाँसे चल दिया। तुम्हारा ऋण इस जीवनमें चुकानेकी शक्ति तो मुझमें नहीं है, परन्तु जिस जीवनको तुमने दिया है, उस जीवनका दुरुपयोग करके अब मैं तुम्हारा अपमान न करूँगा,—तुमसे दूर रहते हुए भी मैं यह संकल्प सदा अक्षुण्ण रखूँगा।

समाप्त

# द्वितीय पर्व

प्रथमसे भी अधिक आकर्षक और कुतूहलवर्धक है ।  
उसे अवश्य पढ़िए ।